

०१
~~२२५~~

~~२२५~~

०१
२२५
२२५

४-४४४४

पार्टमेन्ट

गवर्नर की जिल्द
है ।

व
२८४ व

~~२८४ व~~



३

३१२

१

४

—

ॐ

स्वा.मी.

आमरेश्वरा
नंद
०
वा. १ ध

~~स्वा.मी.~~

८

10
11
12

ॐ
२२६



वेदान्तसमुच्चयः ।



श्रीमच्छङ्कराचार्यैर्विरचित-

वेदान्तस्तोत्राणां सञ्चयरूपः ।

अयं

श्रीगुजरदेशान्तर्गतसाधरमतीगङ्गातटे अहमदाबादस्थेन

आदीच्यटोलकजातीयशाण्डिल्यगोत्रोत्पन्नब्रह्मर्षि-

सुश्ररामतनुजनुपा

ब्रह्मर्षिहरेरामशर्मणा

मुद्रय्यां

निर्णयसागरमुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितः ।

अस्य पुनर्मुद्रणाधिकाराः प्रकाशयित्रा स्थायतीकृताः ।

शकाब्दाः १८३७, संवत् १९७१, सन १९१५.

मूल्यम् रु. २-८-०

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya-Sagar
Press, 23 Kolbhat Lane, Bombay.



Published by Brahmārishi Hari Rama Sarma,
Talia's Polo Sarangpur, Ahmedabad.

॥ श्रीः ॥

ॐ विचारो वरीवर्ति ।

प्रस्तावना

विदांकुर्वतु विद्वांसः यत्प्रभूततत्त्वविद्यात्मभूते भारते वर्षे प्राचीनसमयादेवारभ्य तत्त्वविद्याविवादो वरीवर्ति । उपनिषत्सु तत्समयनिबद्धान्यग्रंथेषु च आत्मानात्मविचारस्योद्घापोद्घादिकं यत्प्रादुर्भूतं तदद्यावधि न्यूनाधिकत्वेनालोक्यते । तदेतत् बौद्धोदयावसरे क्रमेणापचीयमानं प्रायो नामशेषतामुपगतमभूत् । बौद्धानां प्रचारातिशयं तत्त्वविद्यां च नामशेषामवलोक्य श्रीकुमारिलभट्टस्य प्रयत्नेन वेदानां वेदान्तस्य च पुनरुद्धारोऽजायत । श्रीशंकरभगवत्पूज्यपादशंकराचार्येण च साकल्येन पुनरुज्जीवितम् । तदारभ्य वेदांतशास्त्रस्यैवोच्चपदं प्राप्तम् । श्रीशंकरभगवतः जन्मसमयादिनिर्णयार्थं बहुमिरत्रलैः पाश्चात्यैश्च विद्वद्भिर्महान् प्रयासो विहितः । यद्यपि कियान् मतभेदस्तदपि प्रायः पट्टशतसंख्याककलिगतवर्षासन्नसमये श्रीशंकरभगवतः प्रादुर्भाव इति ग्रन्थकर्तृणां मतम् ॥ श्रीभगवतो जनकः शिवगुरुः सर्वशास्त्रपारंगम आसीत्, जननी च सती नान्नी । ताभ्यां श्रीमहेश्वरोपासनया पुत्ररत्नं लब्धमतः श्रीशंकर इति नाम्नालमकुरुताम् । आचार्येण द्वात्रिंशद्वर्षवयोवधि नानादेशेषु पण्डितैर्भिन्नमतावलंबिभिर्वादिं विरच्य तान् पराजित्य स्वमतमङ्गीकारितम् । साक्षात् शंकरस्यावतार इति आर्यावर्ते प्रायः सर्वत्र सर्वेऽपि प्रमाण्यते । प्रायः सर्वेषु

श्रीशंकराचार्यप्रणीतेषु स्तोत्रेष्वलौकिकशक्त्यतिशय उत्साहश्च समेषु
मानौ संलक्ष्येते । कवेर्वाचि प्रसादातिशयः दिव्यपुरुषवाचि श्रद्धो
त्पादकः प्रभावः द्वयमप्येतन् ब्रह्मात्मैक्यदशापरमानन्दसंदोहसंयु
क्तोत्रेषु परिभासते । निष्कैवल्यं ब्रह्म अवर्ण्यमगम्यं च, किंतु सगुण
ब्रह्मणि सच्चिदानन्दगुणान् वेदान्तप्रतिपादितान् स्तोत्राप्येतानि स्त
उद्भासयते । श्रीशंकरभगवद्वाचि नित्यत्वं चिदात्मता परमानन्द
समेताः संदृश्यन्ते ॥ श्रीशंकरभगवतः ब्रह्मदशानुभवस्थितौ सहजो
द्भूतानीव प्रायशो बहूनि स्तोत्राणि प्रतिभान्ति । श्रीशंकरभगवत्
स्तोत्रेषु प्रायो निम्नलिखितानि तत्त्वानि संलक्ष्यन्ते—

१ परमेश्वरकृपयैव मोक्षप्राप्तिः सुसाध्या ।

२ ज्ञानमेव मोक्षप्राप्तेरेकं साधनम् । “ज्ञानविहीने सर्वमनेन मु
क्तिर्न भवति जन्मशतेन ” ॥ चर्पटपंजरिका ॥

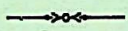
३ “ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः । ” इति
जीवब्रह्मणोरैक्यम् ।

चर्पटपंजरिकास्तोत्रं तु सरलभाषया सर्वमेव वेदान्ततत्त्वं हृदि
प्रबोधयति । संक्षेपतः वक्ष्यमाणे श्रीशंकरभगवन्निर्मितानि स्तोत्राणि
पाठमात्रेण श्रवणेनापि मनसि शुद्धिं मननेन च मनःशुद्धिदार्ढ्यं
निदिध्यासनेन च ब्रह्मीभावं शाश्वतं जनयन्ति, इति शिवम् ।

विद्वत्कृपाभिलाषी

ब्रह्मर्षिः श्रीहरेरामशर्मा ।

स्तोत्रानुक्रमणिका.



स्तो. सं.

पृष्ठम्.

अ.

२८ अपरोक्षानुभूतिः	५०
--------------------	------	------	------	----

आ.

११ आचार्यकृतपदपदी	९
-------------------	------	------	------	---

२६ आत्मबोधः	४३
-------------	------	------	------	----

७ आत्मपञ्चकम्	६
---------------	------	------	------	---

८ आत्मपट्टम्	६
--------------	------	------	------	---

३७ आनन्दलहरी	२३८
--------------	------	------	------	-----

उ.

३९ उत्तरगीता	२९३
--------------	------	------	------	-----

३२ उपदेशसाहस्री (गद्यप्रबन्धः)	१३५
----------------------------------	------	------	------	-----

३३ उपदेशसाहस्री (पद्यप्रबन्धः)	१५८
----------------------------------	------	------	------	-----

क.

५ काशीपञ्चकम्	४
---------------	------	------	------	---

२० कौपीनपञ्चकम्	२७
-----------------	------	------	------	----

च.

१५ चर्पटपञ्चरिकास्तोत्रम्	१४
---------------------------	------	------	------	----

स्तो. सं.

त.

२५ तत्त्वबोधः	३५
---------------	------	------	------	------	----

द.

१४ द्वादशपञ्चरिका (मोहमुद्गरस्तोत्रम्)				१२
--	------	--	--	--	----

ध.

१२ धन्याष्टकम्	१०
----------------	------	------	------	------	----

न.

९ निर्वाणाष्टकम्	५
------------------	------	------	------	------	---

१० निर्वाणदशकं (सिद्धान्तविन्दुः)	८
-------------------------------------	------	------	------	------	---

प.

२३ परापूजा	३३
------------	------	------	------	------	----

१८ (१) प्रश्नोत्तरमालिका	२०
----------------------------	------	------	------	------	----

१८ (२) प्रश्नोत्तरमालिका	२३
----------------------------	------	------	------	------	----

१ प्रातःस्मरणस्तोत्रम्	१
------------------------	------	------	------	------	---

व.

४० ब्रह्मसूत्राणि	३०२
-------------------	------	------	------	------	-----

१७ ब्रह्मज्ञानावली	१९
--------------------	------	------	------	------	----

म.

१९ मणिरत्नमाला	२४
----------------	------	------	------	------	----

६ मनीषापञ्चकम्	५
----------------	------	------	------	------	---

२ सुसुक्ष्मपञ्चकम्	१
--------------------	------	------	------	------	---

स्तो. सं.

पृष्ठम्.

य.

३५ योगतारावली	२२२
---------------	------	------	------	-----

व.

२२ वाक्यवृत्तिः	२९
----------------------	------	------	------	----

२७ वाक्यसुधा	४७
-------------------	------	------	------	----

१३ विज्ञाननौका	११
---------------------	------	------	------	----

३१ विवेकचूडामणिः	८७
-----------------------	------	------	------	----

३ वैराग्यपञ्चकम्	२
-----------------------	------	------	------	---

श.

३० शतश्लोकी (वेदान्तकेसरी)	७१
------------------------------	------	------	------	----

३८ श्रीमद्भगवद्गीता	२४१
--------------------------	------	------	------	-----

३४ श्रुतिसारसमुद्धरणम्	२०७
-----------------------------	------	------	------	-----

स.

१६ सदाचारस्तोत्रम्	१५
-------------------------	------	------	------	----

४ साधनपञ्चकम्	३
--------------------	------	------	------	---

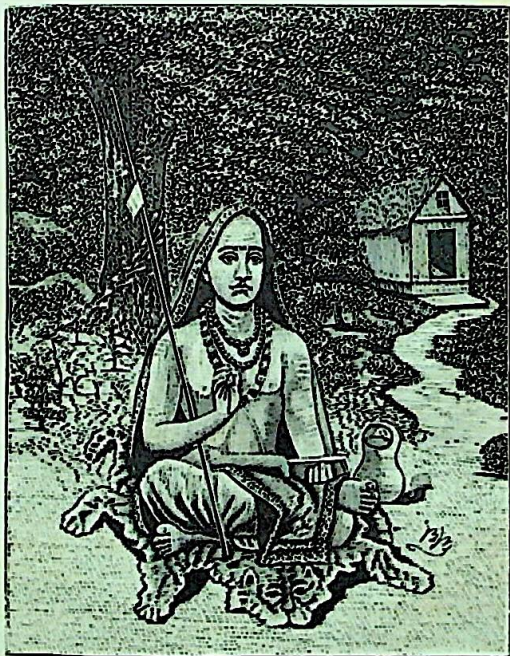
३६ सौन्दर्यलहरी	२२५
----------------------	------	------	------	-----

२९ स्वात्मनिरूपणम्	५९
-------------------------	------	------	------	----

ह.

२४ हरिमीढे स्तोत्रम्	३३
---------------------------	------	------	------	----

२१ हस्तामलकस्तोत्रम्	२८
---------------------------	------	------	------	----



श्रीमच्छंकरभगवत्पादाचार्याः ६

स्वामी आमरेश्वरा
नरजीय



ब्रम्हर्षि श्री हरेराम शर्मा.



वेदान्तसमुच्चयः ।

प्रातःस्मरणस्तोत्रम् ॥ १ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ प्रातः स्मरामि हृदि संस्फुरदात्मतत्त्वं
सच्चित्सुखं परमहंसगतिं तुरीयम् । यत्स्वप्नजागरसुषुप्तमवैति
नित्यं तद्ब्रह्म निष्कलमहं न च भूतसंघः ॥ १ ॥ प्रातर्भजामि
मनसो वचसामगम्यं वाचो विभान्ति निखिला यदनुग्रहेण ।
यन्नेति नेति वचनैर्निगमा अवोचुस्तं देवदेवमजमच्युतमाहुर-
ग्र्यम् ॥ २ ॥ प्रातर्नमामि तमसः परमर्कवर्णं पूर्णं सनातनपदं
पुरुषोत्तमाख्यम् । यस्मिन्निदं जगदशेषमशेषमूर्तां रज्ज्वां भुज-
ङ्गम इव प्रतिभासितं वै ॥ ३ ॥ श्लोकत्रयमिदं पुण्यं लोकत्र-
यविभूषणम् । प्रातःकाले पठेद्यस्तु स गच्छेत्परमं पदम् ॥ ४ ॥
इति श्रीभगवत्पादाचार्यविरचितं प्रातःस्मरणस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ १ ॥

मुमुक्षुपञ्चकम् ॥ २ ॥

ॐ परमात्मने नमः । विहायैनः कृत्वा क्रतुविधुरकर्मादि-
विहितं धियं संशोध्याऽऽप्त्वा चिदचिदवलोकादिनिकरम् ।
समाराध्याऽऽचार्यं नतिविमतिशुश्रूषणमुखैः प्रपन्नं सन् पृच्छेद्
विविदिपितमात्मीयमखिलम् ॥ १ ॥ विचार्याऽऽत्मानं स्वं
वे. स. १

श्रुतिगदितसच्चित्सुखमयं परंब्रह्मासीति श्रवणमननध्यानकर्णैः । अहं ब्रह्मासीति दृढमवगतिं गम्य परमां विवाध्येदं दृश्यं सकलमलमज्ञानसहितम् ॥ २ ॥ विदित्वेत्थं तत्त्वं निखिलनिगमान्तैर्निगदितं निहत्वाऽनर्थं वै सकलमपि जीवातु सहितम् । परानन्दो भूत्वा भवति भुवि भव्यो भुपति भो विधेयं कर्त्तव्यं विविधमपि हेयं हृदिगतम् ॥ ३ ॥ मुदो जीवन्मुक्तेर्यदि हृदि मनीषा स्वविदुपस्तदा वृत्तिं वृत्तेरनिशमभिकुर्वन् बहुतिथम् । विनाश्यैव स्थौल्यं मलिनतरसत्त्वस्य मनसः सुसत्त्वाचिर्भावात् परमसुखसिंधौ हि सुरमेत् ॥ ४ ॥ सुभूमिं प्राप्येमां परमसुखदां पञ्चममुखां सुखं भुक्त्वा ब्राह्मं दृढतरनिजारब्धमपि च । विलाप्येदं विश्वं जगदगमयं हेतुसहितं चिदानन्दे शुद्धे भजति च विदेहामृतमयम् ॥ ५ ॥ इति मुमुक्षुपञ्चकं समाप्तम् ॥ २ ॥

वैराग्यपञ्चकम् ॥ ३ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ शिलं किमनलं भवेदनलमौदं वाधितुं पयः प्रसृतिपूरकं किमु न धारकं सारसम् । अयत्नमलमल्पकं पथि पटच्चरं कच्चरं भजन्ति विद्युधा मुधा अहं कुक्षितः कुक्षितः ॥ १ ॥ दुरीश्वरद्वारवहिर्वितर्दिकादुरासिकावैरचितोऽयमञ्जलिः । यदञ्जनाभं निरपायमस्ति नो धनञ्जयस्य नन्दनभूषणं धनम् ॥ २ ॥ काचाय नीचं कमनीयवाचा मोचा फलखादमुचा न याचे । दयाकुचेले धनदत्कुचेले स्थितेऽकुचेले श्रितमाकुचेले ॥ ३ ॥ क्षोणीकोणशतांशपालनखलदुर्वारवर्गानलक्षुभ्यत्क्षुद्रनरेन्द्रचादुरचनां धन्यां न मन्यामहे । देव

सेवितुमेव निश्चिनुमहे योऽसौ दयालुः पुरा धानामुष्टिमुचे
कुचेलमुनये धत्ते स्म वित्तेशताम् ॥ ४ ॥ शरीरपतनावधि प्रभु-
निपेवणापादनादविन्धनधनंजयप्रशमदं धनं दन्धनम् । धनंज-
यविवर्धनं धनमुदूढगोवर्धनं सुसाधनमवाधनं सुमनसां समा-
राधनम् ॥ ५ ॥ इति श्रीसर्वतन्त्रस्वतन्त्रवेदान्ताचार्यकृतं वैरा-
ग्यपञ्चकं संपूर्णम् ॥ ३ ॥

साधनपञ्चकम् ॥ ४ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ वेदो नित्यमधीयतां तदुदितं कर्म
स्वनुष्ठीयतां तेनेशस्य विधीयतामपचितिः काम्ये मतिस्त्यज्य-
ताम् । पापौघः परिधूयतां भवसुखे दोषोऽनुसंधीयतामात्मे-
च्छा व्यवसीयतां निजगृहात्तूर्णं विनिर्गम्यताम् ॥ १ ॥ सङ्गः
सत्सु विधीयतां भगवतो भक्तिर्दृढा धीयतां शान्त्यादिः परि-
चीयतां दृढतरं कर्माशु संत्यज्यताम् । सद्विद्वानुपसर्प्यतां प्रति-
दिनं तत्पादुके सेव्यतां ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरोवाक्यं
समाकर्ण्यताम् ॥ २ ॥ वाक्यार्थश्च विचार्यतां श्रुतिशिरःपक्षः
समाश्रीयतां दुस्तर्कात्सुविरम्यतां श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसंधीयताम् ।
ब्रह्मैवास्मि विभाव्यतामहरहर्गर्वः परित्यज्यतां देहेऽहंमतिरु-
ज्यतां बुधजनैर्वादः परित्यज्यताम् ॥ ३ ॥ शुद्ध्याधिश्च चिकि-
त्स्यतां प्रतिदिनं भिक्षौपधं भुज्यतां स्वादन्नं न तु याच्यतां
विधिवशात्प्राप्तेन संतुष्यताम् । शीतोष्णादि विपक्ष्यतां न तु
वृथा वाक्यं समुच्चार्यतामौदासीन्यमभीप्स्यतां जनकृपानैर्गुर्य-
मुत्सृज्यताम् ॥ ४ ॥ एकान्ते सुखमास्यतां परतरे चेतः समा-

धीयतां पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्भाधितं दृश्यताम् ।
 प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चित्तिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां प्रारब्धं
 लिह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्वीयताम् ॥ ५ ॥ यः श्लोक-
 पञ्चकमिदं पठते मनुष्यः संचिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य ।
 तस्याशु संसृतिदवानलतीव्रधोरतापः प्रशान्तिमुपयाति चित्ति-
 प्रसादात् ॥ ६ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं साधनपञ्चकं
 संपूर्णम् ॥ ४ ॥

काशीपञ्चकम् ॥ ५ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा
 तीर्थवर्या मणिकर्णिका च । ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा सा
 काशिकाहं निजबोधरूपा ॥ १ ॥ यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं
 चराचरं भाति मनोविलासम् । सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा
 सा का० ॥ २ ॥ कोशेषु पञ्चस्यधिराजमाना बुद्धिर्भवानी
 प्रतिदेहगेहम् । साक्षी शिवः सर्वगणोन्तरात्मा सा का० ॥ ३ ॥
 काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका । सा काशी
 विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ॥ ४ ॥ काशीक्षेत्रं
 शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगङ्गा भक्तिः श्रद्धा गयेयं
 निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः । विश्वेशोज्यं तुरीयः सकल-
 जनमनःसाक्षिभूतोऽन्तरात्मा देहे सर्वं मदीये यदि वसति
 पुनस्तीर्थमन्यत्किमस्ति ॥ ५ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं
 काशीपञ्चकं संपूर्णम् ॥ ५ ॥

मनीपापञ्चकम् ॥ ६ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ सत्याचार्यस्य गमने कदाचिन्मुक्ति-
 दायकम् । काशीक्षेत्रं प्रति सह गौर्या मार्गे तु शंकरम् ॥ १ ॥
 अन्त्यवेपथरं दृष्ट्वा गच्छ गच्छेति चाब्रवीत् । शंकरः सोऽपि
 चाण्डालस्तं पुनः ग्राह्यं शंकरम् ॥ २ ॥ अन्नमयादन्नमयमथवा
 चैतन्यमेव चैतन्यात् । द्विजवर दूरीकर्तुं वाञ्छसि किं ब्रूहि
 गच्छ गच्छेति ॥ ३ ॥ किं गङ्गाम्बुनि विम्बितेऽम्बरमणौ चा-
 ण्डालवाटीपयःपूरे चान्तरमस्ति काञ्चनघटीमृत्कुम्भयोर्वाम्बरे ।
 प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरङ्गसहजानन्दावबोधाम्बुधौ विप्रोऽयं श्वप-
 चोऽयमित्यपि महान् कोयं विभेदभ्रमः ॥ ४ ॥ जाग्रत्स्वप्नसु-
 पुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते या ब्रह्मादिपिपीलिकान्त-
 तनुषु प्रोक्ता जगत्साक्षिणी । सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढ-
 प्रज्ञापि यस्यास्ति चेचाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा
 मनीषा मम ॥ ५ ॥ ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रवि-
 स्तारितं सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाशेषं मया कल्पितम् । इत्थं
 यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले चाण्डालोऽस्तु ॥ ६ ॥
 शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरोर्नित्यं ब्रह्म
 निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना । भूतं भावि च
 दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरि-
 त्येषा ॥ ७ ॥ या तिर्यङ्नरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा
 तासां हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः । तां
 पंहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन्योगी निर्वृ-
 त् । हि गुरुरित्येषा ॥ ८ ॥ यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत
 इन्द्रादयो निर्वृता यश्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा

धीयतां पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्वाधितं दृश्यताम् ।
 प्राक्कर्म प्रविलाप्यतां चित्तिबलान्नाप्युत्तरैः श्लिष्यतां प्रारब्धं
 लिह भुज्यतामथ परब्रह्मात्मना स्वीयताम् ॥ ५ ॥ यः श्लोक-
 पञ्चकमिदं पठते मनुष्यः संचिन्तयत्यनुदिनं स्थिरतामुपेत्य ।
 तस्याशु संसृतिदवानलतीव्रघोरतापः प्रशान्तिमुपयाति चित्ति-
 प्रसादात् ॥ ६ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं साधनपञ्चकं
 संपूर्णम् ॥ ४ ॥

काशीपञ्चकम् ॥ ५ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ मनोनिवृत्तिः परमोपशान्तिः सा
 तीर्थवर्या मणिकर्णिका च । ज्ञानप्रवाहा विमलादिगङ्गा सा
 काशिकाहं निजबोधरूपा ॥ १ ॥ यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं
 चराचरं भाति मनोविलासम् । सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा
 सा का० ॥ २ ॥ कोशेषु पञ्चस्वधिराजमाना बुद्धिर्भवानी
 प्रतिदेहगेहम् । साक्षी शिवः सर्वगणोन्तरात्मा सा का० ॥ ३ ॥
 काश्यां हि काश्यते काशी काशी सर्वप्रकाशिका । सा काशी
 विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका ॥ ४ ॥ काशीक्षेत्रं
 शरीरं त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगङ्गा भक्तिः श्रद्धा गयेयं
 निजगुरुचरणध्यानयोगः प्रयागः । विश्वेशोज्यं तुरीयः सकल-
 जनमनःसाक्षिभूतोऽन्तरात्मा देहे सर्वं मदीये यदि वसति
 पुनस्तीर्थमन्यत्किमस्ति ॥ ५ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं
 काशीपञ्चकं संपूर्णम् ॥ ५ ॥

मनीपापञ्चकम् ॥ ६ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ सत्याचार्यस्य गमने कदाचिन्मुक्ति-
 दायकम् । काशीक्षेत्रं प्रति सह गौर्या मार्गे तु शंकरम् ॥ १ ॥
 अन्त्यवेपथरं दृष्ट्वा गच्छ गच्छेति चाब्रवीत् । शंकरः सोऽपि
 चाण्डालस्तं पुनः प्राह शंकरम् ॥ २ ॥ अन्नमयादन्नमयमथवा
 चैतन्यमेव चैतन्यात् । द्विजवर दूरीकर्तुं वाञ्छसि किं ब्रूहि
 गच्छ गच्छेति ॥ ३ ॥ किं गङ्गाम्बुनि विम्बितेऽम्बरमणौ चा-
 ण्डालवाटीपयःपूरे चान्तरमस्ति काञ्चनघटीमृत्कुम्भयोर्वाम्बरे ।
 प्रत्यग्वस्तुनि निस्तरङ्गसहजानन्दावबोधाम्बुधौ विप्रोऽयं श्वप-
 चोऽयमित्यपि महान् कोयं विभेदभ्रमः ॥ ४ ॥ जाग्रत्स्वप्नसु-
 पुप्तिषु स्फुटतरा या संविदुज्जृम्भते या ब्रह्मादिपिपीलिकान्त-
 तनुषु प्रोता जगत्साक्षिणी । सैवाहं न च दृश्यवस्त्विति दृढ-
 प्रज्ञापि यस्यास्ति चेच्चाण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु गुरुरित्येषा
 मनीषा मम ॥ ५ ॥ ब्रह्मैवाहमिदं जगच्च सकलं चिन्मात्रवि-
 स्तारितं सर्वं चैतदविद्यया त्रिगुणयाशेषं मया कल्पितम् । इत्थं
 यस्य दृढा मतिः सुखतरे नित्ये परे निर्मले चाण्डलोऽस्तु ॥ ६ ॥
 शश्वन्नश्वरमेव विश्वमखिलं निश्चित्य वाचा गुरोर्नित्यं ब्रह्म
 निरन्तरं विमृशता निर्व्याजशान्तात्मना । भूतं भावि च
 दुष्कृतं प्रदहता संविन्मये पावके प्रारब्धाय समर्पितं स्ववपुरि-
 त्येषा ॥ ७ ॥ या तिर्यङ्नरदेवताभिरहमित्यन्तः स्फुटा
 गृह्यते यद्भासा हृदयाक्षदेहविषया भान्ति स्वतोऽचेतनाः । तां
 भास्यैः पिहितार्कमण्डलनिभां स्फूर्तिं सदा भावयन्योगी निर्वृ-
 त्तमानसो हि गुरुरित्येषा ॥ ८ ॥ यत्सौख्याम्बुधिलेशलेशत
 इमे शक्रादयो निर्वृता यश्चित्ते नितरां प्रशान्तकलने लब्ध्वा

मुनिनिर्वृतः । यस्मिन्नित्यसुखाम्बुधौ गलितधीर्ब्रह्मैव न ब्रह्म-
विद्यः कश्चित्स सुरेन्द्रवन्दितपदो नूनं मनीषा मम ॥ ९ ॥
इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं मनीषापञ्चकं संपूर्णम् ॥ ६ ॥

आत्मपञ्चकम् ॥ ७ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ नाहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गं नाहं-
कारः प्राणवर्गो न बुद्धिः । दारापत्यक्षेत्रचित्तादिदूरः साक्षी
नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम् ॥ १ ॥ रज्ज्वज्ञानान्द्राति रज्जु-
र्यथाहिः स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः । आप्तोक्त्या हि
आन्तिनाशे स रज्जुर्जीवो नाहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम् ॥ २ ॥
आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्यज्ञानानन्दरूपे विमोहात् ।
निद्रामोहात्स्वप्नवत्तत्र सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम्
॥ ३ ॥ मत्तो नान्यत्किंचिदत्रास्ति विश्वं सत्यं बाह्यं वस्तु
मायोपकृतम् । आदर्शान्तिर्भासमानस्य तुल्यं मय्यद्वैते भाति
तस्माच्छिवोऽहम् ॥ ४ ॥ नाहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो देह-
स्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः । कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहं-
कारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम् ॥ ५ ॥ नाहं जातो जन्म-
मृत्यू कुतो मे नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे । नाहं चिच्च-
शोकमोहौ कुतो मे नाहं कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो मे ॥ ६ ॥
इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितमात्मपञ्चकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ ७ ॥

आत्मपट्टकम् ॥ ८ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ मनोबुद्ध्यहंकारचित्तानि नाहं न
च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे । न च व्योम धूमिर्न तेजो न

वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥ १ ॥ न च प्राण-
संज्ञो न वै पञ्चवायुर्न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः । न
वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायुश्चिदानन्द० ॥ २ ॥ न मे द्वेष-
रागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः । न
धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्षश्चिदानन्द० ॥ ३ ॥ न पुण्यं
न पापं न सौख्यं न दुःखं न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञाः ।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्द० ॥ ४ ॥ न
मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता च
जन्म । न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानन्द० ॥ ५ ॥
अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रिया-
णाम् । न चासंगतं नैव मुक्तिर्न मेयश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं
शिवोऽहम् ॥ ६ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितमात्म-
पदकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ ८ ॥

निर्वाणाष्टकम् ॥ ९ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ भेदाभेदौ सपदि गलितौ पुण्यपापे
विशीर्णे मायामोहौ क्षयमुपगतौ नष्टसन्देहवृत्तेः । शब्दातीतं
त्रिगुणरहितं प्राप्य तत्त्वावबोधं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को
विधिः को निषेधः ॥ १ ॥ यद्वात्मानं सकलवपुषामेकमन्त-
र्वहिस्यं दृष्ट्वा पूर्णं स्वमिव सततं सर्वभाण्डस्थमेकम् । नान्य-
त्कार्यं किमपि च ततः कारणान्निब्रह्मरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विच-
रतः को विधिः को निषेधः ॥ २ ॥ हेम्नः कार्यं हुतवहगतं
हेममेवेति यद्वत्क्षीरे क्षीरं समरसतया तोयमेवाम्बुमध्ये । एवं
सर्वं समरसतया त्वंपदं तत्पदार्थं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः

को विधिः को निषेधः ॥ ३ ॥ यस्मिन्विश्वं सकलभुवनं साम-
 रस्यैकभूतमुर्वी ह्यापोऽनलमनिलखं जीवमेवं क्रमेण । यत्क्षारा-
 ब्धौ समरसतया सैन्धवैकल्यभूतं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को
 विधिः को निषेधः ॥ ४ ॥ यद्वन्नद्यौ दधिसमरसौ सागरत्वं
 ह्यवाप्तौ तद्वज्जीवालयपरिगतौ सामरस्यैकभूताः । भेदातीतं
 परिलयगतं सच्चिदानन्दरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को
 विधिः को निषेधः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा वेद्यं परमथपदं स्वात्मबोध-
 स्वरूपं बुद्ध्यात्मानं सकलवपुषामेकमन्तर्बहिस्थम् । भूत्वा नित्यं
 सदुदिततया स्वप्रकाशस्वरूपं निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः को
 विधिः को निषेधः ॥ ६ ॥ कार्याकार्ये किमपि सततं नैव
 कर्त्तव्यमस्ति जीवन्मुक्तस्थितिरवगतो दग्धवस्त्रावभासः । एवं
 देहे प्रविलयगते तिष्ठमानो विमुक्तो निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतः
 को विधिः को निषेधः ॥ ७ ॥ कस्मात्कोहं किमपि च भवा-
 न्कोयमत्र प्रपञ्चः स्वं स्वं वेद्यं गगनसदृशं पूर्णतत्त्वप्रकाशम् ।
 आनन्दाख्ये समरसघने बाह्यमन्तर्विहीने निस्त्रैगुण्ये पथि विच-
 रतः को विधिः को निषेधः ॥ ८ ॥ सत्यं सत्यं परमममृतं
 सर्वकल्याणरूपं मायारण्ये दहनममलं शान्तिनिर्वाणदीपम् ।
 तेजोरूपं निगमसदनं व्यासपुत्राष्टकं यः प्रातःकाले पठति
 मनसा याति निर्वाणमार्गे ॥ ९ ॥ इति श्रीमहर्षिशुकदेवमुनि-
 विरचितं निर्वाणाष्टकं संपूर्णम् ॥ ९ ॥

निर्वाणदशकम् ॥ १० ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुर्न
 खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः । अनैकान्तिकत्वात्सुषुप्त्येकसि-

द्वस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ १ ॥ न वर्णा न
 वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणा ध्यानयोगादयोऽपि । अना-
 त्माश्रयोऽहं ममाध्यासहीनात्तदेको० ॥ २ ॥ न माता पिता
 वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं युवन्ति ।
 सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्तदेको० ॥ ३ ॥ न सांख्यं न
 शैवं न तत्पाञ्चरात्रं न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा । विशिष्टा-
 नुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात्तदेको० ॥ ४ ॥ न शुक्लं न कृष्णं न
 रक्तं न पीतं न पीनं न कुञ्जं न ह्रस्वं न दीर्घम् । अरूपं तथा
 ज्योतिराकारकत्वात्तदेको० ॥ ५ ॥ न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा
 सुषुप्तिर्न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञको वा । अविद्यात्मकत्वा-
 त्रयाणां तुरीयं तदेको० ॥ ६ ॥ न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो
 न शिक्षा न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः । स्वरूपावबोधा-
 द्विकल्पासहिष्णुस्तदेको० ॥ ७ ॥ न चोर्ध्वं न चाधो न
 चान्तर्न बाह्यं न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वा परा दिक् । विय-
 त्प्रापकत्वादखण्डैकरूपस्तदेको० ॥ ८ ॥ अपि व्यापकत्वादि-
 तत्वात्प्रयोगात् स्वतःसिद्धभावादनन्याश्रयत्वात् । जगत्तुच्छमे-
 तत्समस्तं तदन्यस्तदेको० ॥ ९ ॥ न चैकं तदन्यद्वितीयं कुतः
 स्यान्न चाकेवलत्वं न वा केवलत्वात् । न शून्यं न चाशून्यम-
 द्वैतकत्वात्कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥ १० ॥ इति श्रीम-
 च्छंकराचार्यविरचितं निर्वाणदशकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ १० ॥

आचार्यकृतपदपदी ॥ ११ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ अविनयमपनय विष्णो दमय मनः
 शमय विषयमृगतृष्णाम् । भूतदयां विस्तारय तारय संसार-

सागरतः ॥ १ ॥ दिव्यधुनीमंकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे । श्रीपतिपदारविन्दे भवभयखेदच्छिदे वन्दे ॥ २ ॥ सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रो हि तरङ्गः कचन समुद्रो न तारङ्गः ॥ ३ ॥ उद्धृतनग नगभिदनुज दनुजकुलामित्र मित्रशशिदृष्टे । दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥ ४ ॥ मत्स्यादिभिरवतारैरवतारवताञ्चता वसुधाम् । परमेश्वर परिपाल्यो भवता भवतापभीतोऽहम् ॥ ५ ॥ दामोदर गुणमन्दिर सुन्दरवदनारविन्द गोविन्द । भवजलधिमथनमन्दर परमं दरमपनय त्वं मे ॥ ६ ॥ नारायण करुणामय शरणं करवाणि तावकौ चरणौ । इति पट्टपदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥ ७ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं पट्टपदीस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ ११ ॥

धन्याष्टकम् ॥ १२ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ तज्ज्ञानं प्रशमकरं यदिन्द्रियाणां तज्ज्ञेयं यदुपनिषत्सु निश्चितार्थम् । ते धन्या भुवि परमार्थनिश्चितेहाः शेषास्तु भ्रमनिलये परिभ्रमन्ति ॥ १ ॥ आदौ विचित्य विषयान्मदमोहरागद्वेषादिशत्रुगणमाहृतयोगराज्याः । ज्ञात्वाऽमतं समनुभूय परात्मविद्याकान्तासुखा वत गृहे विचरन्ति धन्याः ॥ २ ॥ त्यक्त्वा गृहे रतिमतो गतिहेतुभूतामात्मेच्छयोपनिषदर्थरसं पिवन्तः । वीतस्पृहा विषयभोगपदे विरक्ता धन्याश्चरन्ति विजनेषु विरक्तसङ्गाः ॥ ३ ॥ त्यक्त्वा ममाहमिति बन्धकरे पदे द्वे मानावमानसदृशाः समदर्शिनश्च । कर्तारमन्यमवगम्य तदर्पितानि कुर्वन्ति कर्मपरिपाकफलानि

धन्याः ॥ ४ ॥ त्यक्त्वेपणात्रयमवेक्षितमोक्षमार्गा भैक्ष्यामृतेन
परिकल्पितदेहयात्राः । ज्योतिः परात्परतरं परमात्मसंज्ञं धन्या
द्विजा रहसि हृद्यवलोकयन्ति ॥ ५ ॥ नासन्न सन्न सदसन्न
महन्न चाणु न स्त्री पुमान्न च नपुंसकमेकवीजम् । यैर्ब्रह्म
तत्समनुपासितमेकचित्ता धन्या विरेजुरितरे भवपाशवद्धाः ॥ ६ ॥
अज्ञानपङ्कपरिमग्नमपेतसारं दुःखालयं मरणजन्मजरावसक्तम् ।
संसारबन्धनमनित्यमवेक्ष्य धन्या ज्ञानासिना तदवशीर्य विनि-
श्चयन्ति ॥ ७ ॥ शान्तैरनन्यमतिभिर्मधुरस्वभावैरेकत्वनिश्चितम-
नोभिरपेतमोहैः । साकं वनेषु विजितात्मपदस्वरूपं शास्त्रेषु
सम्यगनिशं विमृशन्ति धन्याः ॥ ८ ॥ अहिरिव जनयोगं
सर्वदा वर्जयेद्यः कुणपमिव सुनारीं त्यक्तुकामो विरागी । विप-
मिव विपयान्यो मन्यमानो दुरन्तान् जयति परमहंसो मुक्ति-
भावं समेति ॥ ९ ॥ संपूर्णं जगदेव नन्दनवनं सर्वेऽपि कल्प-
द्रुमा गाङ्गं वारि समस्तवारिनिवहः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ।
वाचः प्राकृतसंस्कृताः श्रुतिशिरो वाराणसी मेदिनी सर्वाव-
स्थितिरेव वस्तुविषया दृष्टे परब्रह्मणि ॥ १० ॥ इति श्रीमत्प-
रमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं धन्याष्टकस्तोत्रं
समाप्तम् ॥ १२ ॥

विज्ञाननौका ॥ १३ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ तपोयज्ञदानादिभिः शुद्धबुद्धिर्वि-
रक्तो नृपादौ पदे तुच्छबुद्ध्या । परित्यज्य सर्वं यदामोति
तत्त्वं परं ब्रह्म नित्यं तदेवाहमस्मि ॥ १ ॥ दयालुं गुरुं ब्रह्म-
निष्ठं प्रशान्तं समाराध्य मत्पा विचार्य स्वरूपम् । यदामोति

तत्त्वं निदिध्यास्य विद्वान्परं ब्रह्म० ॥ २ ॥ यदानन्दरूपं प्रका-
शस्वरूपं निरस्तप्रपञ्चं परिच्छेदशून्यम् । अहंब्रह्मवृत्त्यैकगम्यं
तुरीयं परं ब्रह्म० ॥ ३ ॥ यदज्ञानतो भाति विश्वं समस्तं
विनष्टं च सद्यो यदात्मप्रबोधे । मनोवागतीतं विशुद्धं विमुक्तं
परं ब्रह्म० ॥ ४ ॥ निपेधे कृते नेति नेतीति वाक्यैः समाधि-
स्थितानां यदाभाति पूर्णम् । अवस्थात्रयातीतमेकं तुरीयं परं
ब्रह्म० ॥ ५ ॥ यदानन्दलेशैः समानन्दि विश्वं यदाभाति सत्त्वं
तदाभाति सर्वम् । यदालोचने रूपमन्यत्समस्तं परं ब्रह्म० ॥ ६ ॥
अनन्तं विश्वं सर्वयोनिं निरीहं शिवं सङ्गहीनं यदोङ्कारगम्यम् ।
निराकारमत्युज्ज्वलं मृत्युहीनं परं ब्रह्म० ॥ ७ ॥ यदानन्द-
सिन्धौ निमग्नः पुमान्स्यादविद्याविलासः समस्तप्रपञ्चः । यदा
न स्फुरत्यद्भुतं यन्निमित्तं परं ब्रह्म० ॥ ८ ॥ स्वरूपानुसंधान-
रूपां स्तुतिं यः पठेदादराद्भक्तिभावो मनुष्यः । शृणोतीह वा
नित्यमुद्युक्तचित्तो भवेद्विष्णुरत्रैव वेदग्रमाणात् ॥ ९ ॥ विज्ञा-
ननावं परिगृह्य कश्चित्तरेद्यदज्ञानमयं भवाब्धिम् । ज्ञानासिना
ग्रो हि विच्छिद्य तृष्णां विष्णोः पदं याति स एव धन्यः
॥ १० ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितां विज्ञाननौका
संपूर्णा ॥ १३ ॥

द्वादशपञ्जरिका (मोहमुद्गर) स्तोत्रम् ॥ १४ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ मूढ जहीहि धनागमतृष्णां कुरु
सद्बुद्धिं मनसि वितृष्णाम् । यल्लभसे निजकर्मोपात्तं वित्तं तेन
विनोदय चित्तम् ॥ १ ॥ अर्थमनर्थं भावय नित्यं नास्ति ततः
सुखलेशः सत्यम् । पुत्रादपि धनभाजां भीतिः सर्वत्रैषा

विहिता नीतिः ॥ २ ॥ का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽय-
मतीव विचित्रः । कस्य त्वं कः कुत आयातस्तत्त्वं चिन्तय
यदिदं भ्रातः ॥ ३ ॥ मा कुरु जनधनयौवनगर्वं हरति निमे-
षात्कालः सर्वम् । मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं त्वं
प्रविश विदित्वा ॥ ४ ॥ कामं क्रोधं मोहं लोभं त्यक्त्वात्मानं
भावय कोऽहम् । आत्मज्ञानविहीना मूढास्ते पच्यन्ते नरकनि-
गूढाः ॥ ५ ॥ सुरमन्दिरतरुमूलनिवासः शय्या भूतलमजिनं
वासः । सर्वपरिग्रहभोगत्यागः कस्य सुखं न करोति विरागः
॥ ६ ॥ शत्रौ मित्रे पुत्रे बन्धौ मा कुरु यत्नं निग्रहसंधौ । भव
समचित्तः सर्वत्र त्वं वाञ्छस्यचिराद्यदि विष्णुत्वम् ॥ ७ ॥
त्वयि मयि चान्यत्रैको विष्णुर्व्यर्थं कुप्यसि सर्वसहिष्णुः । सर्व-
स्मिन्नपि पश्यात्मानं सर्वत्रोत्सृज भेदज्ञानम् ॥ ८ ॥ प्राणा-
यामं प्रत्याहारं नित्यानित्यविवेकविचारम् । जाप्यसमेतसमा-
धिविधानं कुर्ववधानं महदवधानम् ॥ ९ ॥ नलिनीदलगतस-
लिलं तरलं तद्वज्जीवितमतिशयचपलम् । विद्धि व्याध्यभिमान-
ग्रस्तं लोकं शोकहतं च समस्तम् ॥ १० ॥ का तेऽष्टादशदेशे
चिन्ता वातुल तव किं नास्ति नियन्ता । यस्त्वां हस्ते सुदृढ-
निबद्धं बोधयति ग्रमवादिविरुद्धम् ॥ ११ ॥ गुरुचरणाम्बुज-
निर्भरभक्तः संसारादचिराद्भव मुक्तः । सेन्द्रियमानसनियमा-
देवं द्रक्ष्यसि निजहृदयस्थं देवम् ॥ १२ ॥ द्वादशपञ्जरिकामय
एषः शिष्याणां कथितो ह्युपदेशः । येषां चित्ते नैव विवेकस्ते
पच्यन्ते नरकमनेकम् ॥ १३ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविर-
चितं द्वादशपञ्जरिकास्तोत्रं संपूर्णम् ॥ १४ ॥

चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रम् ॥ १५ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ दिनमपि रजनी सायं प्रातः शिशि-
 रवसन्तौ पुनरायातः । कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न
 मुञ्चत्याशावायुः ॥ १ ॥ भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज
 गोविन्दं मूढमते । प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति
 डुकृञ्करणे । (ध्रुवपदम्) । अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू रात्रौ चुबुक-
 समर्पितजानुः । करतलमिक्षा तरुतलवासस्तदपि न मुञ्चत्या-
 शापाशः । भज गो० ॥ २ ॥ यावद्विचोपार्जनसक्तस्तावन्निज-
 परिवारो रक्तः । पश्चाद्वावति जर्जरदेहे वार्तां पृच्छति कोऽपि
 न गेहे । भज गो० ॥ ३ ॥ जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः कापा-
 याम्बरबहुकृतवेषः । पश्यन्नपि च न पश्यति मूढ उदरनिमित्तं
 बहुकृतवेषः । भज गो० ॥ ४ ॥ भगवद्गीता किञ्चिदधीता
 गङ्गाजललवकणिका पीता । सकृदपि यस्य मुरारिसमर्चा तस्य
 यमः किं कुरुते चर्चाम् । भज गो० ॥ ५ ॥ अङ्गं गलितं
 पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम् । वृद्धो याति गृहीत्वा
 दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशापिण्डम् । भज गो० ॥ ६ ॥ बाल-
 स्तावत्क्रीडासक्तस्तरुणस्तावत्तरुणीरक्तः । वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः
 परे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः । भज गो० ॥ ७ ॥ पुनरपि जननं
 पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् । इह संसारे भव-
 दुस्तारे कृपयाऽपारे पाहि मुरारे । भज गो० ॥ ८ ॥ पुनरपि
 रजनी पुनरपि दिवसः पुनरपि पक्षः पुनरपि मासः । पुनर-
 प्ययनं पुनरपि वर्षं तदपि न मुञ्चत्याशामर्षम् । भज गो०
 ॥ ९ ॥ वयसि गते कः कामविकारः शुष्के नीरे कः कासारः ।
 नष्टे द्रव्ये कः परिवारो ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः । भज गो०

॥ १० ॥ नारीस्तनभरनाभिनिवेशं मिथ्यामायामोहावेशम् ।
 एतन्मांसवसादिविकारं मनसि विचारय वारंवारम् । भज
 गो० ॥ ११ ॥ कस्त्वं कोऽहं कुत आयातः का मे जननी को
 मे तातः । इति परिभावय सर्वमसारं विश्वं त्यक्त्वा स्वप्नवि-
 चारम् । भज गो० ॥ १२ ॥ गेयं गीता नामसहस्रं ध्येयं
 श्रीपतिरूपमजस्रम् । नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च
 वित्तम् । भज गो० ॥ १३ ॥ यावज्जीवो निवसति देहे कुशलं
 तावत्पृच्छति गेहे । गतवति वायौ देहापाये भार्या विभ्यति
 तस्मिन्काये । भज गो० ॥ १४ ॥ सुखतः क्रियते रामाभोगः
 पश्चाद्धन्त शरीरे रोगः । यद्यपि लोके मरणं शरणं तदपि न
 मुञ्चति पापाचरणम् । भज गो० ॥ १५ ॥ रथ्याचर्पटविरचि-
 तकन्धः पुण्यापुण्यविवर्जितपन्थः । नाहं न त्वं नायं लोकस्त-
 दपि किमर्थं क्रियते शोकः । भज गो० ॥ १६ ॥ कुरुते
 गङ्गासागरगमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम् । ज्ञानविहीने
 सर्वमनेन मुक्तिर्न भवति जन्मशतेन । भज गो० ॥ १७ ॥ इति
 श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं चर्पटपञ्जरिकास्तोत्रं संपूर्णम् ॥ १५ ॥

सदाचारस्तोत्रम् ॥ १६ ॥

परमात्मने नमः ॥ सच्चिदानन्दरूपाय जगद्गुरुरहेतवे ।
 सदादिनाय पूर्णाय नमोज्ज्वलाय विष्णवे ॥ १ ॥ सर्ववेदान्त-
 सिद्धिप्रदं प्रीथितं निर्मलं शिवम् । सदाचारं प्रवक्ष्यामि योगिनां
 ज्ञानार्थद्वये ॥ २ ॥ प्रातः सरामि देवस्य सवितुर्भग आत्मनः ।
 वरेण्यं तद्वियो यो नञ्चिदानन्दः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥ अन्वय-
 व्यतिरेकाभ्यां जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु । यदेकं केवलं ज्ञानं तदेवाहं

परं बृहत् ॥ ४ ॥ ज्ञानाज्ञानविलासोऽयं ज्ञानाज्ञानेन शाम्य-
 ति । ज्ञानाज्ञाने परित्यज्य ज्ञानमेवावशिष्यते ॥ ५ ॥ अत्य-
 न्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनिर्मलः । असङ्गोऽहमिति ज्ञात्वा
 शौचमेतत्प्रचक्षते ॥ ६ ॥ मन्मनो मीनवन्नित्यं क्रीडत्यानन्द-
 वारिधौ । सुज्ञातस्तेन पूतात्मा सम्यग्विज्ञानवारिणा ॥ ७ ॥
 अथाद्यमर्पणं कुर्यात् प्राणापाननिरोधतः । मनः पूर्णं समाधा-
 य मप्रकुम्भो यथार्णवे ॥ ८ ॥ लयविक्षेपयोः संधौ मनस्तत्र
 निरामिषम् । स संधिः साधितो येन स मुक्तो नात्र संशयः
 ॥ ९ ॥ सर्वत्र प्राणिनां देहे जपो भवति सर्वदा । हंसः सोह-
 मिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥ १० ॥ तर्पणं स्वसुखेनैव
 खेन्द्रियाणां प्रतर्पणम् । मनसा मन आलोक्य स्वयमात्मा
 प्रकाशते ॥ ११ ॥ आत्मनि स्वप्रकाशेऽग्नौ चित्तमेकाहुति-
 क्षिपेत् । अग्निहोत्री स विज्ञेय इतरे नामधारकाः ॥ १२ ॥
 देहो देवालयः प्रोक्तो देही देवो निरञ्जनः । अर्चितः सर्वभा-
 वेन स्वानुभूत्या विराजते ॥ १३ ॥ मौनं स्वाध्यायश्च ध्यात-
 ध्येयब्रह्मानुचितनम् । ज्ञानेनेति तयोः सम्यग्निपेधान्तप्रदर्श-
 नम् ॥ १४ ॥ अतीतानागतं किञ्चिन्न सरामि न चिन्तये ।
 रागद्वेषं विना प्राप्तं शुद्धाम्यत्र शुभाशुभम् ॥ १५ ॥ हठा-
 भ्यासो हि संन्यासो नैव कापायवाससा । नाहं देहोऽहमात्म-
 ति निश्चयो न्यासलक्षणम् ॥ १६ ॥ अभयं सर्वभूतानां दान-
 माहुर्मनीषिणः । निजानन्दे स्पृहा नान्यद्वैराग्यस्यावधिर्मत-
 ॥ १७ ॥ वेदान्तश्रवणं कुर्यात् मननं चोपपत्तिभिः । योगे-
 नाभ्यसनं नित्यं ततो दर्शनमात्मनः ॥ १८ ॥ शब्दशक्ते-
 रचिन्त्यत्वाच्छब्दादेवापरोक्षधीः । प्रसुप्तपुरुषो यद्वच्छब्दे नैवा-

नुबुध्यते ॥ १९ ॥ आत्मानात्मविवेकेन ज्ञानं भवति निर्म-
 लम् । गुरुणा बोधितः शिष्यः शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ २० ॥
 न त्वं देहो नेन्द्रियाणि न प्राणो न मनो न धीः । विकारि-
 त्वाद्विनाशित्वाद् दृश्यत्वाच्च घटो यथा ॥ २१ ॥ विशुद्धं केवलं
 ज्ञानं निर्विशेषं निरंजनम् । यदेकं परमानन्दं तत्त्वमस्यद्वयं परम्
 ॥ २२ ॥ शब्दस्याद्यन्तते सिद्धे मनसोऽपि तथैव च । मध्ये
 साक्षितया नित्यं तदेव त्वं भ्रमं जहि ॥ २३ ॥ स्थूलवैराज-
 योरैक्यं सूक्ष्महैरण्यगर्भयोः । अज्ञानमाययोरैक्यं प्रत्यग्विज्ञा-
 नपूर्णयोः ॥ २४ ॥ चिन्मात्रैकरसे विष्णौ ब्रह्मात्मैक्यस्वरू-
 पके । भ्रमेणैव जगज्जातं रज्ज्वां सर्पभ्रमो यथा ॥ २५ ॥
 तार्किकाणां च जीवेशौ वाच्यावेतौ विदुर्वुधाः । लक्ष्यौ च
 सांख्ययोगाभ्यां वेदान्तैरेकता तयोः ॥ २६ ॥ कार्यकारण-
 वाच्यांशौ जीवेशौ योजहच्च तौ । अजहच्च तयोर्लक्ष्यौ चिदं-
 शावेकरूपिणौ ॥ २७ ॥ कर्मशास्त्रे कुतो ज्ञानं तर्के नैवास्ति
 निश्चयः । सांख्ययोगौ भिदापन्नौ शाब्दिकाः शब्दतत्पराः
 ॥ २८ ॥ अन्ये पापण्डिनः सर्वे ज्ञानवार्तासु दुर्बलाः । एकं
 वेदान्तविज्ञानं स्वानुभूत्या विराजते ॥ २९ ॥ अहं ममेत्ययं
 बन्धो ममाहं नेति मुक्तता । बन्धमोक्षौ गुणैर्भाति गुणाः
 प्रकृतिसंभवाः ॥ ३० ॥ ज्ञानमेकं सदा भाति सर्वावस्थासु
 निर्मलम् । मन्दभाग्या न जानन्ति स्वरूपं केवलं बृहत् ॥ ३१ ॥
 संकल्पसाक्षिणं ज्ञानं सर्वलोकैकजीवनम् । तदस्मीति च यो
 वेद स मुक्तो नात्र संशयः ॥ ३२ ॥ प्रमाता च प्रमाणं च
 प्रमेयप्रमितिस्तथा । यस्य भासावभासेत मानं ज्ञानाय तस्य
 किम् ॥ ३३ ॥ अर्थाकारा भवेद्वृत्तिः फलेनार्थः प्रकाशते ।

अर्थज्ञानं विजानाति स एवार्थः पर स्मृतः ॥ ३४ ॥ वृत्ति-
 व्याप्यत्वमेवास्तु फलव्याप्तिः कथं भवेत् । स्वप्रकाशस्वरूप-
 त्वात्सिद्धत्वाच्च चिदात्मनः ॥ ३५ ॥ अर्थादर्थे यदा वृत्तिर्गन्तुं
 चलति चान्तरे । निराधारा निर्विकारा या दशा सोन्मनी
 स्मृता ॥ ३६ ॥ चित्तं चिच्च विजानीयात् तत्काररहितं यदा ।
 तत्कारविषयाध्यासं जपारागो यथा मणौ ॥ ३७ ॥ ज्ञेयवस्तु-
 परित्यागाज्ज्ञानं तिष्ठति केवलम् । त्रिपुटी क्षीणतामेति ब्रह्म-
 निर्वाणमृच्छति ॥ ३८ ॥ मनोमात्रमिदं सर्वं तन्मनोऽज्ञानमा-
 त्रकम् । अज्ञानं भ्रम इत्याहुर्विज्ञानं परमं पदम् ॥ ३९ ॥
 अज्ञानं चान्यथाज्ञानं मायामेतां वदन्ति ते । ईश्वरं मायिनं
 विद्यान्मायातीतं निरंजनम् ॥ ४० ॥ सदानन्दे चिदाकाशे
 माया मेघस्तडिन्मनः । अहंता गर्जनं तत्र धारासारो हि वृत्तयः
 ॥ ४१ ॥ महामोहान्धकारेऽस्मिन् देवो वर्पति लीलया । अस्या
 वृष्टेर्विरामाय प्रबोधैकसमीरणः ॥ ४२ ॥ ज्ञानं दृग्दृश्ययो-
 र्भावं विज्ञानं दृश्यशून्यता । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति
 किञ्चन ॥ ४३ ॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं तज्ज्ञानं ज्ञानमुच्यते ।
 विज्ञानं चोभयोरैक्यं क्षेत्रज्ञपरमात्मनोः ॥ ४४ ॥ परोक्षं शास्त्र-
 जं ज्ञानं विज्ञानं चात्मदर्शनम् । आत्मनो ब्रह्मणः सम्यगुपा-
 धिद्वयवर्जितम् ॥ ४५ ॥ त्वमर्थविषयं ज्ञानं विज्ञानं तत्पदाश्र-
 यम् । पदयोरैक्यबोधस्तु ज्ञानविज्ञानसंज्ञकम् ॥ ४६ ॥ आत्मा
 नात्मविवेकस्य ज्ञानमाहुर्मनीषिणः । अज्ञानं चान्यथा लोके
 विज्ञानं तन्मयं जगत् ॥ ४७ ॥ अन्यव्यतिरेकाभ्यां सर्वत्रैकं
 प्रपश्यति । यत्तत्तु वृत्तिजं ज्ञानं विज्ञानं ज्ञानमात्रकम् ॥ ४८ ॥
 अज्ञानध्वंसकं ज्ञानं विज्ञानं चोभयात्मकम् । ज्ञानविज्ञाननिष्ठं

तत्सद्ब्रह्मणि चार्पितम् ॥ ४९ ॥ भोक्ता सत्त्वगुणः शुद्धो भोगा-
नां साधनं रजः । भोग्यं तमोगुणं ब्राह्मरात्मा चैषां प्रकाशकः
॥ ५० ॥ ब्रह्माध्ययनसंयुक्तो ब्रह्मचर्यरतः सदा । सर्वं ब्रह्मेति
यो वेद ब्रह्मचारी स उच्यते ॥ ५१ ॥ गृहस्थो गुणमध्यस्थः
शरीरं गृहमुच्यते । गुणाः कुर्वन्ति कर्माणि नाहं कर्तेति बुद्धि-
मान् ॥ ५२ ॥ किमुग्रैश्च तपोभिश्च यस्य ज्ञानमयं तपः ।
हर्षामर्षविनिर्मुक्तो वानप्रस्थः स उच्यते ॥ ५३ ॥ सदाचार-
मिमं नित्यं ये च संदधते बुधाः । संसारसागराच्छीघ्रं मुच्यन्ते
नात्र संशयः ॥ ५४ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं सदा-
चारस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ १६ ॥

ब्रह्मज्ञानावली ॥ १७ ॥

ॐ परमात्मने नमः । ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥ सकृच्छ्रवणमात्रेण
ब्रह्मज्ञानं यतो भवेत् । ब्रह्मज्ञानावली माला सर्वेषां मोक्षसिद्धये
॥ १ ॥ असंगोऽहमसंगोऽहमसंगोऽहं पुनः पुनः । सच्चिदानंदरू-
पोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ २ ॥ नित्यशुद्धविमुक्तोऽहं निराकारोऽह-
मव्ययः । भूमानंदस्वरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥ ३ ॥ नित्योऽहं
निरवद्योऽहं निराकारोऽहमच्युतः । परमानंदरूपोऽहमहमेवाहम-
व्ययः ॥ ४ ॥ शुद्धचैतन्यरूपोऽहमात्मारामोऽहमेव च । अखं-
डानंदरूपोऽहमहमे ॥ ५ ॥ प्रत्यक्चैतन्यरूपोऽहं शान्तोऽहं
प्रकृतेः परः । शाश्वतानंदरूपोऽहमहमे ॥ ६ ॥ तच्चातीतः
परात्माहं मध्यातीतः परः शिवः । मायातीतः परं ज्योतिर-
रहमे ॥ ७ ॥ नामरूपव्यतीतोऽहं चिदाकारोऽहमच्युतः ।
सुखरूपस्वरूपोऽहमहमे ॥ ८ ॥ मायातत्कार्यदेहादि मम

नास्त्येव सर्वदा । स्वप्रकाशैकरूपोऽहमहमे० ॥ ९ ॥ गुणत्र-
 यव्यतीतोऽहं ब्रह्मादीनां च साक्ष्यहम् । अनंतानंदरूपोऽहम-
 हमे० ॥ १० ॥ अंतर्यामिस्वरूपोऽहं कूटस्थः सर्वगोऽस्म्यहम् ।
 परमात्मस्वरूपोऽहमहमे० ॥ ११ ॥ निष्कलोऽहं निष्क्रियोऽहं
 सर्वात्माद्यः सनातनः । अपरोक्षस्वरूपोऽहमहमे० ॥ १२ ॥
 द्वन्द्वादिसाक्षिरूपोऽहमचलोऽहं सनातनः । सर्वसाक्षिस्वरूपोऽह-
 महमे० ॥ १३ ॥ प्रज्ञानघन एवाहं विज्ञानघन एव च ।
 अकर्ताहमभोक्ताऽहमहमे० ॥ १४ ॥ निराधारस्वरूपोऽहं सर्वा-
 धारोऽहमेव च । आप्तकामस्वरूपोऽहमहमे० ॥ १५ ॥ तापत्र-
 यविनिर्मुक्तो देहत्रयविलक्षणः । अवस्थात्रयसाक्ष्यस्मि चाह-
 मेवा० ॥ १६ ॥ दृक् दृश्यौ द्वौ पदार्थौ स्तः परस्परविलक्षणौ ।
 दृक् ब्रह्म दृश्यं मायेति सर्ववेदांतडिंडिमः ॥ १७ ॥ अहं
 साक्षीति यो विद्याद्विविच्यैवं पुनः पुनः । स एव मुक्तः सो
 विद्वानिति वेदांतडिंडिमः ॥ १८ ॥ घटकुड्यादिकं सर्वं मृत्ति-
 कामात्रमेव च । तद्ब्रह्म जगत्सर्वमिति वेदांतडिंडिमः ॥ १९ ॥
 ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः । अनेन वेद्यं
 सच्छास्त्रमिति वेदांतडिंडिमः ॥ २० ॥ अंतर्ज्योतिर्वहिर्ज्योतिः
 प्रत्यग्ज्योतिः परात्परः । ज्योतिर्ज्योतिः स्वयंज्योतिरात्मज्योतिः
 शिवोऽस्म्यहम् ॥ २१ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य-
 श्रीमच्छंकराचार्यविरचिता ब्रह्मज्ञानावली समाप्ता ॥ १७ ॥

प्रश्नोत्तरमालिका ॥ १८ ॥ १ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ कः खलु नालंक्रियते दृष्टादृष्टार्थसा-

धनपटीयान् । अनया कण्ठस्थितया प्रश्नोत्तररत्नमालिकया ॥ १ ॥
 भगवन्किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम् । को गुरु-
 रधिगततत्त्वः सत्त्वहितायोद्यतः सततम् ॥ २ ॥ त्वरितं किं
 कर्तव्यं सुधिया संसारसंततिच्छेदः । किं मोक्षतरोर्वीजं सम्य-
 ग्ज्ञानं क्रियासहितम् ॥ ३ ॥ कः पथ्यतरो धर्मः कः शुचिरिह
 यस्य मानसं शुद्धम् । कः पण्डितो विवेकी किं विषमवधीरणा
 गुरुषु ॥ ४ ॥ किं संसारे सारं बहुशो विचिन्त्यमानमिदमेव ।
 मनुजेषु दृष्टतत्त्वं स्वपरहितायोद्यतं जन्म ॥ ५ ॥ मदिरेव जन-
 मोहकः कः स्नेहः के च दस्यवो विपयाः । का भववल्ली तृष्णा
 को वैरी यस्त्वनुद्योगः ॥ ६ ॥ कस्मान्नयमिह मरणादन्धादपि
 को विशिष्यते रोगी । कः शूरो यो ललनालोचनवाणैर्न च
 व्यथितः ॥ ७ ॥ पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिव युज्यते
 सदुपदेशः । किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम ॥ ८ ॥
 किं गहनं स्त्रीचरितं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन । किं दारि-
 द्र्यमतोषः किं लाघवं परधनादिपरियाज्जा ॥ ९ ॥ किं जीवि-
 तमनवद्यं किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः । को जागर्ति विवेकी
 का निद्रा मूढता जन्तोः ॥ १० ॥ नलिनीदलगतजलवत्तरलं
 किं यौवनं धनं चायुः । के शशधरकरनिकरानुकारिणः सज्ज-
 ना एव ॥ ११ ॥ को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसङ्ग-
 विरतिर्या । किं साध्यं भूतहितं किमु ग्रियं प्राणिनामसवः
 ॥ १२ ॥ किं दानमनाकाङ्क्षं किं मित्रं यन्निवर्तयति
 पापात् ॥ १३ ॥ कोऽलंकारः शीलं किं वाचां मण्डनं
 सत्यम् । किमनर्थफलं मानः सुसंगतिः का सुखावहा मैत्री
 ॥ १४ ॥ सर्वव्यसनविनाशे को दक्षः सर्वथापरित्यागी ।

कोऽन्धो योऽकार्यरतः को बधिरो यः शृणोति न हितानि
 ॥ १५ ॥ को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति । किं
 मरणं मूर्खत्वं किमनर्थं दत्तमवसरे यच्च ॥ १६ ॥ आमरणा-
 त्किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतं पापम् । कुत्र विधेयो यत्नो विद्या-
 भ्यासे सदैपधे दाने ॥ १७ ॥ अवधीरणा क्व कार्या खलपर-
 योपित्परधनेषु । काऽहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न तु
 प्रमदा ॥ १८ ॥ का प्रेयसी विधेया करुणा दीनेषु सज्जने
 मैत्री । कण्ठगतैरप्यसुभिः कस्यात्मा न वश्यमुपयाति ॥ १९ ॥
 मूर्खस्य विपादवतो गर्ववतोऽपि च कृतघ्नस्य । कः पूज्यः सद्बु-
 द्धः कमधममाचक्षते चलितवृत्तम् ॥ २० ॥ केन जितं जगदे-
 तत्सत्यतितिक्षावता पुंसा । कुत्र विधेयो वासः सज्जननिकटे-
 ऽथवा काश्याम् ॥ २१ ॥ कस्मै नमस्क्रिया स्याद्देवानामपि दया-
 प्रधानस्य । कस्मादुद्वेजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया ॥ २२ ॥
 कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य । क्व स्यात्-
 व्यं न्याय्ये पथि दृष्टार्थलाभाय ॥ २३ ॥ विद्युद्विलसितचपलं
 किं दुर्जनसंगतिर्युवतयश्च । कुलशीलनिष्प्रकम्पाः के कलिका-
 लेऽपि सत्पुरुषाः ॥ २४ ॥ किं शोच्यं कार्पण्यं सति विभवे
 किं प्रशस्यमौदार्यम् । तनुतरविभवस्य प्रभविष्णोर्वा किंच
 यत्सहिष्णुत्वम् ॥ २५ ॥ चिन्तामणिरिव दुर्लभमिह किं कथ-
 यामि चतुर्भद्रम् । किं तद्वदेति भूयो विधूततमसो विशेषेण
 ॥ २६ ॥ दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम् ।
 वित्तं त्यागसमेतं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम् ॥ २७ ॥ इति कण्ठगता
 विमला प्रश्नोत्तररत्नमालिका येषाम् । तेऽमुक्ताभरणा अपि

विभान्ति विद्वत्समाजेषु ॥ २८ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राज-
काचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचिता प्रश्नोत्तरमालिका संपूर्णा १८

प्रश्नोत्तरमालिका ॥ १८ ॥ २ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ किं साध्यं मनुजानां बुद्धेः शुद्धत्व-
मेव बहुयत्नैः । किं त्याज्यं खलसङ्गो देहाहंकारममते च ॥ १ ॥
किं तीर्थं वेदशिरः किं देयं पात्र आत्मसंवेधः । किं भोग्यं
सहजसुखं किं वाऽभोग्यं परेच्छया लब्धम् ॥ २ ॥ किं कष्टं
यत्सत्यं किं वा सहजं परं ब्रह्म । कर्तव्यं किं सर्वैरात्माऽकर्तेति
बुद्धिरेव सदा ॥ ३ ॥ आदातुं संत्यक्तुं किमशक्यं ब्रह्म निज-
रूपम् । किं वा दुःखमवोधः किं सुखमात्मावबोधतः शान्तिः
॥ ४ ॥ विषमं विषं तु किं वा यत्किञ्चित्कस्यचिच्च या चिन्ता ।
परमानृतं तु किं वा श्रीगुरुवाक्यं कृपानिविडम् ॥ ५ ॥ को
गुरुरधिगन्तव्यो देशिकशिष्यत्वबाधबोधयिता । अध्येतव्यं किं
खलु यावद्वेदार्थदर्शकः प्रणवः ॥ ६ ॥ कोऽनध्यायोऽध्ययने
यावत्सद्गुरुमलब्धवांस्तावत् । कः प्रणवार्थस्तूष्णीं किं ध्येयं
ध्येयमात्रसंत्यागः ॥ ७ ॥ कः शूरो दृष्ट्वात्रान्मायामेता स्वयं-
प्रकाशज्ञः । किं चिन्त्यं मनुजैरिह चिन्ताबीजं विचित्रजगत
इति ॥ ८ ॥ किं पेशलं हि लोके विद्वच्चरितं विरुद्धशास्त्रमपि ।
सद्भक्त्या किं कार्यं सज्जनपदरजसि भूयसः स्नानम् ॥ ९ ॥
आवाल्यात्किं कार्यं निरहंकारेण साधुपदसेवा । भाग्योदयस्तु
को वा गुरुवचनादद्वितीयपदलाभः ॥ १० ॥ मुक्तैः किं कर्त-
व्यं प्रारब्धाधीनसदसताभोगः । पुंसां किं सर्वस्वं सचित्सुख-
नामिका गुरोर्मूर्तिः ॥ ११ ॥ का कामधेनुरनघा वेदे देवे

तथा गुरौ श्रद्धा । को वैद्यो रोगहरो ब्रह्मिष्ठः सदयहृदयगुरु-
 राजः ॥ १२ ॥ कः पुत्रः खोद्धर्ता ज्ञातस्वात्मैव चिन्मयः
 पुरुषः । कः सुखशायी लोके संसृतिमिथ्यात्वपक्वमतितृप्तः ॥ १३ ॥
 किं त्याज्यं साधुकृते चरिते कुत्सितमतिस्तु साधुजनैः । कः
 शत्रुर्दुःखकरो गुरुवचने संशयो महाशत्रुः ॥ १४ ॥ कः शोभते
 नितान्तं निस्पृहताशालिनिजबोधः । किं याच्यं सद्गुरुषु खो-
 द्वारः सर्वदैन्यपरिहारः ॥ १५ ॥ को वा मान्यः सिद्धो बालो
 जपि ब्रह्मभावमतिमान्यः । का वा दरिद्रसीमा मूढप्रियसिद्ध्यहं-
 कृतिः प्रोक्ता ॥ १६ ॥ किं सोढव्यं विदुषा खलवचनं विप-
 विनिर्मितं कठिनम् । स्थेयं कथं खलेषु स्वीयां निष्ठां दृढं समा-
 च्छाद्य ॥ १७ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यकृष्णान-
 न्दसरस्वतीविरचिता प्रश्नोत्तरमालिका संपूर्णा ॥ १८ ॥ २ ॥

मणिरत्नमाला ॥ १९ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ अपारसंसारसमुद्रमध्ये निमज्जतो ये
 शरणं किमस्ति । गुरो कृपालो कृपया वदैतद्विश्वेशपादांबुजदीर्घ-
 नौका ॥ १ ॥ बद्धो हि को यो विषयानुरागी को वा विमुक्तो
 विषये विरक्तः । को वा जस्ति घोरो नरकः स्वदेहस्तृष्णाक्षयः स्वर्गपदं
 किमस्ति ॥ २ ॥ संसारहृत्कस्तु निजात्मबोधः को मोक्षहेतुः प्रथितः
 स एव । द्वारं किमेकं नरकस्य नारी का स्वर्गदा प्राणभृताम-
 हिंसा ॥ ३ ॥ शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो जागर्ति को वा
 सदसद्विवेकी । के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि तान्येव मित्राणि
 जितानि कानि ॥ ४ ॥ को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णा-
 श्रीमांश्च को यस्य समस्ति तोषः । जीवन्मृतो कस्तु निरुद्यमी

यः को वाऽमृता स्यात्सुखदा निराशा ॥ ५ ॥ पाशो हि को
 यो ममताभिधानः संमोहयत्येव सुरेव का स्त्री । को वा म-
 हांधो मदनातुरो यो मृत्युश्च को वापयशः स्वकीयम् ॥ ६ ॥
 को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा शिष्यस्तु को यो गुरुभक्त एव ।
 को दीर्घरोगो भव एव साधो किमौषधं तस्य विचार एव ॥ ७ ॥
 किं भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम् ।
 किमत्र हेयं कनकं च कान्ता श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम्
 ॥ ८ ॥ के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति सत्संगतिर्दानविचारतो-
 पाः । के सन्ति सन्तोऽखिलवीतरागा अपास्तमोहाः शिवतत्त्व-
 निष्ठाः ॥ ९ ॥ को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता मूर्खोस्ति
 को यस्तु विवेकहीनः । कार्या मया का शिवविष्णुभक्तिः किं
 जीवनं दोषविजितं यत् ॥ १० ॥ विद्या हि का ब्रह्मगति-
 प्रदा या बोधो हि को यस्तु विमुक्तिहेतुः । को लाभ आत्मा-
 वगमो हि यो वै जितं जगत् केन मनो हि येन ॥ ११ ॥ शूरा-
 न्महाशूरतमोस्ति को वा मनोजवाणैर्व्यथितो न यस्तु । प्राज्ञो-
 तिधीरश्च समोस्ति को वा प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः ॥ १२ ॥
 विपाद्विपं किं विषयाः समस्ता दुःखी सदा को विषयानुरागी ।
 धन्योस्ति को यस्तु परोपकारी कः पूजनीयो ननु तत्त्वनिष्ठः
 ॥ १३ ॥ सर्वास्वस्थास्वपि किं न कार्यं किं वा विधेयं विदुषां
 प्रयत्नात् । स्नेहश्च पापं पठनं च धर्मः संसारमूलं हि किमस्ति
 चिन्ता ॥ १४ ॥ विज्ञान्महाविज्ञतमोस्ति को वा नार्या पिशा-
 च्या न च वंचितो यः । का शृङ्खला प्राणभृतां च नारी दिव्यं
 व्रतं किं च निरस्तदन्यम् ॥ १५ ॥ ज्ञातुं न शक्यं हि किमस्ति
 सर्वैर्योपिन्मनो यच्चरितं तदीयम् । का दुस्त्यजा सर्वजनैर्दुराशा

विद्याविहीनः पशुरस्ति को वा ॥ १६ ॥ वासो न संगः स
 कैर्विधेयो मूर्खैश्च पापैश्च खलैश्च नीचैः । मुमुक्षुणा किं चरितं
 विधेयं सत्संगतिर्निर्ममतेऽभक्तिः ॥ १७ ॥ लघुत्वमूलं च
 किमर्थितैव गुरुत्ववीजं यदयाचनं किम् । जातोस्ति को यस्य
 पुनर्न जन्म को वा मृतो यस्य पुनर्नमृत्युः ॥ १८ ॥ मूकोस्ति
 को वा बधिरश्च को वा युक्तं न वक्तुं समये समर्थः । तथैव
 सुपथ्यं न शृणोति वाक्यं विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी ॥ १९ ॥
 तत्त्वं किमेकं शिवमद्वितीयं किमुत्तमं सच्चरितं यदस्ति । किं
 कर्म कृत्वा न च शोचनीयः कामारिकंसारिसमर्चनारख्य
 ॥ २० ॥ शत्रोर्महाशत्रुतरोऽस्ति को वा कामः स कोपानृत
 लोभतृष्णः । न पूर्यते को विषयैः स एव किं दुःखमूलं ममता
 मिधानम् ॥ २१ ॥ किं मण्डनं साक्षरता मुखस्य सत्यं च किं
 भूतहितं तदेव । त्यक्त्वा सुखं किं स्त्रियमेव सम्यक् देयं प
 किं त्वभयं सदैव ॥ २२ ॥ कस्यास्ति नाशे मनसो हि मोक्ष
 क सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ । शल्यं परं किं निजमूर्खतै
 के के उपास्या गुरुश्च वृद्धाः ॥ २३ ॥ उपस्थिते प्राणह
 कृतान्ते किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात् । वाक्कायचित्तैः सुखं
 यमघ्नमुरारिपादांबुजमेव चिन्त्यम् ॥ २४ ॥ के दस्यवः सन्ति
 कुवासनारख्याः कः शोभते यः सदसि प्रविद्यः । शान्त्येव क
 या सुखदा सुविद्या किमेधते दानवशात् सुविद्या ॥ २५ ॥
 कुतो हि भीतिः सततं विधेया लोकापवादाद्भवकाननाच्च । को
 वास्ति बंधुः पितरौ च कौ वा विपत्सहायः परिपालकौ यौ ॥ २६ ॥
 बुद्ध्या न बुद्धं परिशिष्यते किं शिवं प्रज्ञांतं सुखबोधरूपम्
 ज्ञाते तु कस्मिन्विदितं जगत्स्यात् सर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्णरूपम्

॥ २७ ॥ किं दुर्लभं सद्गुरुरस्ति लोके सत्संगतिर्ब्रह्मविचारणा च । त्यागो हि सर्वस्य निजात्मबोधः किं दुर्जयं सर्वजनैर्मनोजः ॥ २८ ॥ पशोः पशुः को न करोति धर्मग्राहीतशास्त्रोपि न चात्मबोधः । किं तद्विषं भाति सुधोपमं स्त्री के शत्रवो मित्रवदात्मजाद्याः ॥ २९ ॥ विद्युच्चलं किं धनयौवनायुर्दानं परं किं च सुपात्रदत्तम् । कण्ठं गतैरप्यसुभिर्नकार्यं किं वा विधेयं मलिनं शिवार्चा ॥ ३० ॥ किं कर्म यत्प्रीतिकरं मुरारेः कास्था न कार्या सततं भवाब्धौ । अहर्निशं किं परिचिन्तनीयं संसारमिथ्यात्वशिवात्मतत्त्वम् ॥ ३१ ॥ कण्ठं गता वा श्रवणं गता वा ग्रन्थोत्तराख्या मणिरत्नमाला । तनोतु मोदं विदुषां प्रयत्नात् रमेश गौरीशपदौ सुसेव्यौ ॥ ३२ ॥ इति श्रीमणिरत्नमाला संपूर्णा ॥ १९ ॥

कौपीनपञ्चकस्तोत्रम् ॥ २० ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः । अशोकवन्तः करुणैकवन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥ १ ॥ मूलं तरोः केवलमाश्रयन्तः पाणिद्वये भोक्तुममत्रयन्तः । कन्थामपि स्त्रीमिव कुत्सयन्तः कौपीनवन्तः ख० ॥ २ ॥ देहाभिमानं परिहृत्य दूरादात्मानमात्मन्यवलोकयन्तः । अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः कौपीनवन्तः ख० ॥ ३ ॥ स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः स्वशान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः । नान्तं न मध्यं न वहिः स्मरन्तः कौपीनवन्तः ख० ॥ ४ ॥ पञ्चाक्षरं पावनमुच्चरन्तः पतिं पशूनां हृदि भावयन्तः । भिक्षाशना दिक्षु परिभ्रमन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्य-

वन्तः ॥ ५ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकरा-
चार्यविरचितं कौपीनपञ्चकस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ २० ॥

हस्तामलकस्तोत्रम् ॥ २१ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ कस्त्वं शिशो कस्य कुतोऽसि गन्त-
किं नाम ते त्वं कुत आगतोऽसि । एतन्मयोक्तं वद चार्भक तं
मत्प्रीतये प्रीतिविवर्धनोऽसि ॥ १ ॥ हस्तामलक उवाच ॥ ना-
मनुष्यो न च देवयक्षौ न ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्राः । न ब्रह्म-
चारी न गृही वनस्थो भिक्षुर्न चाहं निजबोधरूपः ॥ २ ॥
निमित्तं मनश्चक्षुरादेर्ग्रवृत्तौ निरस्ताखिलोपाधिराकाशकल्पः
रविलोकचेष्टानिमित्तं यथा यः स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्म-
॥ ३ ॥ यमग्न्युष्णवन्नित्यबोधस्वरूपं मनश्चक्षुरादीन्यबोधात्म-
कानि । प्रवर्तन्त आश्रित्य निष्कम्पमेकं स नित्यो ॥ ४ ॥
मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो मुखत्वात्पृथक्त्वेन नैवास्ति वस्तु-
चिदाभासको धीषु जीवोऽपि तद्वत्स नित्यो ॥ ५ ॥ यथा
दर्पणाभाव आभासहानौ मुखं विद्यते कल्पनाहीनमेकम् । तथा
धीवियोगे निराभासको यः स नित्यो ॥ ६ ॥ मनश्चक्षुरादे-
र्वियुक्तः स्वयं यो मनश्चक्षुरादेर्मनश्चक्षुरादिः । मनश्चक्षुरादेर-
म्यस्वरूपः स नित्यो ॥ ७ ॥ य एको विभाति स्वतः शुद्ध-
चेताः प्रकाशस्वरूपोऽपि नानेव धीषु । शरावोदकस्थो यथा
भानुरेकः स नित्यो ॥ ८ ॥ यथाऽनेकचक्षुः प्रकाशो रवि-
क्रमेण प्रकाशीकरोति प्रकाश्यम् । अनेका धियो यस्तथैक-
प्रबोधः स नित्यो ॥ ९ ॥ विवस्वत्प्रभातं यथारूपमक्षं प्र-
काति नाभातमेवं विवस्वान् । यदाभात आभासयत्यक्षमेकः ॥

नित्यो० ॥ १० ॥ यथा सूर्य एकोप्यनेकश्चलासु स्थिरास्वप्य-
नन्तद्विभाव्यस्वरूपः । चलासु प्रभिन्नाः सुधीष्वेक एव स
नित्यो० ॥ ११ ॥ घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं यथा निष्प्रभं
मन्यते चातिमूढः । तथा बद्धबद्धाति यो मूढदृष्टेः स नित्यो०
॥ १२ ॥ समस्तेषु वस्तुष्वनुस्यूतमेकं समस्तानि वस्तूनि यन्न
स्पृशन्ति । वियद्वत्सदा शुद्धमच्छस्वरूपं स नित्यो० ॥ १३ ॥
उपाधौ यथा भेदता सन्मणीनां तथा भेदता बुद्धिभेदेषु तेऽपि ।
यथा चन्द्रिकाणां जले चञ्चलत्वं तथा चञ्चलत्वं तवापीह
विष्णो ॥ १४ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्यविरचितं हस्तामलक-
संवादस्तोत्रं संपूर्णम् ॥ २१ ॥

वाक्यवृत्तिः ॥ २२ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ सर्गस्थितिप्रलयहेतुमचिन्त्यशक्तिं विश्वे-
श्वरं विदितविश्वमनन्तमूर्तिम् । निर्मुक्तबन्धनमपारसुखाम्बुराशिं
श्रीवल्लभं विमलबोधघनं नमामि ॥ १ ॥ यस्य प्रसादादहमेव वि-
ष्णुर्मग्न्येव सर्वं परिकल्पितं च । इत्थं विजानामि सदात्मरूपस्त-
स्याद्घ्रिपद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ २ ॥ तापत्रयार्कसंतप्तः
कश्चिदुद्विग्नमानसः । शमादिसाधनैर्युक्तः सद्गुरुं परिपृच्छति
॥ ३ ॥ अनायासेन येनास्मान्मुच्येयं भवबन्धनात् । तन्मे
संक्षिप्य भगवन्कैवल्यं कृपया वद ॥ ४ ॥ साध्वी ते वचन-
व्यक्तिः प्रतिभाति वदामि ते । इदं तदिति विस्पष्टं सावधा-
नमनाः शृणु ॥ ५ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थं यज्जीवपरमात्म-
नोः । तादात्म्यविषयं ज्ञानं तदिदं मुक्तिसाधनम् ॥ ६ ॥ को

जीवः कः परश्चात्मा तादात्म्यं वा कथं तयोः । तच्चमस्यादि-
वाक्यं वा कथं तत्प्रतिपादयेत् ॥ ७ ॥ अत्र ब्रूमः समाधातुं
कोऽन्यो जीवस्त्वमेव हि । यस्त्वं पृच्छसि मां कोऽहं ब्रह्मैवास्मि
न संशयः ॥ ८ ॥ पदार्थमेव जानामि नाद्यापि भगवन् स्फुट-
म् । अहं ब्रह्मेति वाक्यार्थं प्रतिपद्ये कथं वद ॥ ९ ॥ सत्त्वं
माह भवानत्र विज्ञानं नैव विद्यते । हेतुः पदार्थबोधो हि वा-
क्यार्थावगतेरिह ॥ १० ॥ अन्तःकरणतद्बृत्तिसाक्षी चैतन्यवि-
ग्रहः । आनन्दरूपः सत्यः सन् किं नात्मानं प्रपद्यसे ॥ ११ ॥
सत्यानन्दस्वरूपं धीसाक्षिणं बोधविग्रहम् । चिन्तयात्मतया
नित्यं त्यक्त्वा देहादिगां धियम् ॥ १२ ॥ रूपादिमान्यता-
पिण्डस्ततो नात्मा घटादिवत् । वियदादिमहाभूतविकारत्वात्
कुम्भवत् ॥ १३ ॥ अनात्मा यदि पिण्डोऽप्यमुक्तहेतुबलान्मतः
करामलकवत्साक्षादात्मानं प्रतिपादय ॥ १४ ॥ घटद्रष्टा घटा-
द्भिन्नः सर्वथा न घटो यथा । देहद्रष्टा तथा देहो नाहमित्य-
वधारय ॥ १५ ॥ एवमिन्द्रियदृङ्नाहमिन्द्रियाणीति निश्चिनु-
मनो बुद्धिस्तथा प्राणो नाहमित्यवधारय ॥ १६ ॥ संघातो हि
तथा नाहमिति दृश्यविलक्षणम् । द्रष्टारमनुमानेन निपुणं सं-
धारय ॥ १७ ॥ देहेन्द्रियादयो भावा हानादिव्यापृतिक्षमाः
यस्य सन्निधिमात्रेण सोऽहमित्यवधारय ॥ १८ ॥ अन्नापन्न-
विकारः सन्नयस्कान्तवदेव यः । बुद्ध्यादींश्चालयेत्प्रत्यक् सोऽह-
मित्यवधारय ॥ १९ ॥ अजडात्मवदाभान्ति यत्सान्निध्या-
जडा अपि । देहेन्द्रियमनःप्राणाः सोऽहमित्यवधारय ॥ २० ॥
अगमन्मे मनोऽन्यत्र सांप्रतं च स्थिरीकृतम् । एवं यो वेति-
धीवृत्तिं सोऽहमित्यवधारय ॥ २१ ॥ स्वमजागरिते सुप्ति भावाः

भावौ धियां तथा । यो वेत्त्यविक्रियः साक्षात्सोऽहमित्यवधारय ॥ २२ ॥ घटावभासको दीपो घटादन्यो यथेष्ट्यते । देहावभासको देही तथाहं बोधविग्रहः ॥ २३ ॥ पुत्रवित्तादयो भावा यस्य शेषतया प्रियाः । द्रष्टा सर्वप्रियतमः सोऽहमित्यवधारय ॥ २४ ॥ परग्रेमास्पदतया मा न भूवमहं सदा । भूयासमिति यो द्रष्टा सोऽहमित्यवधारय ॥ २५ ॥ यः साक्षिलक्षणो बोधस्त्वंपदार्थः स उच्यते । साक्षित्वमपि बोद्धृत्वमविकारितयाऽऽत्मनः ॥ २६ ॥ देहेन्द्रियमनःप्राणाहंकृतिभ्यो विलक्षणः । प्रोज्झिताशेषपद्भावविकारस्त्वंपदाभिधः ॥ २७ ॥ त्वमर्थमेवं निश्चित्य तदर्थं चिन्तयेत्पुनः । अतश्चावृत्तिरूपेण साक्षाद्विधिमुखेन च ॥ २८ ॥ निरस्ताशेषसंसारदोषोऽस्थूलदिलक्षणः । अदृश्यत्वादिगुणकः पराकृततमोमलः ॥ २९ ॥ निरस्तातिशयानन्दः सत्यप्रज्ञानविग्रहः । सत्तास्वलक्षणः पूर्णः परमात्मेति गीयते ॥ ३० ॥ सर्वज्ञत्वं परेशत्वं तथा संपूर्णशक्तिता । वेदैः समर्थ्यते यस्य तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ ३१ ॥ यज्ज्ञानात्सर्वविज्ञानं श्रुतिषु प्रतिपादितम् । मृदाद्यनेकदृष्टान्तैस्तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ ३२ ॥ यदानन्त्यं प्रतिज्ञाय श्रुतिस्तत्सिद्धये जगौ । तत्कार्यत्वं प्रपञ्चस्य तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ ३३ ॥ विजिज्ञास्यतया यच्च वेदान्तेषु मुमुक्षुभिः । समर्थ्यतेऽतियत्नेन तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ ३४ ॥ जीवात्मना प्रवेशश्च नियन्त्रत्वं च तान् प्रति । श्रूयते यस्य वेदेषु तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ ३५ ॥ कर्मणां फलदातृत्वं यस्यैव श्रूयते श्रुतौ । जीवानां हेतुकर्तृत्वं तद्ब्रह्मेत्यवधारय ॥ ३६ ॥ तत्त्वंपदार्थौ निर्णीतौ वाक्यार्थश्चिन्त्यतेऽधुना । तादात्म्यमत्र वाक्यार्थस्तयोरेव पदार्थयोः ॥ ३७ ॥

संसर्गो वा विशिष्टो वा वाक्यार्थो नात्र संमतः । अखण्डैक-
 सत्त्वेन वाक्यार्थो विदुषां मतः ॥ ३८ ॥ प्रत्यग्वोधो य आभाति
 सोऽद्वयानन्दलक्षणः । अद्वयानन्दरूपश्च प्रत्यग्वोधैकलक्षणः
 ॥ ३९ ॥ इत्थमन्योन्यतादात्म्यप्रतिपत्तिर्यदा भवेत् । अवलम्ब-
 तमर्थस्य व्यावर्तेत तदैव हि ॥ ४० ॥ तदर्थस्य च पारोक्ष्यं
 यद्येवं किं ततः शृणु । पूर्णानन्दैकरूपेण प्रत्यग्वोधोऽवतिष्ठति
 ॥ ४१ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यं च तादात्म्यप्रतिपादने । लक्ष्यं
 तत्त्वंपदार्थौ द्वावुपादाय प्रवर्तते ॥ ४२ ॥ हित्वा द्वौ शब्दौ
 वाच्यौ वाक्यं वाक्यार्थबोधने । यथा प्रवर्ततेऽस्माभिस्तथा
 व्याख्यातमादरात् ॥ ४३ ॥ आलम्बनतया भाति योऽस्मात्प्र-
 त्ययशब्दयोः । अन्तःकरणसंभिन्नबोधः स त्वंपदाभिधः ॥ ४४ ॥
 मायौपाधिर्जगद्योनिः सर्वज्ञत्वादिलक्षणः । पारोक्ष्यशब्द-
 सत्याद्यात्मकस्तत्पदाभिधः ॥ ४५ ॥ प्रत्यक्परोक्षतैकस्य सदि-
 तीयत्वपूर्णता । विरुध्यते यतस्तस्माल्लक्षणा संप्रवर्तते ॥ ४६ ॥
 मानान्तरविरोधे तु मुख्यार्थस्य परिग्रहे । मुख्यार्थेनाविनाश-
 प्रतीतिर्लक्षणोच्यते ॥ ४७ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्येषु लक्षणा भाग-
 लक्षणा । सोऽहमित्यादिवाक्यस्थपदयोरिव नापरा ॥ ४८ ॥
 अहं ब्रह्मेति वाक्यार्थबोधो यावद्दृढीभवेत् । शमादिसहितस्तावद-
 भ्यसेच्छ्रवणादिकम् ॥ ४९ ॥ श्रुत्याचार्यप्रसादेन दृढो बोधो
 यदा भवेत् । निरस्ताशेषसंसारनिदानः पुरुषस्तदा ॥ ५० ॥
 विशीर्णकार्यकरणो भूतमूर्क्षमैरनावृतः । विमुक्तकर्मनिगडः स
 एव विमुच्यते ॥ ५१ ॥ प्रारब्धकर्मवेगेन जीवन्मुक्तो यदा
 भवेत् । किञ्चित्कालमनारब्धकर्मबन्धस्य संक्षये ॥ ५२ ॥ निर-
 स्तातिशयानन्दं वैष्णवं परमं पदम् । पुनरावृत्तिरहितं कैवल्यं

प्रतिपद्यते ॥ ५३ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीम-
च्छंकराचार्यविरचिता वाक्यवृत्तिः समाप्ता ॥ २२ ॥

परापूजा ॥ २३ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ पूर्णस्यावाहनं कुत्र सर्वाधारस्य चास-
नम् । स्वच्छस्य पाद्यमर्घ्यं च शुद्धस्याचमनं कुतः ॥ १ ॥
निर्मलस्य कुतः स्नानं वस्त्रं विश्वोदरस्य च । निरालम्बस्योप-
वीतं पुष्पं निर्वासनस्य च ॥ २ ॥ निर्लेपस्य कुतो गन्धो रम्य-
स्याभरणं कुतः । नित्यवृत्तस्य नैवेद्यस्ताम्बूलं च कुतो विभोः
॥ ३ ॥ प्रदक्षिणा ह्यनन्तस्य हृदयस्य कुतो नतिः । वेदवाक्यै-
रवेद्यस्य कुतः स्तोत्रं विधीयते ॥ ४ ॥ स्वयंप्रकाशमानस्य कुतो
नीराजनं विभोः । अन्तर्बहिश्च पूर्णस्य कथमुद्रासनं भवेत् ॥ ५ ॥
एवमेव परा पूजा सर्वावस्थासु सर्वदा । एकबुद्ध्या तु देवेशे
विधेया ब्रह्मचित्तमैः ॥ ६ ॥ इति परापूजा समाप्ता ॥ २३ ॥

हरिमीडेस्तोत्रम् ॥ २४ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ स्तोप्ये भक्त्या विष्णुमनादिं जगदादिं
यस्मिन्नेतत्संसृतिचक्रं भ्रमतीत्यम् । यस्मिन् दृष्टे नश्यति तत्सं-
सृतिचक्रं तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमीडे ॥ १ ॥ यस्यैकां-
शादित्थमशेषं जगदेतत्प्रादुर्भूतं येन पिनद्वं पुनरित्थम् । येन
व्याप्तं येन विबुद्धं सुखदुःखैस्तं संसार० ॥ २ ॥ सर्वज्ञो यो
यश्च हि सर्वः सकलो यो यश्चानन्दोऽनन्तगुणो यो गुणधामा ।
यश्चाव्यक्तो व्यस्तसमस्तः सह सद्यस्तं संसार० ॥ ३ ॥ यस्मा-

दन्यन्नास्त्यपि नैनं परमार्थं दृश्यादन्यो निर्विषयज्ञानमयत्वात्
 ज्ञातृज्ञानज्ञेयविहीनोऽपि सदा ज्ञस्तं संसार० ॥ ४ ॥ आचार्ये
 भ्यो लब्धसुसूक्ष्माच्युततत्त्वा वैराग्येणाभ्यासबलाच्चैव द्रढिभ्यो
 भक्त्यैकाग्रध्यानपरा यं विदुरीशं तं संसार० ॥ ५ ॥ प्राणा
 नायम्योमिति चित्तं हृदि रुद्धा नान्यन्मृत्वा तत्पुनरत्रैव विला
 प्य । क्षीणे चित्ते भादृशिरसीति विदुर्यं तं संसार० ॥ ६ ॥
 ब्रह्माख्यं देवमनन्यं परिपूर्णं हृत्स्थं भक्तेर्लभ्यमजं सूक्ष्ममत
 क्यम् । ध्यात्वाऽऽत्मस्थं ब्रह्मविदो यं विदुरीशं तं संसार० ॥ ७ ॥
 मात्रातीतं स्वात्मविकाशात्मविवोधं ज्ञेयातीतं ज्ञानमयं हृद्य
 लभ्यम् । भावग्राह्यानन्दमनन्यं च विदुर्यं तं संसार० ॥ ८ ॥
 यद्यदेवं वस्तु सतत्त्वं विषयाख्यं तत्तद्ब्रह्मैवेति विदित्वा तदा
 च । ध्यायंत्येवं यं सनकाद्या मुनयोऽजं तं संसार० ॥ ९ ॥
 यद्यदेवं तत्तदहं नेति विहाय स्वात्मज्योतिर्ज्ञानमयानन्दमवा
 प्य । तस्मिन्नसीत्यात्मविदो यं विदुरीशं तं संसार० ॥ १० ॥
 हित्वा हित्वा दृश्यमशेषं सविकल्पं मत्वा शिष्टं भादृशिमात्रं य
 गनाभम् । त्यक्त्वा देहं यं प्रविशन्त्यच्युतभक्तास्तं संसार
 ॥ ११ ॥ सर्वत्रास्ते सर्वशरीरी न च सर्वः सर्वं वेत्त्येवेह न
 वेत्ति च सर्वः । सर्वत्रान्तर्यामितयेत्थं यमनन्यस्तं संसार
 ॥ १२ ॥ सर्वं दृष्ट्वा स्वात्मनि युक्त्वा जगदेतद्दृष्ट्वात्मानं चैवम
 जं सर्वजनेषु । सर्वात्मैकोऽसीति विदुर्यं जनहृत्स्थं तं संसार
 ॥ १३ ॥ सर्वत्रैकः पश्यति जिघ्रत्यथ भुङ्क्ते प्रष्टा श्रोता बुद्ध्यति
 चेत्याहुरिमं यम् । साक्षी चास्ते कर्तृषु पश्यन्निति चान्ये तं सं
 सार० ॥ १४ ॥ पश्यन् शृण्वन्नत्र विजानन्नसयन् सन् जिघ्र
 न्निभ्रदेहमिमं जीवतयेत्थम् । इत्यात्मानं यं विदुरीशं विषय

तं संसार० ॥ १५ ॥ जाग्रदृष्टा स्थूलपदार्थानथ मायां दृष्ट्वा
 स्वप्नेऽथापि सुषुप्तौ सुखनिद्राम् । इत्यात्मानं वीक्ष्य मुदास्ते
 च तुरीये तं संसार० ॥ १६ ॥ पश्यन् शुद्धोऽप्यक्षर एको गुण-
 भेदान्नानाकारान् स्फाटिकवद्भाति विचित्रः । भिन्नदिष्ठिन्नश्वा-
 यमजः कर्मफलैर्यस्तं संसार० ॥ १७ ॥ ब्रह्मा विष्णु रुद्रह्नु
 ताशौ रविचन्द्राविन्द्रो वायुर्यज्ञ इतीत्थं परिकल्प्य । एकं
 सन्तं यं बहुधा दुर्मतिभेदात्तं संसार० ॥ १८ ॥ सत्यं ज्ञानं
 शुद्धमनन्तं व्यतिरिक्तं शान्तं गूढं निष्कलमानन्दमनन्यम् ।
 इत्याहादौ यं वरुणोऽसौ भृगवेऽजं तं संसार० ॥ १९ ॥ को-
 शानेतान्पञ्चरसादीनतिहाय ब्रह्मासीति स्वात्मनि निश्चित्य
 दृशिस्थः । पित्रादिष्टो वेद भृगुर्यं ययुरन्ते तं संसार० ॥ २० ॥
 येनाविष्टो यस्य च शक्त्या यदधीनः क्षेत्रज्ञोऽयं कारयिता
 जन्तुषु कर्तुः । कर्ता भोक्ताऽऽत्माऽत्र हि चिच्छक्त्यधिरूढस्तं
 संसार० ॥ २१ ॥ सृष्ट्वा सर्वं स्वात्मतयैवेत्यमतर्क्य व्याप्या-
 थान्तः कृत्स्नमिदं सृष्टमशेषम् । सच्च त्यच्चाभूत्परमात्मा
 स य एकस्तं संसार० ॥ २२ ॥ वेदान्तैश्चाध्यात्मिकशास्त्रैश्च
 पुराणः शास्त्रैश्चान्यैः सात्वततन्त्रैश्च यमीशम् । दृष्ट्वाथान्तश्चेतसि
 बुद्ध्या विविशुर्यं तं संसार० ॥ २३ ॥ श्रद्धाभक्तिध्यानशमाद्यैर्यत-
 मानैर्ज्ञातुं शक्यो देव इहैवाशु य ईशः । दुर्विज्ञेयो जन्मशतैश्चापि
 विना तैस्तं संसार० ॥ २४ ॥ यस्यातर्क्यं स्वात्मविभूतेः परमार्थं
 सर्वं खल्वित्यत्र निरुक्तं श्रुतिविद्भिः । तज्जातित्वादब्धितर-
 ज्जागमभिन्नं तं संसार० ॥ २५ ॥ दृष्ट्वा गीतास्वक्षरतत्त्वं विधि-
 नाजं भक्त्या गुर्व्यालभ्य हृदिस्थं दृशिमात्रम् । ध्यात्वा तस्मिन्न-
 स्म्यहमित्यत्र विदुर्यं तं संसार० ॥ २६ ॥ क्षेत्रज्ञत्वं प्राप्य

विभुः पञ्चमुखैर्यो भुङ्क्तेऽजस्रं भोग्यपदार्थान्प्रकृतिस्थः । धं
 क्षेत्रेऽपिन्दुवदेको बहुधाऽऽस्ते तं संसार० ॥ २७ ॥ युक्त्याल
 द्य व्यासवचांस्यत्र हि लभ्यः क्षेत्रक्षेत्रज्ञान्तरविद्भिः पुरु
 ख्यः । योज्हं सोऽसौ सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं तं संसा
 ॥ २८ ॥ एकीकृत्यानेकशरीरस्थमिमं ज्ञं यं विज्ञायेहैव स एव
 शु भवन्ति । यस्मिँल्लीना नेह पुनर्जन्म लभन्ते तं संसा
 ॥ २९ ॥ इन्द्रैकत्वं सच्च मधुब्राह्मणवाक्यैः कृत्वा शक्रोपास
 मासाद्य विभूत्या । योऽसौ सोऽहं सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं
 संसार० ॥ ३० ॥ योज्यं देहे चेष्टयितान्तःकरणस्थः सूर्यं चा
 तापयिता सोऽस्म्यहमेव । इत्यात्मैक्योपासनया यं विदुर्यं
 तं संसार० ॥ ३१ ॥ विज्ञानांशो यस्य सतः शक्त्यधि
 बुद्धिर्वुद्ध्यत्यत्र बहिर्वोध्यपदार्थान् । नैवान्तस्थं बुद्ध्यति
 बोधयितारं तं संसार० ॥ ३२ ॥ कोऽयं देहे देव इतीत्थं सु
 चार्यं ज्ञाता श्रोताऽऽनन्दयिता चैष हि देवः । इत्यालो
 ज्ञांशमिहासीति विदुर्यं तं संसार० ॥ ३३ ॥ को ह्येवान्या
 त्मनि न स्यादयमेव ह्येवानन्दः प्राणिति चापानिति चेति । इ
 स्तित्वं वक्त्युपपत्त्या श्रुतिरेषा तं संसार० ॥ ३४ ॥ प्राणो व
 वाक्श्रवणादीनि मनो वा बुद्धिर्बाह्यं व्यस्त उताहोपि समस्त
 इत्यालोच्य ज्ञप्तिरिहासीति विदुर्यं तं संसार० ॥ ३५ ॥ न
 प्राणो नैव शरीरं न मनोज्ञं नाहं बुद्धिर्नाहमहंकारधियौ च
 योज्ज्व ज्ञांशः सोऽस्म्यहमेवेति विदुर्यं तं संसार० ॥ ३६ ॥
 सत्तामात्रं केवलविज्ञानमजं सत् सूक्ष्मं नित्यं तत्त्वमसीत्या
 सुताय । नाम्नामन्ते ग्राह पिता यं विभुमाद्यं तं संसार० ॥ ३७ ॥
 मूर्तामूर्ते पूर्वमपोद्वाथ समाधौ दृश्यं सर्वं नेति च नेति

विहाय । चैतन्यांशे स्वात्मनि सन्तं च विदुर्यं तं संसारः ॥ ३८ ॥
 ओतं प्रोतं यत्र च सर्गं गगनान्तं यो स्थूलानष्वादिषु सिद्धो-
 ऽक्षरसंज्ञः । ज्ञाताऽतोऽन्यो नेत्युपलभ्यो न च वेद्यस्तं संसारः
 ॥ ३९ ॥ तावत्सर्वं सत्यमिवाभाति यदेतद्यावत्सोऽस्मीत्यात्मनि
 यो ज्ञो नहि दृष्टः । दृष्टे तस्मिन् सर्वमसत्यं भवतीदं तं संसारः
 ॥ ४० ॥ रागाद्युक्तं लोहयुतं हेम यथाऽग्नौ योगाष्टाङ्गैरुज्ज्वलि-
 तज्ञानमयाग्नौ । दग्ध्वात्मानं ज्ञं परिशिष्टं च विदुर्यं तं संसारः
 ॥ ४१ ॥ यं विज्ञानज्योतिपमाद्यं सुविभागं हृद्यर्केन्द्रयोकस-
 मीड्यं तद्धिदाभम् । भक्त्याराध्येहैव विशन्त्यात्मनि सन्तं तं
 संसारः ॥ ४२ ॥ पायाद्भक्तं स्वात्मनि सन्तं पुरुषं यो भक्त्या
 स्तौतीत्याङ्गिरसं विष्णुरिमं माम् । इत्यात्मानं स्वात्मनि संहृत्य
 सदैकस्तं संसारः ॥ ४३ ॥ इत्थं स्तोत्रं भक्तजनेड्यं भवभीति-
 ध्वान्तार्कभं भगवत्पादीयमिदं यः । विष्णोर्लोकं पठति
 शृणोति व्रजति ज्ञो ज्ञानं ज्ञेयं स्वात्मनि चाप्नोति मनुष्यः
 ॥ ४४ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचा-
 र्यविरचितं हरिमीडेस्तोत्रं समाप्तम् ॥ २४ ॥

तत्त्वबोधः ॥ २५ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं नत्वा ज्ञानप्रदं
 गुरुम् ॥ मुमुक्षूणां हितार्थाय तत्त्वबोधोभिधीयते ॥ १ ॥
 साधनचतुष्टयसंपन्नाऽधिकारिणां मोक्षसाधनभूतं तत्त्वविवेकप्र-
 कारं वक्ष्यामः ॥ २ ॥ साधनचतुष्टयं किम् ॥ नित्यानित्यव-
 स्तुविवेकः (१) इहामुत्रार्थफलभोगविरागः (२) शमादि-
 षट्संपत्तिः (३) मुमुक्षुत्वं चेति (४) ॥ ३ ॥ नित्यानित्य-

वस्तुविवेकः कः । नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यं
 अयमेव नित्यानित्यवस्तुविवेकः ॥ ४ ॥ विरागः कः ।
 स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम् ॥ ५ ॥ शमादिसाधनसंपत्तिः का
 शमो दम उपरमस्तितिक्षा श्रद्धा समाधानं चेति ॥ ६ ॥ शम
 कः । मनोनिग्रहः । दमः कः । चक्षुरादिबाह्येन्द्रियनिग्रहः
 उपरमः कः । स्वधर्मानुष्ठानमेव । तितिक्षा का । शीतोष्णसुख
 दुःखादिसहिष्णुत्वम् । श्रद्धा कीदृशी । गुरुवेदान्तवाक्यादि
 विश्वासः श्रद्धा । समाधानं किम् । चित्तैकाग्रता ॥ ७ ॥ मु
 क्षुत्वं किम् । मोक्षो मे भूयादितीच्छा ॥ ७ ॥ एतत्साधनचत
 स्टयं ॥ ततस्तत्त्वविवेकस्याधिकारिणो भवन्ति । तत्त्वविवेक
 कः । आत्मा सत्यस्तदन्यत् सर्वं मिथ्येति ॥ ८ ॥ आत्मा क
 स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्यतिरिक्तः पञ्चकोशातीतः सन् अवस्था
 त्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपः सन् यस्तिष्ठति स आत्मा ॥ ९ ॥
 स्थूलशरीरं किम् । पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन
 सुखदुःखादिभोगायतनं शरीरं अस्ति जायते वर्धते विपरिण
 मते अपक्षीयते विनश्यतीति पञ्चकारवदेतत्स्थूलशरीरम् ॥ १० ॥
 सूक्ष्मशरीरं किम् । अपञ्चीकृतपञ्चमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन
 सुखदुःखादिभोगसाधनं पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि
 पञ्चप्राणादयः मनश्चैकं बुद्धिश्चैका एवं सप्तदशकलाभिः सह
 यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्मशरीरम् ॥ ११ ॥ श्रोत्रं तक् चक्षुः रसना
 घ्राणं इति पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि । श्रोत्रस्य दिग्देवता । तच्चो
 वायुः । चक्षुषः सूर्यः । रसनाया वरुणः । घ्राणस्य अश्विर्ना
 इति ज्ञानेन्द्रियदेवताः । श्रोत्रस्य विषयः शब्दग्रहणम् । तच्चो
 विषयः स्पर्शग्रहणम् । चक्षुषो विषयः रूपग्रहणम् । रसनाया

विषयः रसग्रहणम् । घ्राणस्य विषयो गन्धग्रहणम् इति ॥ १२ ॥
 वाक्पाणिपादपायूपस्थानीति पञ्चकर्मेन्द्रियाणि ॥ वाचो देवता
 वह्निः । हस्तयोरिन्द्रः । पादयोर्विष्णुः । पायोर्मृत्युः । उपस्थस्य
 प्रजापतिः इति कर्मेन्द्रियदेवताः ॥ वाचो विषयः भाषणम् ।
 पाण्योर्विषयः वस्तुग्रहणम् । पादयोर्विषयः गमनम् । पायोर्वि-
 षयः मलत्यागः । उपस्थस्य विषयः आनन्द इति ॥ कारणश-
 रीरं किम् । अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं शरीरद्वयस्य कारणमात्रं
 सत् स्वस्वरूपाऽज्ञानं निर्विकल्पकरूपं यदस्ति तत्कारणशरीरम्
 ॥ १३ ॥ अवस्थात्रयं किम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थाः ॥ १४ ॥
 जाग्रदवस्था का । श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियैः शब्दादिविषयैश्च ज्ञायते
 इति यत् सा जाग्रदवस्था । स्थूलशरीराभिमानी आत्मा विश्व
 इत्युच्यते ॥ १५ ॥ स्वप्नावस्था केति चेत् । जाग्रदवस्थायां यत्
 दृष्टं यच्छ्रुतं तज्जनितवासनया निद्रासमये यः प्रपञ्चः प्रती-
 यते सा स्वप्नावस्था । सूक्ष्मशरीराभिमानी आत्मा तैजस इत्यु-
 च्यते ॥ १६ ॥ अतः सुषुप्त्यवस्था का । अहं किमपि न
 जानामि सुखेन मया निद्रानुभूयत इति सुषुप्त्यवस्था । का-
 रणशरीराभिमानी आत्मा प्राज्ञ इत्युच्यते ॥ १७ ॥ पञ्च
 कोशाः के । अन्नमयः प्राणमयः मनोमयः विज्ञानमयः आनं-
 दमयश्चेति ॥ १८ ॥ अन्नमयः कः । अन्नरसेनैव भूत्वा अन्नर-
 सेनैव वृद्धिं प्राप्य अन्नरूपपृथिव्यां यद्विलीयते तदन्नमयः
 कोशः । स्थूलशरीरम् ॥ १९ ॥ प्राणमयः कः । प्राणादिपञ्च-
 वायवः ॥ वागार्दीन्द्रियपञ्चकं प्राणमयः ॥ २० ॥ मनोमयः
 कोशः कः । मनश्च ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं मिलित्वा भवति स मनो-
 मयः कोशः ॥ २१ ॥ विज्ञानमयः कः । बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं

मिलित्वा यो भवति स विज्ञानमयः कोशः ॥ २२ ॥ आनन्द-
 मयः कः । एवमेव कारणशरीरभूताविद्यास्थमलिनसत्त्वं प्रिया-
 दिवृत्तिसहितं सत् आनन्दमयः कोशः । एतत्कोशपञ्चकम् ।
 मदीयं शरीरं मदीयाः प्राणाः मदीयं मनश्च मदीया बुद्धिर्मा-
 दीयं ज्ञानमिति स्वेनैव ज्ञायते । तद्यथा मदीयत्वेन ज्ञातं कटु-
 ककुण्डलगृहादिकं स्वस्माद्भिन्नं तथा पञ्चकोशादिकं मदीयत्वेन
 ज्ञातमात्मा न भवति ॥ २३ ॥ आत्मा तर्हि कः । सच्चिदानं-
 दस्वरूपः ॥ २४ ॥ सत्किं । कालत्रयेऽपि तिष्ठतीति सत् ॥
 चित्किं । ज्ञानस्वरूपः ॥ आनन्दः कः । सुखस्वरूपः ॥ एवं
 सच्चिदानन्दस्वरूपं स्वात्मानं विजानीयात् ॥ २५ ॥ अथ चतु-
 विंशतितत्त्वोत्पत्तिप्रकारं वक्ष्यामः ॥ २६ ॥ ब्रह्माश्रया सत्त्वर-
 जस्तमोगुणात्मिका माया अस्ति । तत आकाशः संभूतः ।
 आकाशाद्वायुः । वायोस्तेजः । तेजस आपः । अद्भ्यः पृथिवी
 ॥ २७ ॥ एतेषां पञ्चतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य सात्त्विकांशात्
 श्रोत्रेन्द्रियं संभूतम् । वायोः सात्त्विकांशात् तर्हिन्द्रियं संभूतम् ।
 अग्नेः सात्त्विकांशात् चक्षुरिन्द्रियं संभूतम् । जलस्य सात्त्विकां-
 शात् रसनेन्द्रियं संभूतम् । पृथिव्याः सात्त्विकांशात् घ्राणेन्द्रियं
 संभूतम् । एतेषां पञ्चतत्त्वानां समष्टिसात्त्विकांशात् मनोबुद्ध्या-
 हंकारचित्तांतःकरणानि संभूतानि ॥ २८ ॥ संकल्पविकल्पा-
 त्मकं मनः । निश्चयात्मिका बुद्धिः । अहंकर्ता अहंकारः ।
 चिंतनकर्तृ चित्तम् । मनसो देवता चंद्रमा । बुद्धेर्ब्रह्मा । अहं-
 कारस्य रुद्रः । चित्तस्य वासुदेवः ॥ २९ ॥ एतेषां पञ्चतत्त्वानां
 मध्ये आकाशस्य राजसांशात् वागिन्द्रियं संभूतम् । वायो राज-
 सांशात् पाणीन्द्रियं संभूतम् । वह्नेः राजसांशात् पादेन्द्रियं संभू-

तम् । जलस्य राजसांशात् उपस्थेन्द्रियं संभूतम् । पृथिव्या राज-
 सांशात् गुदेन्द्रियं संभूतम् । एतेषां समष्टिराजसांशात् पंच-
 प्राणाः संभूताः ॥ ३० ॥ एतेषां पंचतत्त्वानां तामसांशात्
 पंचीकृतपंचतत्त्वानि भवन्ति । पंचीकरणं कथं इति चेत् । एते-
 षां पंचमहाभूतानां तामसांशस्वरूपं एकं एकं भूतं द्विधा विभ-
 ज्य एकं एकमर्धं पृथक् तूष्णीं व्यवस्थाप्य अपरं अपरं अर्धं
 चतुर्धा विभज्य स्वार्धमन्येषु अर्धेषु स्वभागचतुष्टयसंयोजनं
 कार्यं । तदा पंचीकरणं भवति । एतेभ्यः पंचीकृतपंचमहाभू-
 तेभ्यः स्थूलशरीरं भवति । एवं पिंडब्रह्मांडयोरैक्यं संभूतम्
 ॥ ३१ ॥ स्थूलशरीराभिमानी जीवनामकं ब्रह्मप्रतिविम्बं भव-
 ति । स एव जीवः प्रकृत्या स्वस्मात् ईश्वरं भिन्नत्वेन जानाति ।
 अविद्योपाधिः सन् आत्मा जीव इत्युच्यते ॥ ३२ ॥ मायो-
 पाधिः सन् ईश्वर इत्युच्यते । एवं उपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेददृष्टि-
 र्यावत्पर्यंतं तिष्ठति तावत्पर्यंतं जन्ममरणादिरूपसंसारो न
 निवर्तते तस्मात्कारणान्न जीवेश्वरयोर्भेदबुद्धिः स्वीकार्या ॥ ३३ ॥
 ननु साहंकारस्य किञ्चिज्ज्ञस्य जीवस्य निरहंकारस्य सर्वज्ञस्येश्व-
 रस्य तत्त्वमसीति महावाक्यात् कथमभेदबुद्धिः स्यादुभयोः
 विरुद्धधर्माक्रान्तत्वात् ॥ ३४ ॥ इति चेन्न स्थूलसूक्ष्मशरीरा-
 भिमानी तत्पदवाच्यार्थः । उपाधिविनिर्मुक्तं समाधिदशासंपन्नं
 शुद्धं चैतन्यं तत्पदलक्ष्यार्थः ॥ ३५ ॥ एवं सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट
 ईश्वरः तत्पदवाच्यार्थः ॥ उपाधिशून्यं शुद्धचैतन्यं तत्पदल-
 क्ष्यार्थः ॥ एवं च जीवेश्वरयोः चैतन्यरूपेणाऽभेदे बाधकाभावः
 ॥ ३६ ॥ एवं च वेदान्तवाक्यैः सद्गुरूपदेशेन च सर्वेष्वपि
 भूतेषु येषां ब्रह्मबुद्धिरूपत्वा ते जीवन्मुक्ता इत्यर्थः ॥ ३७ ॥

ननु जीवन्मुक्तः कः ? यथा देहोऽहं पुरुषोऽहं ब्राह्मणोऽहं
 शूद्रोऽहमस्मीति दृढनिश्चयस्तथा नाहं ब्राह्मणः न शूद्रः न पु-
 षः किंतु असंगः सच्चिदानंदस्वरूपः प्रकाशरूपः सर्वातर्यामि-
 चिदाकाशरूपोऽस्मीति दृढनिश्चयरूपाऽपरोक्षज्ञानवान् जीव-
 न्मुक्तः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मैवाहमस्मीत्यपरोक्षज्ञानेन निखिलकर्म-
 धविनिर्मुक्तः स्यात् ॥ कर्माणि कतिविधानि संतीति चे-
 आगामिसंचितप्रारब्धभेदेन त्रिविधानि संति ॥ ३९ ॥ ज्ञानो-
 त्पत्त्यनंतरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति तदागामी-
 त्यभिधीयते ॥ ४० ॥ संचितं कर्म किम् । अनंतकोटिजन्मत-
 बीजभूतं सत् यत्कर्मजातं पूर्वाजितं तिष्ठति तत्संचितं ज्ञेय-
 ॥ ४१ ॥ प्रारब्धकर्म किमिति चेत् । इदं शरीरमुत्पाद्य ए-
 लोके एवं सुखदुःखादिप्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं भोगेन नष्टं भ-
 ति प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति ॥ ४२ ॥ संचितं क-
 ब्रह्मैवाहमिति निश्चयात्मकज्ञानेन नश्यति । आगामि कर्म आ-
 ज्ञानेन नश्यति । किंच आगामिकर्मणां नलिनीदलगतजल-
 ज्ञानिनां संबन्धो नास्ति ॥ ४३ ॥ किंच ये ज्ञानिनं स्तुवंति
 भजंति अर्चयंति तान्प्रति ज्ञानिकृतम् आगामि पुण्यं गच्छति
 ये ज्ञानिनं निंदंति द्विषंति दुःखप्रदानं कुर्वन्ति तान्प्रति ज्ञानि-
 कृतं सर्व आगामि क्रियमाणं यदवाच्यं कर्म पापात्मकं त-
 च्छति ॥ ४४ ॥ तथा चात्मवित्संसारं तीर्त्वा ब्रह्मानंदं ईहा-
 प्राप्नोति । तरति शोकमात्मविदिति श्रुतेः ॥ ४५ ॥ तनुं त्यज-
 वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा ॥ ज्ञानसंप्राप्तिसमये मुक्तोऽ-
 विगताशयः ॥ इति स्मृतेश्च ॥ ४७ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्य-
 विरचितस्तत्त्वबोधः समाप्तः ॥ २५ ॥

आत्मबोधः ॥ २६ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ तपोभिः क्षीणपापानां शान्तानां
 चीतरागिणाम् । मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते
 बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् । पाकस्य वह्नि-
 चज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिध्यति ॥ २ ॥ अविरोधितया कर्म
 नाविद्यां विनिवर्तयेत् । विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिर-
 संघवत् ॥ ३ ॥ परिच्छिन्नमिवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः ।
 स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापार्येऽशुमानिव ॥ ४ ॥ अज्ञानकलुषं
 जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलम् । कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं
 कतकरेणुवत् ॥ ५ ॥ संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ।
 स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधे सत्यसद्भवेत् ॥ ६ ॥ तावत्सत्यं
 जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा । यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधि-
 ष्ठानमद्वयम् ॥ ७ ॥ सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पि-
 ताः । व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८ ॥
 यथाकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः । तद्भेदाद्भिन्नव-
 द्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥ ९ ॥ नानोपाधिवशादेव जाति-
 वर्णाश्रमादयः । आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत्
 ॥ १० ॥ पञ्चीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसंचितम् । शरीरं सुखदुः-
 खानां भोगायतनमुच्यते ॥ ११ ॥ पञ्चप्राणमनोबुद्धिदेशेन्द्रि-
 यसमन्वितम् । अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम्
 ॥ १२ ॥ अनाद्यविद्याऽनिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते । उपा-
 धित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥ १३ ॥ पञ्चकोशादियोगे-
 नेन तत्तन्मय इव स्थितः । शुद्धात्मा नीलवस्त्रादियोगेन स्फ-

टिको यथा ॥ १४ ॥ वपुस्तुपादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यावधत्तः । आत्मानमन्तरं शुद्धं विविच्यात्तन्दुलं यथा ॥ १५ ॥
 सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते । बुद्धावेवावभासं स्वच्छेषु प्रतिविम्बवत् ॥ १६ ॥ देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम् । तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा ॥ १७ ॥
 व्यापृतेष्विन्द्रियेष्व्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् । दृश्यतेऽग्रे धावत्सु धावन्निव यथा शशी ॥ १८ ॥ आत्मचैतन्यमाश्रित देहेन्द्रियमनोधिः । स्वकीयार्थेषु वर्तन्ते सूर्यालोकं यथा जना ॥ १९ ॥
 देहेन्द्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि । अध्यस्तन्त्यविवेकेन गगने नीलतादिवत् ॥ २० ॥ अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि । कल्पन्तेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादि यथाम्भसः ॥ २१ ॥
 रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्त्वं प्रवर्तते । सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः ॥ २२ ॥ प्रकाशोर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता । स्वभावः सच्चिदानन्दनित्यनिर्मलतात्मनः ॥ २३ ॥
 आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्द्वितिरिति द्वयम् । संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ॥ २४ ॥ आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्वोधो न जातिरिति । जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ॥ २५ ॥
 रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत् । नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्मलं भवेत् ॥ २६ ॥
 आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनीन्द्रियाणि हि । दीपो घटादिवत्स्यात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥ २७ ॥
 स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः । न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते ॥ २८ ॥ निषिध्य निखिलोपाधीनेति नेतीति वाक्यतः । विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपर

मात्मनोः ॥ २९ ॥ आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम् ।
 एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥ देहान्यत्तान्न
 मे जन्म जराकार्श्यलयादयः । शब्दादिविषयैः सङ्गो निरिन्द्रि-
 यतया न च ॥ ३१ ॥ अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ।
 अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादिश्रुतिशासनात् ॥ ३२ ॥ निर्गुणो
 निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरञ्जनः । निर्विकारो निराकारो
 नित्यमुक्तोऽसि निर्मलः ॥ ३३ ॥ अहमाकाशवत्सर्ववहिरन्त-
 र्गतोऽच्युतः । सदा सर्वसमः शुद्धो निःसङ्गो निर्मलोऽचलः
 ॥ ३४ ॥ नित्यशुद्धविमुक्तैकमखण्डानन्दमद्वयम् । सत्यं ज्ञानम-
 नन्तं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ ३५ ॥ एवं निरन्तराभ्यस्ता
 ब्रह्मवासीति वासना । हरत्यविद्याविक्षोभान् रोगानिव रसा-
 यनम् ॥ ३६ ॥ विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेन्द्रियः ।
 भावयेदेकमात्मानं तमनन्तमनन्यधीः ॥ ३७ ॥ आत्मन्येवा-
 खिलं दृश्यं प्रविलाप्य धियः सुधीः । भावयेदेकमात्मानं निर्म-
 लाकाशवत्सदा ॥ ३८ ॥ रूपवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थ-
 वित् । परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ३९ ॥ ज्ञातृज्ञान-
 ज्ञेयभेदः परात्मनि न विद्यते । चिदानन्दैकरूपत्वादीप्यते स्वय-
 मेव हि ॥ ४० ॥ एवमात्मारणौ ध्यानमन्थने सततं कृते ।
 उदितावगतिर्ज्वाला सर्वाज्ञानेन्धनं दहेत् ॥ ४१ ॥ अरुणेनेव
 बोधेन पूर्वसन्तमसे हृते तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमा-
 निव ॥ ४२ ॥ आत्मा तु सततं ग्राप्तोऽप्यग्राप्तवदविद्यया ।
 तन्नाशे ग्राप्तवद्भाति स्वखण्डाभरणं यथा ॥ ४३ ॥ स्थाणौ पुरु-
 षवद्भ्रान्त्या कृता ब्रह्मणि जीवता । जीवस्य तात्त्विके रूपे
 तस्मिन् दृष्टे निवर्तते ॥ ४४ ॥ तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञान-

मञ्जसा । अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ४५ ॥
 सम्यग्विज्ञानवान्योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम् । एवं च सर्वमा-
 त्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥ ४६ ॥ आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्म-
 नोऽन्यन्न विद्यते । मृदो यद्वद्वटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥ ४७ ॥
 जीवन्मुक्तस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणैस्त्यजेत् । सवि-
 दानन्दरूपत्वान्नवेदमरकीटवत् ॥ ४८ ॥ तीर्त्वा मोहार्णवं हृत्
 रागद्वेषादिराक्षसान् । योगी शान्तिसमायुक्तो ह्यात्मारामो
 विराजते ॥ ४९ ॥ उपाधिस्थोऽपि तद्वर्मेन लिप्तो व्योमवन्
 निः । सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५० ॥ बाह्य-
 नित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्बृतः । घटस्थदीपवत् स्वच्छ-
 स्वान्तरेव प्रकाशते ॥ ५१ ॥ उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषो
 विशेन्मुनिः । जले जलं वियद्भोमि तेजस्तेजसि वा यथा ॥ ५२ ॥
 यल्लभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् । यज्ज्ञानान्नाप-
 रं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५३ ॥ यद्वृद्धा न परं वृद्धं यद्वृद्ध-
 न पुनर्भवः । यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञेयं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५४ ॥
 तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्दमव्ययम् । अनन्तं नित्यमेवं
 यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५५ ॥ अतद्यावृत्तिरूपेण वेदान्तैर्लक्ष्य-
 तेऽव्ययम् । अखण्डानन्दमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥
 अखण्डानन्दरूपस्य तस्यानन्दलवाश्रिताः । ब्रह्माद्यास्तारतम्येन
 भवन्त्यानन्दिनोऽखिलाः ॥ ५७ ॥ तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यव-
 हारस्तदन्वितः । तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥ ५८ ॥
 अनण्वस्थूलमद्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् । अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्र-
 ह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५९ ॥ यज्ज्ञासा भासतेऽर्कादि भास्यैर्यत्तु
 भास्यते । येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६० ॥

स्वयमन्तर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत् । ब्रह्म प्रकाशते वह्नि-
प्रतप्तायसपिण्डवत् ॥ ६१ ॥ जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न
किञ्चन । ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका ॥ ६२ ॥
दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत् । तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म
सच्चिदानन्दमद्वयम् ॥ ६३ ॥ सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षु-
र्निरीक्षते । अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वन्तं भानुमन्धवत् ॥ ६४ ॥
श्रवणादिभिरुदीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः । जीवः सर्वमलान्मुक्तः
स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ॥ ६५ ॥ हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोध-
भानुस्तमोपहृत् । सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्वं प्रकाशते
॥ ६६ ॥ दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्यः सर्वगं शीतादिहृन्नित्यसुखं
निरञ्जनम् । यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः स सर्ववित्स-
र्वगतोऽमृतो भवेत् ॥ ६७ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजका-
चार्यश्रीमच्छंकराचार्यकृत आत्मबोधः समाप्तः ॥ २६ ॥

वाक्यसुधा ॥ २७ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ रूपं दृश्यं लोचनं दृक् तद्दृश्यं द्रष्टृ
मानसं । दृश्या धीवृत्तयः साक्षी दृगेव न तु दृश्यते ॥ १ ॥
नीलपीतस्थूलसूक्ष्मह्रस्वदीर्घादिभेदतः । नानाविधानि रूपाणि
पश्यल्लोचनमेकधा ॥ २ ॥ आन्ध्यमान्द्यपदुत्तेषु नेत्रधर्मेष्वने-
कधा । संकल्पयन्मनः श्रोत्रस्त्रगादौ योज्यतामिति ॥ ३ ॥
कामः संकल्पसंदेहौ श्रद्धाश्रद्धे धृतीतरे । हीर्द्धाभीरित्येवमादी-
न्मासयत्येकधा चित्तिः ॥ ४ ॥ नोदेति नास्तमेत्येषा न वृद्धि-
याति न क्षयं । स्वयं तथाविधान्यानि भासयेत्साधनं विना
॥ ५ ॥ चिच्छायावेशतो बुद्धौ भानं धीस्तु द्विधा स्थिता ।

एकाहंकृतिरन्या स्यादन्तःकरणरूपिणी ॥ ६ ॥ छायाहंकारो
 योरैक्यं तप्तायःपिण्डवन्मतम् । तदहंकारतादात्म्यादेहश्चेतन
 मियात् ॥ ७ ॥ अहंकारस्य तादात्म्यं चिच्छायादेहसाक्षिभि
 सहजं कर्मजं भ्रान्तिजन्यं च त्रिविधं क्रमात् ॥ ८ ॥ संवत्ति
 नोः सतोर्नास्ति निवृत्तिः सहजस्य तु । कर्मक्षयात्प्रवोक्त
 निवर्तते क्रमादुभे ॥ ९ ॥ अहंकारलये सुप्तौ भवेदेहोप्यचेतन
 अहंकृतिविकारोत्थः स्वप्नः सर्वस्तु जागरः ॥ १० ॥ अंतःक
 णवृत्तिस्तु चित्तिच्छायैक्यमागता । वासनाः कल्पयत्येव बो
 धक्षैर्विषयान्न हि ॥ ११ ॥ मनोहंकृत्युपादानं लिंगमेकं ज
 त्मकं । अवस्थात्रयमन्वेति जायते प्रियतेऽपिवा ॥ १२ ॥ शक्ति
 द्वयं हि मायाया विक्षेपावृत्तिरूपकम् । विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादि
 ह्याण्डान्तं जगत्सृजेत् ॥ १३ ॥ अन्तर्दृग्दृश्ययोर्भेदं ब्रह्म
 ब्रह्मसर्गयोः । या वृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कार
 ॥ १४ ॥ सृष्टिर्नाम ब्रह्मरूपे सच्चिदानंदवस्तुनि । अम्बुफे
 दिवत्सर्वं नामरूपप्रसारणम् ॥ १५ ॥ साक्षिणः पुरतो भा
 लिङ्गदेहेन संयुतः । चित्तिच्छायासमावेशाजीवः स्याद्वाच
 रिकः ॥ १६ ॥ अस्य जीवत्वमारोपात्साक्षिण्यपि च भासते
 आवृत्तौ तु विनष्टायां भेदजातं प्रयाति तत् ॥ १७ ॥ सर्व
 ब्रह्मणस्तद्वद्भेदमावृत्य तिष्ठति । या शक्तिस्तद्वशाद्ब्रह्म विवृ
 त्त्वेन भासते ॥ १८ ॥ अत्राप्यावृत्तिनाशेन विभाति ब्रह्म
 र्गयोः । भेदस्ततो विकारः स्यात्सर्गेन ब्रह्मणि कचित् ॥ १९ ॥
 अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंशपञ्चकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्म
 जगद्रूपं ततो द्वयम् ॥ २० ॥ स्ववाय्वग्निजलोर्वापु देवतिर्य
 रादिषु । अभिजात्सच्चिदानंदाद्भिद्येते रूपनामनी ॥ २१ ॥

उपेक्ष्य नामरूपे द्वे सच्चिदानंदवस्तुनि । समाधिं सर्वदा कुर्या-
 द्बुद्धये वाथवा ब्रहिः ॥ २२ ॥ सविकल्पोऽविकल्पश्च समाधि-
 द्विविधो हृदि । दृश्यशब्दानुबोधेन सविकल्पः पुनर्द्विधा
 ॥ २३ ॥ कामाद्याश्चित्तसादृश्यात्तत्साक्षित्वेन चेतनाम् । ध्या-
 येद्दृश्यानुविद्धोऽयं समाधिः सविकल्पकः ॥ २४ ॥ असंगः
 सच्चिदानंदस्वप्नभो द्वैतवर्जितः । अंसीति शब्दविद्धोऽयं सविकल्पः
 समाहितः ॥ २५ ॥ स्वानुभूतिरसावेशाद्दृश्यशब्दानुपेक्ष्यतु ।
 निर्विकल्पः समाधिः स्यान्निर्वातस्थलदीपवत् ॥ २६ ॥ हृदि
 च ब्राह्मदेशेऽपि यस्मिन्कस्मिंश्च वस्तुनि । समाधिराद्यः सन्मात्रे
 नामरूपे पृथक्स्थितः ॥ २७ ॥ अखण्डैकरसं वस्तु सच्चिदानं-
 दलक्षणम् । इत्यविच्छिन्नचित्तेऽयं समाधिर्मध्यमो भवेत् ॥ २८ ॥
 स्तन्यभावो रसास्वादात्तृतीयः पूर्ववन्मतः । एतैः समाधिभिः
 पद्मभिर्नयेत्कालं निरन्तरम् ॥ २९ ॥ देहाभिमाने गलिते विज्ञा-
 ते परमात्मनि । यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥ ३० ॥
 भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य
 कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ३१ ॥ अवच्छिन्नश्चिदाभासस्तृ-
 तीयः स्वप्नकल्पितः । विज्ञेयस्त्रिविधो जीवस्तत्राद्यः पारमा-
 र्थिकः ॥ ३२ ॥ अवच्छेदः कल्पितः स्यादवच्छेद्यं तु वास्तवम् ।
 तस्मिन्जीवत्वमारोपाद्ब्रह्मत्वं तु स्वभावतः ॥ ३३ ॥ अवच्छिन्न-
 स्य जीवस्य तादात्म्यं ब्रह्मणा सह । तत्त्वमस्यादिवाक्यानि जगु-
 न्नेतरजीवयोः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्यवस्थिता माया विक्षेपावृतिरू-
 पिका । आवृत्याखण्डता तस्मिञ्जगज्जीवौ प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥
 जीवो धीस्थश्चिदाभासो जगत्स्याद्भूतभौतिकम् । अनादिकाल-
 मारभ्य मोक्षात्पूर्वमिदं द्वयम् ॥ ३६ ॥ चिदाभासे स्थिता निद्रा

विक्षेपावृतिरूपिणी । आवृत्य जीवजगती पूर्वं नूत्नेन कल्पते ॥ ३७ ॥ प्रतीतिकाल एवैते स्थितत्वात्प्रातिभासिके । न । स्वप्नप्रबुद्धस्य पुनः स्वप्ने स्थितिस्तयोः ॥ ३८ ॥ प्रातिभासिकजीवस्तु जगत्तत्प्रातिभासिकम् । वास्तवं मन्यते यस्तु मिथ्या व्यावहारिकः ॥ ३९ ॥ व्यावहारिकजीवस्तु जगत्तद्व्यावहारिकम् । सत्ये प्रत्येति मिथ्येति मन्यते पारमार्थिकः ॥ ४० ॥ पारमार्थिकजीवस्तु ब्रह्मैकं पारमार्थिकम् । प्रत्येति वीक्ष नान्यद्वीक्षेत्तच्चनृतात्मना ॥ ४१ ॥ माधुर्यद्रवशैत्यादिजलधन स्तरंगके । अनुगम्याऽपि तन्निष्ठे फेनेप्यनुगता यथा ॥ ४२ ॥ प्रातिभासिकजीवस्य लये स्युर्व्यावहारिके । तल्लये सञ्चि नन्दाः पर्यवस्यन्ति साक्षिणि ॥ ४३ ॥ इति श्रीमच्छंकराचार्य विरचितवाक्यसुधा संपूर्णा ॥ २७ ॥

अथाऽपरोक्षानुभूतिप्रारम्भः ॥ २८ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ श्रीहरिं परमानन्दमुपदेष्टारमी रम् । व्यापकं सर्वलोकानां कारणं तं नमाम्यहम् ॥ १ ॥ अपरोक्षानुभूतिर्वै प्रोच्यते मोक्षसिद्धये । सद्भिरेव प्रयत्नं वीक्षणीया मुहुर्मुहुः ॥ २ ॥ स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरिं पणात् । साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादिचतुष्टयम् ॥ ३ ॥ ब्रह्म दिस्थावरान्तेषु वैराग्यं विषयेष्वनु । यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्वि निर्मलम् ॥ ४ ॥ नित्यमात्मस्वरूपं हि दृश्यं तद्विपरिणामम् । एवं यो निश्चयः सम्यग्विवेको वस्तुनः स वै ॥ ५ ॥ सदैव वासनात्यागः शमोऽयमिति शब्दितः । निग्रहो बाह्यं चीनां दम इत्यभिधीयते ॥ ६ ॥ विषयेभ्यः पराङ्मतिः परं

परतिहिं सा । सहनं सर्वदुःखानां तितिक्षा सा शुभा मता
 ॥ ७ ॥ निगमाचार्यवाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता । चित्तै-
 काग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम् ॥ ८ ॥ संसारबन्ध-
 निर्मुक्तिः कथं मे स्यात्कदा विधे । इति या सुदृढा बुद्धिर्व-
 क्तव्या सा मुमुक्षुता ॥ ९ ॥ उक्तसाधनयुक्तेन विचारः पुरुषे-
 ण हि । कर्तव्यो ज्ञानसिद्ध्यर्थमात्मनः शुभमिच्छता ॥ १० ॥
 नोत्पद्यते विना ज्ञानं विचारेणान्यसाधनैः । यथा पदार्थभानं
 हि प्रकाशेन विना कश्चित् ॥ ११ ॥ कोऽहं कथमिदं जातं
 को वै कर्ताऽस्य विद्यते । उपादानं किमस्तीह विचारः सो-
 ज्यमीदृशः ॥ १२ ॥ नाहं भूतगणो देहो नाहं चाक्षगणस्तथा ।
 एतद्विलक्षणः कश्चिद्विचारः सोज्यमीदृशः ॥ १३ ॥ अज्ञानप्र-
 भवं सर्वं ज्ञानेन प्रविलीयते । संकल्पो विविधः कर्ता विचा-
 रः सोज्यमीदृशः ॥ १४ ॥ एतयोर्यदुपादानमेकं सूक्ष्मं सद-
 व्ययम् । यथैव मृद्भटादीनां विचारः सोज्यमीदृशः ॥ १५ ॥
 अहमेकोऽपि सूक्ष्मश्च ज्ञाता साक्षी सदव्ययः । तदहं नात्र
 संदेहो विचारः सोज्यमीदृशः ॥ १६ ॥ आत्मा विनिष्कलो
 ह्येको देहो बहुभिरावृतः । तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति किमज्ञानमतः
 परम् ॥ १७ ॥ आत्मा नियामकश्चान्तर्देहो बाह्यो नियम्यकः ।
 तयोरैक्यं ॥ १८ ॥ आत्मा ज्ञानमयः पुण्यो देहो मांसमयो-
 ऽशुचिः । तयोरैक्यं ॥ १९ ॥ आत्मा प्रकाशकः स्वच्छो
 देहस्तामस उच्यते । तयोरैक्यं ॥ २० ॥ आत्मा नित्यो हि
 सद्रूपो देहोज्जनित्यो ह्यसन्मयः । तयोरैक्यं ॥ २१ ॥ आत्म-
 नस्तत्प्रकाशत्वं यत्पदार्थावभासनम् । नाम्यादिदीप्तिवद्दीप्ति-
 र्भवत्यान्ध्यं यतो निशि ॥ २२ ॥ देहोज्जमित्ययं मूढो धृत्वा

तिष्ठत्यहो जनः । ममायमित्यपि ज्ञात्वा घटद्रष्टेव सर्वं
 ॥ २३ ॥ ब्रह्मैवाहं समः शान्तः सच्चिदानन्दलक्षणः । न
 देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमित्युच्यते बुधैः ॥ २४ ॥ निर्विकारो
 निराकारो निरवद्योऽहमव्ययः । नाहं देहो ह्यसद्रूपो ज्ञानमि
 त्युच्यते बुधैः ॥ २५ ॥ निरामयो निराभासो निर्विकल्प
 माततः । नाहं देहो ॥ २६ ॥ निर्गुणो निष्क्रियो नि
 नित्यमुक्तोऽहमच्युतः । नाहं देहो ॥ २७ ॥ निर्मलो नि
 श्वलोऽनन्तः शुद्धोऽहमजरोऽमरः । नाहं देहो ॥ २८ ॥
 स्वदेहे शोभनं सन्तं पुरुषाख्यं च संमतम् । किं मूर्खश्च
 मात्मानं देहातीतं करोपि भोः ॥ २९ ॥ स्वात्मानं शृणु
 त्वं श्रुत्या युक्त्या च पूरुषम् । देहातीतं सदाकारं सुदृ
 भवादृशैः ॥ ३० ॥ अहंशब्देन विख्यात एक एव स्थितः प
 स्थूलस्त्वनेकतां प्राप्तः कथं स्यादेहकः पुमान् ॥ ३१ ॥
 अहं द्रष्टृतया सिद्धो देहो दृश्यतया स्थितः । ममायमिति वि
 शात्कथं ॥ ३२ ॥ अहं विकारहीनस्तु देहो नित्यं वि
 बान् । इति प्रतीयते साक्षात्कथं ॥ ३३ ॥ यस्मात्परमं
 श्रुत्या तया पुरुषलक्षणम् । विनिर्णीतं विमूढेन कथं ॥ ३४ ॥
 सर्वं पुरुष एवेति सूक्ते पुरुषसंज्ञिते । अप्युच्यते यतः श्रु
 कथं ॥ ३५ ॥ असङ्गः पुरुषः प्रोक्तो बृहदारण्यकेऽपि
 अनन्तमलसंश्लिष्टः कथं ॥ ३६ ॥ तत्रैव च समाख्यातः स
 ज्यातिर्हि पुरुषः । जडः परप्रकाशोऽसौ कथं ॥ ३७ ॥
 प्रोक्तोऽपि कर्मकाण्डेन ह्यात्मा देहादिलक्षणः । नित्यश्च तत्
 श्रुक्ते देहपातादनन्तरम् ॥ ३८ ॥ लिङ्गं चानेकसंयुक्तं चलं
 विकारि च । अव्यापकमसद्रूपं तत्कथं स्यात्पुमानयम् ॥ ३९ ॥

एवं देहद्वयादन्य आत्मपूरुष ईश्वरः । सर्वात्मा सर्वरूपश्च
 सर्वातीतोऽहमव्ययः ॥ ४० ॥ इत्यात्मदेहभागेन प्रपञ्चस्यैव
 सत्यता । यथोक्ता तर्कशास्त्रेण ततः किं पुरुषार्थता ॥ ४१ ॥
 इत्यात्मदेहभेदेन देहात्मत्वं निवारितम् । इदानीं देहभेदस्य
 ह्यसत्त्वं स्फुटमुच्यते ॥ ४२ ॥ चैतन्यस्यैकरूपत्वान्नेदो युक्तो न
 कहिंचित् । जीवत्वं च मृषा ज्ञेयं रज्जौ सर्पग्रहो यथा ॥ ४३ ॥
 रज्ज्वज्ञानात् क्षणेनैव यद्वद्रज्जुर्हि सर्पिणी । भाति तद्वच्चितिः
 साक्षाद्विश्वाकारेण केवला ॥ ४४ ॥ उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणो-
 ऽन्यन्न विद्यते । तस्मात्सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरेत् ॥ ४५ ॥
 व्याप्यव्यापकता मिथ्या सर्वमात्मेति शासनात् । इति ज्ञाते
 परे तत्त्वे भेदस्यावसरः कुतः ॥ ४६ ॥ श्रुत्या निवारितं नृनं
 नानात्वं स्वमुखेन हि । कथं भासो भवेदन्यः स्थिते चाद्वयका-
 रणे ॥ ४७ ॥ दोषोऽपि विहितः श्रुत्या मृत्योर्मृत्युं स गच्छ-
 ति । इह पश्यति नानात्वं मायया वञ्चितो नरः ॥ ४८ ॥
 ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः । तस्मादेतानि ब्रह्मैव
 भवन्तीत्यवधारयेत् ॥ ४९ ॥ ब्रह्मैव सर्वनामानि रूपाणि
 विविधानि च । कर्माण्यपि समग्राणि विभर्तीति श्रुतिर्जगौ
 ॥ ५० ॥ सुवर्णाज्जायमानस्य सुवर्णत्वं च शाश्वतम् । ब्रह्मणो
 जायमानस्य ब्रह्मत्वं च तथा भवेत् ॥ ५१ ॥ स्वल्पमप्यन्तरं
 कृत्वा जीवात्मपरमात्मनोः । यः संतिष्ठति मूढात्मा भयं
 तस्याभिभाषितम् ॥ ५२ ॥ यत्राज्ञानान्द्रवेद्वैतमितरस्तत्र पश्य-
 ति । आत्मत्वेन यदा सर्वं नेतरस्तत्र चाण्वपि ॥ ५३ ॥
 यस्मिन्सर्वाणि भूतानि ह्यात्मत्वेन विजानतः । न वै तस्य
 भवेन्मोहो न च शोकोऽद्वितीयतः ॥ ५४ ॥ अयमात्मा हि

ब्रह्मैव सर्वात्मकतया स्थितः । इति निर्धारितं श्रुत्या बृहदा-
 ण्यसंस्थया ॥ ५५ ॥ अनुभूतोऽप्ययं लोको व्यवहारक्षमोऽ-
 सन् । असद्रूपो यथा स्वप्न उत्तरक्षणबाधतः ॥ ५६ ॥ स्वप्न-
 जागरणेऽलीकः स्वप्नेऽपि जागरो न हि । द्वयमेव लये ना-
 लयोपि ह्युभयोर्न च ॥ ५७ ॥ त्रयमेवं भवेन्मिथ्या गुणत्रय-
 विनिर्मितम् । अस्य द्रष्टा गुणातीतो नित्यो ह्येकश्चिदात्म-
 न् ॥ ५८ ॥ यद्वन्मृदि घटभ्रान्तिं शुक्तौ वा रजतस्थितिम् । त-
 द्ब्रह्मणि जीवलं वीक्ष्यमाणे न पश्यति ॥ ५९ ॥ यथा स-
 घटो नाम कनके कुण्डलाभिधा । शुक्तौ हि रजतख्याति-
 वशब्दस्तथा परे ॥ ६० ॥ यथैव व्योम्नि नीलत्वं यथा नीरं म-
 स्थले । पुरुषत्वं यथा स्थाणौ तद्वद्विश्वं चिदात्मनि ॥ ६१ ॥
 यथैव शून्ये वैतालो गन्धर्वाणां पुरं यथा । यथाकाशे दि-
 न्द्रत्वं तद्वत्सत्ये जगत्स्थितिः ॥ ६२ ॥ यथा तरङ्गकलोलैर्जलं
 स्फुरत्यलम् । पात्ररूपेण ताग्रं हि ब्रह्माण्डौघैस्तथात्मता ॥ ६३ ॥
 घटनाम्ना यथा पृथ्वी पटनाम्ना हि तन्तवः । जगन्नाम्ना चि-
 द्भाति ज्ञेयं तत्तदभावतः ॥ ६४ ॥ सर्वोपि व्यवहारस्तु ब्रह्म-
 क्रियते जनैः । अज्ञानान्न विजानन्ति मृदेव हि घटादिक-
 ॥ ६५ ॥ कार्यकारणता नित्यमास्ते घटमृदोर्यथा । तथैव श्रु-
 तिभ्यां प्रपञ्चब्रह्मणोरिह ॥ ६६ ॥ गृह्यमाणे घटे यद्वन्-
 तिका याति वै बलात् । वीक्ष्यमाणे ग्रपञ्चेऽपि ब्रह्मैवार्मा-
 भासुरम् ॥ ६७ ॥ स ह वैवात्मा विशुद्धोऽस्ति ह्यशुद्धो भाति
 सदा । यथैव द्विविधा रज्जुज्ञानिनोऽज्ञानिनोऽनिशम् ॥ ६८ ॥
 यथैव मृन्मयः कुम्भस्तद्वद्देहोऽपि चिन्मयः । आत्मानात्मवि-
 गोऽयं सुधैव क्रियतेऽशुधैः ॥ ६९ ॥ सर्पलेन यथा रज्जु रज-

त्वेन शुक्तिका । विनिर्णीता विमूढेन देहत्वेन तथात्मता ॥७०॥
घटत्वेन यथा पृथ्वी पटत्वेनैव तन्तवः । विनिर्णीता विमूढेन
देहत्वेन तथात्मता ॥ ७१ ॥ कनकं कुण्डलत्वेन तरंगत्वेन वै ज-
लम् । विनिर्णीतं ॥ ७२ ॥ पुरुषत्वे यथा स्थाणुर्जलत्वेन
मरीचिका । विनिर्णीता ॥ ७३ ॥ गृहत्वेनैव काष्ठानि खड्ग-
त्वेनैव लोहता । विनिर्णीता ॥ ७४ ॥ यथा वृक्षविपर्यासो
जलाद्भवति कस्य चित् । तद्वदात्मनि देहत्वं पश्यत्यज्ञानयो-
गतः ॥ ७५ ॥ पोतेन गच्छतः पुंसः सर्वं भातीव चञ्चलम् ।
तद्वदा ॥ ७६ ॥ पीतत्वं हि यथा शुभ्रे दोषाद्भवति कस्य
चित् । तद्वदा ॥ ७७ ॥ चक्षुर्भ्यां भ्रमशीलाभ्यां सर्वं भाति
भ्रमात्मकम् । तद्वदा ॥ ७८ ॥ अलातं भ्रमणेनैव वर्तुलं भाति
सूर्यवत् । तद्वदा ॥ ७९ ॥ महत्त्वे सर्ववस्तूनामणुत्वं ह्यति-
दूरतः । तद्वदा ॥ ८० ॥ सूक्ष्मत्वे सर्वभावानां स्थूलत्वं चोप-
नेत्रतः । तद्वदा ॥ ८१ ॥ काचभूमौ जलत्वं वा जलभूमौ
हि काचता । तद्वदा ॥ ८२ ॥ यद्वदग्रौ मणित्वं हि मणौ वा
वह्निता पुनः । तद्वदा ॥ ८३ ॥ अभ्रेषु सत्सु धावत्सु सोमो
धौवति भाति वै । तद्वदा ॥ ८४ ॥ यथैव दिग्विपर्यासो मोहा-
द्भवति कस्यचित् । तद्वदा ॥ ८५ ॥ यथा शशी जले भाति
चञ्चलत्वेन कस्यचित् । तद्वदा ॥ ८६ ॥ एवमात्मन्यविद्यातो
देहाध्यासो हि जायते । स एवात्मपरिज्ञानाल्लीयते च परात्म-
नि ॥ ८७ ॥ सर्वमात्मतया ज्ञातं जगत्स्थावरजंगमम् । अभा-
वात्सर्वभावानां देहस्य चात्मता कुतः ॥ ८८ ॥ आत्मानं सततं
जानन्कालं नय महाद्युते । प्रारब्धमखिलं भुञ्जन्नोद्वेगं कर्तुमर्ह-
सि ॥ ८९ ॥ उत्पन्नेऽप्यात्मविज्ञाने प्रारब्धं नैव मुञ्चति । इति

यच्छ्रूयते शास्त्रे तन्निराक्रियतेऽधुना ॥ ९० ॥ तत्त्वज्ञानोदय
 दूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते । देहादीनामसत्त्वात्तु यथा स्वप्नो किं
 धतः ॥ ९१ ॥ कर्म जन्मान्तरीयं यत्प्रारब्धमिति कीर्तितम्
 तत्तु जन्मान्तराभावात्पुंसो नैवास्ति कर्हिंचित् ॥ ९२ ॥ स
 देहो यथाध्यस्तस्तथैवायं हि देहकः । अध्यस्तस्य कुतो ज
 जन्माभावे हि तत्कुतः ॥ ९३ ॥ उपादानं प्रपञ्चस्य मू
 ङसेव कथ्यते । अज्ञानं चैव वेदान्तैस्तस्मिन्नष्टे क विप्र
 ॥ ९४ ॥ यथा रज्जुं परित्यज्य सर्पं गृह्णाति वै भ्रमात् । त
 त्सत्यमविज्ञाय जगत्पश्यति मूढधीः ॥ ९५ ॥ रज्जुरूपे प
 ज्ञाते सर्पस्वप्नं न तिष्ठति । अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपञ्चः
 न्यतां गतः ॥ ९६ ॥ देहस्यापि प्रपञ्चत्वात्प्रारब्धावस्थिति
 कुतः । अज्ञानिजनबोधार्थं प्रारब्धं वक्ति वै श्रुतिः ॥ ९७
 क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे । बहुलं तन्निषेधा
 श्रुत्या गीतं च यत्स्फुटम् ॥ ९८ ॥ उच्यतेऽज्ञैर्बलाच्चैतत्तदस
 र्वद्वयागमः । वेदान्तमतहानं च यतो ज्ञानमिति श्रुतिः ॥ ९९
 त्रिपञ्चांगान्यथो वक्ष्ये पूर्वोक्तस्य हि लब्धये । तच्च सर्वैः सदा क
 निदिध्यासनमेव तु ॥ १०० ॥ नित्याभ्यासादृते प्राप्तिर्न भ
 त्सच्चिदात्मनः । तस्माद्ब्रह्म निदिध्यासेज्जिज्ञासुः श्रेयसे चित्
 ॥ १०१ ॥ यमो हि नियमस्त्यागो मौनं देशश्च कालता
 आसनं मूलबन्धश्च देहसाम्यं च दृक्स्थितिः ॥ १०२ ॥ प्रा
 संयमनं चैव प्रत्याहारश्च धारणा । आत्मध्यानं समाधि
 प्रोक्तान्यंगानि वै क्रमात् ॥ १०३ ॥ सर्वं ब्रह्मेति विज्ञानादि
 द्रियग्रामसंयमः । यमोज्यमिति संप्रोक्तोऽभ्यसनीयो मुहुर्मुहु
 ॥ १०४ ॥ सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृतिः । नियम

हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ॥१०५॥ त्यागः प्रपञ्चरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात् । त्यागो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयो यतः ॥ १०६ ॥ यस्माद्वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । यन्मौनं योगिभिर्गम्यं तद्भवेत्सर्वदा बुधः ॥ १०७ ॥ वाचो यस्मान्निवर्तन्ते तद्वक्तुं केन शक्यते । प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः ॥१०८॥ इति वा तद्भवेन्मौनं सतां सहजसंज्ञितम् । गिरा मौनं तु बालानां प्रयुक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ १०९ ॥ आदावन्ते च मध्ये च जनो यस्मिन्न विद्यते । येनेदं सततं व्याप्तं स देशो विजनः स्मृतः ॥ ११० ॥ कलनात्सर्वभूतानां ब्रह्मादीनां निमेषतः । कालशब्देन निर्दिष्टो ह्यखण्डानन्दः अद्वयः ॥ १११ ॥ सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् । आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम् ॥ ११२ ॥ सिद्धं यत्सर्वभूतादि विश्वाधिष्ठानमव्ययम् । यस्मिन्सिद्धाः समाविष्टास्तद्वै सिद्धासनं विदुः ॥ ११३ ॥ यन्मूलं सर्वभूतानां यन्मूलं चित्तबन्धनं । मूलबन्धः सदा सेव्यो योग्योऽसौ राजयोगिनाम् ॥ ११४ ॥ अंगानां समतां विद्यात्समे ब्रह्मणि लीयते । नोचेन्नैव समानत्वमृजुत्वं शुष्कवृक्षवत् ॥ ११५ ॥ दृष्टिं ज्ञानमयीं कृत्वा पश्येद्ब्रह्ममयं जगत् । सा दृष्टिः परमोदारा न नासाग्रौवलकिनी ॥ ११६ ॥ दृष्टिदर्शनदृश्यानां विरामो यत्र वा भवेत् । दृष्टिस्तत्रैव कर्तव्या न नासाग्रावलकिनी ॥ ११७ ॥ चित्तादिसर्वभाषेण ब्रह्मत्वेनैव भावनात् । निरोधः सर्ववृत्तीनां प्राणायामः स उच्यते ॥ ११८ ॥ निषेधनं प्रपञ्चस्य रेचकाख्यः समीरणः । ब्रह्मवासीति या वृत्तिः पूरको वायुरीरितः ॥ ११९ ॥ ततस्तद्वृत्तिनैश्चल्यं कुम्भकः प्राणसंयमः । अयं

चापि प्रबुद्धानामज्ञानां घ्राणपीडनम् ॥ १२० ॥ विषयेष्व-
 त्मतां दृष्ट्वा मनसश्चित्तिमञ्जनम् । प्रत्याहारः स विज्ञेयोऽयं
 सनीयो मुमुक्षुभिः ॥ १२१ ॥ यत्र यत्र मनो याति ब्रह्मणस्त-
 दर्शनात् । मनसो धारणं चैव धारणा सा परा मता ॥ १२२ ॥
 ब्रह्मवासीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया स्थितिः । ध्यानशब्दे-
 विख्याता परमानन्ददायिनी ॥ १२३ ॥ निर्विकारतया वृत्त-
 ब्रह्माकारतया पुनः । वृत्तिविस्मरणं सम्यक् समाधिर्ज्ञानं
 ज्ञकः ॥ १२४ ॥ इमं च कृत्रिमानन्दं तावत्साधु समभ्यसेत्
 वश्यो यावत्क्षणात्पुंसः प्रयुक्तः सन्भवेत्स्वयम् ॥ १२५ ॥ त-
 साधननिर्मुक्तः सिद्धो भवति योगिराट् । तत्स्वरूपं न चैत-
 विषयो मनसो गिराम् ॥ १२६ ॥ समाधौ क्रियमाणे-
 विघ्नान्यायान्ति वै बलात् । अनुसंधानराहित्यमालस्यं भो-
 लालसम् ॥ १२७ ॥ लयस्तमश्च विक्षेपो रसास्वादश्च शून्यता
 एवं यद्विघ्नबाहुल्यं त्याज्यं ब्रह्मविदा शनैः ॥ १२८ ॥ भा-
 वृत्त्या हि भावलं शून्यवृत्त्या हि शून्यता । ब्रह्मवृत्त्या हि
 पूर्णत्वं तथा पूर्णत्वमभ्यसेत् ॥ १२९ ॥ ये हि वृत्तिं जहत्ये-
 ब्रह्माख्यां पावनीं पराम् । ते तु वृथैव जीवन्ति पशुभि-
 समा नराः ॥ १३० ॥ ये हि वृत्तिं विजानन्ति ज्ञात्वापि वर्द्धयन्ति
 ये । ते वै सत्पुरुषा धन्या वंद्यास्ते भुवनत्रये ॥ १३१ ॥ ये
 वृत्तिः समा वृद्धा परिपक्वा च सा पुनः । ते वै सद्ब्रह्मतां प्रा-
 नेतरे शब्दवादिनः ॥ १३२ ॥ कुशला ब्रह्मवार्त्तायां वृत्ति-
 हीनाः सुराणिणः । तेप्यज्ञानितया नूनं पुनरायान्ति याति-
 च ॥ १३३ ॥ निमेषार्धं न तिष्ठन्ति वृत्तिं ब्रह्ममयीं विना
 यथा तिष्ठन्ति ब्रह्माद्याः सनकाद्याः शुक्रादयः ॥ १३४ ॥ का-

कारणता याता कारणेन हि कार्यता । कारणत्वं ततो गच्छे-
त्कार्याभावे विचारतः ॥ १३५ ॥ अथ शुद्धं भवेद्वस्तु यद्वै
वाचामगोचरम् । द्रष्टव्यं मृद्वेदेनैव दृष्टान्तेन पुनः पुनः ॥ १३६ ॥
अनेनैव प्रकारेण वृत्तिर्ब्रह्मात्मिका भवेत् । उदेति शुद्धचित्तानां
वृत्तिज्ञानं ततः परम् ॥ १३७ ॥ कारणव्यतिरेकेण पुमानादौ
विलोकयेत् । अन्वयेन पुनस्तद्वि कार्ये नित्यं प्रपश्यति ॥ १३८ ॥
कार्ये हि कारणं पश्येत्पश्चात्कार्यं विसर्जयेत् । कारणत्वं ततो
गच्छेदवशिष्टं भवेन्मुनिः ॥ १३९ ॥ भावितं तीव्रवेगेन यद्वस्तु
निश्चयात्मना । पुमांस्तद्वि भवेच्छीघ्रं ज्ञेयं भ्रमरकीटवत्
॥ १४० ॥ अदृश्यं भावरूपं च सर्वमेव चिदात्मकम् । साव-
धानतया नित्यं स्वात्मानं भावयेद्बुधः ॥ १४१ ॥ दृश्यं ह्यदृ-
श्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिंतयेत् । विद्वान्नित्यसुखे तिष्ठे-
द्विया चिद्रसपूर्णया ॥ १४२ ॥ एभिर्गैः समायुक्तो राजयोग
उदाहृतः । किञ्चित्पक्वकपायाणां हठयोगेन संयुतः ॥ १४३ ॥
परिपक्वं मनो येषां केवलोऽयं च सिद्धिदः । गुरुदैवतभक्तानां
सर्वेषां सुलभो जवात् ॥ १४४ ॥ इति श्रीपरमहंसपरिव्राजका-
चार्यश्रीमच्छंकरभगवता विरचितापरोक्षानुभूतिः समाप्ता २८

स्वात्मनिरूपणम् ॥ २९ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ श्रीगुरुचरणद्वन्द्वं वन्देहं, मथितदुः-
सहद्वन्द्वम् । भ्रान्तिग्रहोपशान्तिं पांसुमयं यस्य भसितमातनुते
॥ १ ॥ देशिकवरं दयालुं वन्देहं निहतसकलसन्देहम् । यच्च-
रणद्वयमद्वयमनुभवमुपदिशति तत्परस्यार्थम् ॥ २ ॥ संसारदा-
वपावकसंतप्तः सकलसाधनोपेतः । स्वात्मनिरूपणनिपुणैर्वाक्यैः

शिष्यः प्रबोध्यते गुरुणा ॥३॥ अस्ति स्वयमित्यस्मिन्नंशे कस्मा
 स्ति संशयः पुंसः । तत्रापि संशयश्चेत्संशयिता यः स एव भवति
 त्वम् ॥४॥ नाहमिति वेत्ति योऽसौ सत्यं ब्रह्मैव वेत्ति नास्तीति
 अहमस्मीति विजानन् ब्रह्मैवासौ स्वयं विजानाति ॥ ५ ॥
 ब्रह्म त्वमेव तस्मान्नाहं ब्रह्मेति मोहमात्रमिदम् । मोहेन भवति
 भेदः क्लेशाः सर्वे भवन्ति तन्मूलाः ॥ ६ ॥ न क्लेशपञ्चकसि
 भजते कृतकोपपञ्चकविवेकः । अत एव पञ्चकोपान् कुशल
 धियः संततं विचिन्वन्ति ॥ ७ ॥ अन्नप्राणमनोमयविज्ञानात्
 न्दपञ्चकोपाणाम् । एकैकान्तरभाजां भजति विवेकात्प्रकाश
 तामात्मा ॥ ८ ॥ वपुरिदमन्नमयाख्यः कोपो नात्मा जडो यः
 प्रायः । प्रागुत्पत्तेः पश्चात्तदलाभस्यापि दृश्यमानत्वात् ॥ ९ ॥
 कोपः प्राणमयोऽयं वायुविशेषो वपुष्यवच्छिन्नः । अस्य का
 मात्मता स्यात् क्षुत्तृष्णाभ्यामुपेयुषः पीडाम् ॥ १० ॥ कु
 वपुष्यहन्तां गेहादौ यः करोति ममतां च । रागद्वेषवियं
 नासावात्मा मनोमयः कोपः ॥ ११ ॥ सुप्तौ स्वयं विलीन
 बोधे व्याप्ता कलेवरं सकलम् । विज्ञानशब्दवाच्या चित्प्रा
 विम्बा न बुद्धिरप्यात्मा ॥ १२ ॥ सुप्तिगतैः सुखलेशैरभि
 नुते यः सुखी भवामीति । आनन्दकोपनामा सोहङ्कारः क
 भवेदात्मा ॥ १३ ॥ यः स्फुरति विम्बभूतः स भवेदान
 एव सकलात्मा । प्रागूर्ध्वमपि च सत्त्वादविकारित्वादवा
 मानत्वात् ॥ १४ ॥ अन्नमयादेरस्मादपरं यदि नानुभू
 किञ्चित् । अनुभवितान्नमयादेरस्तीत्यस्मिन्न कश्चिदपलापः ॥ १५ ॥
 स्वयमेवानुभवत्वाद्यद्यप्येतस्य नानुभाव्यत्वम् । सकृदप्यभाव
 द्वा न भवेद्बोधस्वरूपसत्तायाः ॥ १६ ॥ अनुभवति विश्वात्मा विवे

नासौ न चानुभूयते । न खलु प्रकाश्यतेऽसौ विश्वमशेषं प्रका-
 शयन् भानुः ॥ १७ ॥ तदिदं तादृशमीदृशमेतावत्तावदिति च
 यन्न भवेत् । ब्रह्म तदित्यवधेयं नो चेद्विषयो भवेत् परोक्षं च
 ॥ १८ ॥ इदमिदमिति प्रतीते वस्तुनि सर्वत्र बाध्यमानेऽपि ।
 अनिदमवाध्यं तत्त्वं सत्त्वादेतस्य न च परोक्षत्वम् ॥ १९ ॥
 नावेद्यमपि परोक्षं भवति ब्रह्म स्वयं प्रकाशत्वात् । सत्यं ज्ञान-
 मनन्तं ब्रह्मेत्येतस्य लक्षणं ग्रथते ॥ २० ॥ सति कोपशक्त्यु-
 पाधौ संभवतस्तस्य जीवतेश्वरते । नो चेत्तयोरभावाद्विगतवि-
 शेषं विभाति निजरूपम् ॥ २१ ॥ सति सकलदृश्यबाधे न
 किमप्यस्तीति लोकसिद्धं चेत् । यन्न किमपीति सिद्धं ब्रह्म
 तदेवेति वेदतः सिद्धम् ॥ २२ ॥ एवमपि विरहितानां तत्त्व-
 मसीत्यादिवाक्यचिन्तनया । प्रतिभात्येव परोक्षवदात्मा प्रत्यक्
 प्रकाशमानोऽपि ॥ २३ ॥ तस्मात्पदार्थशोधनपूर्वकवाक्यस्य
 चिन्तयन्नर्थम् । दैशिकदयाप्रभावादपरोक्षयति क्षणेन चात्मा-
 नम् ॥ २४ ॥ देहेन्द्रियादिधर्मानात्मन्यारोपयन्नभेदेन । कर्तृ-
 त्वाद्यभिमानी बोधः स्यात्त्वं पदस्य वाच्योऽर्थः ॥ २५ ॥ देहो
 हन्तेन्द्रियाणि साक्षी तेभ्यो विलक्षणत्वेन । प्रतिभाति योऽव-
 बोधः प्रोक्तोऽसौ त्वंपदस्य लक्ष्योऽर्थः ॥ २६ ॥ वेदावसान-
 वाचा संवेद्यं सकल जगदुपादानम् । सर्वज्ञताद्युपेतं चैतन्यं
 तत्पदस्य वाच्योर्थः ॥ २७ ॥ विविधोपाधिविमुक्तं विश्वातीतं
 विशुद्धमद्वैतम् । अक्षरमनुभववेद्यं चैतन्यं तत्पदस्य लक्ष्योऽर्थः
 ॥ २८ ॥ सामानाधिकरण्यं तदनुविशेषणविशेष्यता चेति ।
 अथ लक्ष्यलक्षकत्वं भवति पदार्थात्मनी चेति ॥ २९ ॥ एकत्र
 वृत्तिरर्थे शब्दानां भिन्नवृत्तिहेतूनाम् । सामानाधिकरण्यं भवती-

त्येवं वदन्ति लाक्षणिकाः ॥ ३० ॥ प्रत्यक्षपरोक्षत्वं परिपूर्णं
 सद्वितीयत्वम् । इतरेतरं विरुद्धं तदिह भवितव्यमेव लक्षणम्
 ॥ ३१ ॥ मानान्तरोपरोधे मुख्यार्थस्यापरिग्रहे जाते । मुख्य
 विनाकृतेऽर्थे या वृत्तिः सैव लक्षणा प्रोक्ता ॥ ३२ ॥ निश्चि
 मपि वाच्यमर्थं त्यक्त्वा वृत्तिस्तदन्वितेऽन्यार्थे । जहतीति लक्षण
 स्याद्भङ्गायां घोष इतिवदत्र ॥ ३३ ॥ वाच्यार्थमत्यजन्त्या यस्य
 वृत्तेः प्रवृत्तिरन्यार्थे । इयमजहतीति कथिता शोणो धावति
 वदत्र न ग्राह्या ॥ ३४ ॥ जहदजहतीति सा स्याद्या वाच्यार्थे
 कदेशमादाय । बोधयति चैकदेशं सोऽयं द्विज इतिवदाश्रये
 नाम् ॥ ३५ ॥ सोऽयं द्विज इति वाक्यं त्यक्त्वा परोक्षापरोक्ष
 देशाद्यम् । द्विजमात्रलक्षकत्वात् कथयत्यैक्यं पदार्थयोरुभयो
 ॥ ३६ ॥ तद्वत्तत्त्वमसीति त्यक्त्वा परोक्षापरोक्षतादीनि । चिद्वत्
 लक्षयित्वा बोधयति स्पष्टमसिपदेनैक्यम् ॥ ३७ ॥ इत्थं बोधि
 त्तमर्थं महता वाक्येन बोधितैक्येन । अहमित्यपरोक्षयतां वेदं
 वेदयति वातशोकत्वम् ॥ ३८ ॥ प्रायः प्रवर्तकत्वं विधिवर्चनं
 लोकवेदयोर्दृष्टम् । सिद्धं बोधयतोऽर्थं कथमेतद्भवति तत्त्वम
 स्यादेः ॥ ३९ ॥ विधिरेव न प्रवृत्तिं जनयत्यभिलपितवस्तुबोधो
 पि । राजा भवति सुतोऽभूदिति बोधेन प्रवर्तते लोकः ॥ ४० ॥
 ऐक्यपरैः श्रुतिवाक्यैरात्मा शश्वत्प्रकाशमानोऽपि । दैशिकदया
 विहीनैरपरोक्षयितुं न शक्यते पुरुषः ॥ ४१ ॥ विरहितकाम्य
 निषिद्धो विहितानुष्ठाननिर्मलस्वान्तः । भजति स्वयमेव बोध
 गुरुणा किमिति त्वया न मन्तव्यम् ॥ ४२ ॥ कर्मभिरेव
 बोधः प्रभवति गुरुणा विना दयानिधिना । आचार्यवाक्य
 पुरुषो वेदेत्यर्थस्य वेदसिद्धत्वात् ॥ ४३ ॥ वेदोऽज्ञादितया व

यद्वा परमेश्वर प्रणीततया । भवति परमं प्रमाणं बोधो नास्ति
 स्वतश्च परतो वा ॥ ४४ ॥ नापेक्षते यदन्यद्यदपेक्षन्तेऽखिलानि
 मानानि । वाक्यं तन्निगमानां मानं ब्रह्माद्यतीन्द्रियावगतौ ॥
 ॥ ४५ ॥ मानं प्रबोधयन्तं बोधं मानेन ये बुभुत्सन्ते । एधो-
 भिरेव दहनं दग्धुं वाञ्छन्ति ते महात्मानः ॥ ४६ ॥ वेदो-
 ऽनादिरमुष्य व्यञ्जक ईशः स्वयं प्रकाशात्मा । तदभिव्यक्तिमु-
 दीक्ष्य प्रोक्तोऽसौ सूरिभिः प्रमाणमिति ॥ ४७ ॥ रूपाणामव-
 लोके चक्षुरिवान्यन्न कारणं दृष्टम् । तद्वददृष्टावगतौ वेदवदन्यो
 न वेद को हेतुः ॥ ४८ ॥ निगमेषु निश्चितार्थं तन्त्रेषु कश्चि-
 दपि प्रकाशयति । तदिदमनुवादमात्रं प्रामाण्यं तस्य सिद्ध्यति
 न किञ्चित् ॥ ४९ ॥ अंशद्वयवति निगमे साधयति वै तमेक
 एवांशः । अद्वैतमेव वस्तु प्रतिपादयति प्रसिद्धमपरोऽंशः
 ॥ ५० ॥ अद्वैतमेव सत्यं तस्मिन् द्वैतं ह्यसत्यमध्य-
 स्तम् । रजतमिव शुक्तिकायां मृगतृष्णायामिवोदकस्फुरणम्
 ॥ ५१ ॥ आरोपितं यदि स्यादद्वैतं वस्त्ववस्तुनि द्वैते । युक्तं
 नैव तदा स्यात्सत्येऽध्यासो भवत्यसत्यानाम् ॥ ५२ ॥ यद्या-
 रोपणमुभयोस्तद्व्यतिरिक्तस्य कस्यचिद्भावः । आरोपणं न शून्ये
 तस्मादद्वैतसत्यता ग्राह्या ॥ ५३ ॥ प्रत्यक्षाद्यनवगतं श्रुत्या
 प्रतिपादनीयमद्वैतम् । द्वैतं न प्रतिपाद्यं तस्य स्वयमेव लोकसि-
 द्धत्वात् ॥ ५४ ॥ अद्वैतं सुखरूपं दुःसहदुःखं सदा भवेद्वैतम् ।
 यत्र प्रयोजनं स्यात्प्रतिपादयति श्रुतिस्तदेवासौ ॥ ५५ ॥ निग-
 मगिरा प्रतिपाद्यं वस्तु यदानन्दरूपमद्वैतम् । स्वाभाविकं
 स्वरूपं जीवत्वं तस्य केचन ब्रुवते ॥ ५६ ॥ स्वाभाविकं यदि
 स्याज्जीवत्वं तस्य विशदविज्ञप्तेः । सकृदपि न तद्विनाशं गच्छे-

दुष्णप्रकाशवद्भेदः ॥ ५७ ॥ यद्वदयो रसविद्ध काञ्चनतां या
 तद्वदेवासौ । जीवः साधनशक्त्या परतां यातीति केचिदिच
 न्ति ॥ ५८ ॥ तदिदं भवति न युक्तं गतवति तस्मिंश्चि
 रसवीर्ये । प्रतिपद्यते प्रणाशं हैमो वर्णोऽप्ययःसमारूढः ॥ ५९ ॥
 जीवत्वमपि तथेदं बहुविधसुखदुःखलक्षणोपेतम् । गति
 साधनशक्त्या प्रतिभात्येव प्रयाति न विनाशम् ॥ ६० ॥ त
 त्स्वतो यदि स्याज्जीवः सततं स एव जीवः स्यात् । एवं च
 परमात्मा परमात्मैवायमिति भवेद्युक्तम् ॥ ६१ ॥ यदि वा प
 साम्यं जीवश्चेद्भजति साधनबलेन । कालेन तदपि कि
 नश्यत्येवेति निश्चितं सकलैः ॥ ६२ ॥ तस्मात्परं स्वकीयं
 मोहात्मकं च संसारम् । स्वज्ञानेन जहित्वा पूर्णः स्वयं
 शिष्यते नान्यत् ॥ ६३ ॥ सत्यज्ञानानन्दं प्रकृतं परमात्म
 मदैतम् । अवबोधयन्ति निखिलाः श्रुतयः स्मृतिभिः समं
 स्ताभिः ॥ ६४ ॥ एकत्वबोधकानां निखिलानां निगमवा
 जालानाम् । वाक्यान्तराणि सकलान्यभिधायन्ते स शेष
 तानि ॥ ६५ ॥ यस्मिन्मिहिरवदुदिते तिमिरवदपयान्ति क
 तादीनि । ज्ञानं विरहितभेदं कथमेतद्भवति तत्त्वमस्या
 ॥ ६६ ॥ कर्मप्रकरणनिष्ठं ज्ञानं कर्माङ्गमिष्यते प्राज्ञैः । मि
 प्रकरणभाजः कर्माङ्गत्वं कथं भवेज्ज्ञप्तेः ॥ ६७ ॥ अधिका
 विषयभेदौ कर्मज्ञानात्मकावुभौ काण्डौ । एवं सति कथमन
 रङ्गाङ्गित्वं परस्परं घटते ॥ ६८ ॥ ज्ञानं कर्मणि न स्याज्ज्ञ
 कर्मेदमपि तथा न स्यात् । कथमनयोरुभयोस्तत्तपनतमोव
 मुच्चयो घटते ॥ ६९ ॥ तस्मान्मोहनिवृत्तौ ज्ञानं न सहायक
 दर्शयते । यद्वद्वनतरतिमिरप्रकरणविध्वंसने सहसाङ्गः ॥ ७० ॥

ज्ञानं तदेवममलं साक्षी विश्वस्य भवति परमात्मा । संबध्यते
न धर्मैः साक्षी तैरेव सच्चिदानन्दः ॥ ७१ ॥ रज्ज्वादेरुत्तरगाद्यैः
संबन्धस्तस्य दृश्यसंबन्धः । सततमसंगोऽहमिति श्रुतिरप्यमुम-
र्थमेव साधयति ॥ ७२ ॥ कर्तृ च कर्म यस्य स्फुरति ब्रह्मैव तत्र
जानाति । यस्य न कर्तृ न कर्म स्फुटतरमयमेव वेदितुं क्रमते
॥ ७३ ॥ कर्तृत्वादिकमेतन्मायाशक्त्या प्रतीयते निखिलम् ।
इति केचिदाहुरेषा भ्रान्तिर्ब्रह्मातिरेकतो नान्यत् ॥ ७४ ॥
तस्मिन् ब्रह्मणि विदिते विश्वमशेषं भवेदिदं विदितम् । कारण-
मृदि विदितायां घटकरकाद्या यथाऽवगम्यन्ते ॥ ७५ ॥ तदिदं
कारणमेकं विगतविशेषं विशुद्धचिद्रूपम् । तस्मात्सदेकरूपान्मा-
योपहितादभूदशेषमिदम् ॥ ७६ ॥ कारणमसदिति केचित् कथ-
यन्त्यसतो भवेन्न कारणता । अङ्कुरजननी शक्तिः सति खलु
बीजे समीक्ष्यते सकलैः ॥ ७७ ॥ कारणमसदिति कथयन्
बन्ध्यापुत्रेण निर्वहेत्कार्यम् । किञ्च मृगतृष्णिकाम्भः पीत्वो-
दन्यां महीयसीं शमयेत् ॥ ७८ ॥ यस्मान्न सोयमसतो वादः
संभवति शास्त्रयुक्तिभ्याम् । यस्मात्सदेव तत्त्वं सर्वेषां कारणं
भवति जगताम् ॥ ७९ ॥ जगदाकारतयाऽपि ग्रथते गुरुशिष्य-
विग्रहतयापि । ब्रह्माद्याकारतयापि प्रतिभातीदं परात्परं तत्त्वम्
॥ ८० ॥ सत्यं जगदिति भानं संसृतये स्यादपक्वचित्तानाम् ।
तस्मादसत्यमेतन्निखिलं प्रतिपादयन्ति निगमान्ताः ॥ ८१ ॥
परिपक्वमानसानां पुरुषवराणां पुरातनैः सुकृतैः । ब्रह्मैवेदं सर्वं
जगदिति भूयः प्रबोधयत्येषः ॥ ८२ ॥ अनवगतकाञ्चनानां
भूषणधीरेव भूषणे हैमे । एवमविवेकभाजां जगति जनानां न
तालिकी धिपणा ॥ ८३ ॥ अहमालम्बनसिद्धं कस्य परोक्षं भवे-

दिदं ब्रह्म । तदपि विचारविहीनैरपरोक्षयितुं न शक्यते ॥ ८४ ॥ अहमिदमिति च मतिभ्यां सततं व्यवहरति सर्व-
 कोऽपि । प्रथमा प्रतीचि चरमा निवसति वपुरिन्द्रियादि-
 ह्यर्थे ॥ ८५ ॥ वपुरिन्द्रियादिविषयाऽहंबुद्धिश्चेन्महत्-
 भ्रान्तिः । अतस्मिंस्तद्बुद्धिरित्यध्यासेन शास्यमानत्वात् ॥ ८६ ॥
 तस्मादशेषसाक्षी परमात्मैवाहमर्थ इत्युचितम् । अजड-
 जडोयं सत्संबन्धान्नवत्यहंकारः ॥ ८७ ॥ तस्मात् सर्व-
 ष्वहमहमित्येव भासते स्पष्टः । यः प्रत्ययो विशुद्धस्तस्य-
 भवति मुख्यार्थः ॥ ८८ ॥ गोशब्दादिव गोत्वं तदपि-
 प्रतीयतेऽर्थतया । अहमर्थः परमात्मा तद्वद्भ्रान्त्या भवत्यलं-
 ॥ ८९ ॥ दग्धत्वादिकमयसः पावकसंगेन भासते यद्वत् ।
 चेतनसंगादहमिति प्रतिभाति कर्तृतादीनि ॥ ९० ॥ देह-
 यादिदृश्यव्यतिरिक्तं निर्मलमतुलमद्वैतम् । अहमर्थमिति-
 त्वा तद्व्यतिरिक्तं न कल्पयेदन्यत् ॥ ९१ ॥ यद्वत्सुखदुःख-
 मनुभवभेदाद्विचित्रता देहे । तद्वदिह सत्यभेदेऽप्यनुभववैचित्र्य-
 त्मनामेवाम् ॥ ९२ ॥ किमिदं किमस्य रूपं कथमेतदभूदमु-
 हेतुः । इति न कदापि विचिन्त्यं चिन्त्यं मायेति धीमता-
 ॥ ९३ ॥ दन्तिनि दारुविकारे दारु तिरोभवति सोऽपि त-
 जगति तथा परमात्मा परमात्मन्यपि जगत्तिरोधत्ते ॥ ९४ ॥
 आत्ममये महति पटे विविधजगच्चित्रमात्मना लिखितम् ।
 मेव केवलमसौ पश्यन्प्रमुदं प्रयाति परमात्मा ॥ ९५ ॥
 न्मात्रममलमक्षयमद्वयमानंदमनुभवारूढम् । ब्रह्मैवास्ति तद-
 किंचिदस्तीति निश्चयो विदुषाम् ॥ ९६ ॥ व्यवहारस्य
 विद्याविद्येति वेदपरिभाषा । नास्त्येव तत्त्वदृष्ट्या तत्त्वं

नान्यदस्त्यस्मात् ॥ ९७ ॥ अस्त्यन्यदिति मतं चेत्तदपि ब्रह्मैव
चास्तितारूपम् । व्यतिरिक्तमस्तिताया नास्तितया शून्यमेव
तत्सिद्धम् ॥ ९८ ॥ तत्त्वावबोधशक्त्या स्थिरताया चाधितापि
सा माया । आदेहपातमेयामाभात्यात्माप्ययं निजो विदुषाम्
॥ ९९ ॥ एष विशेषो विदुषां पश्यन्तोऽपि प्रपञ्चसंसारम् ।
पृथगात्मनो न किञ्चित्पश्येयुः सकलनिगमनिर्णीतात् ॥ १०० ॥
किं चिन्त्यं किमचिन्त्यं किं कथनीयं किमप्यकथनीयम् । किं
कृत्यं किमकृत्यं निखिलं तदिति जानतां विदुषाम् ॥ १०१ ॥
निखिलं दृश्यविशेषं दृग्रूपत्वेन पश्यतां विदुषाम् । बन्धो नापि
न मुक्तिर्न च परमात्मत्वमपि न जीवत्वम् ॥ १०२ ॥ असकृ-
दनुचिन्तितानामव्याहततरनिजोपदेशानाम् । ग्रामाण्यं परसी-
म्नां निगमनमिदमेव निखिलनिगमानाम् ॥ १०३ ॥ इत्थं
निबोध्य गुरुणा शिष्यो हृष्यन्प्रणम्य तं पदयोः । स्वानुभ-
वसिद्धमर्थं स्वयमेवान्तर्विचारयामास ॥ १०४ ॥ अजरोहम-
श्चरोहं प्राज्ञोहं प्रत्यगात्मबोधोहम् । परमानन्दमयोहं परमशि-
वोहं भवामि परिपूर्णः ॥ १०५ ॥ आद्योहमात्मभाजामात्मा-
नन्दानुभूतिरसिकोहम् । आचालगोपमखिलैरयमित्यनुभूयमा-
नविभवोऽहम् ॥ १०६ ॥ इन्द्रियसुखविमुखोहं निजसुखबो-
धानुभूतिरहितोहम् । इति मतिदूरतरोहं भावेतरसुखितचित्तो-
हम् ॥ १०७ ॥ ईशोहमीश्वराणामीर्ष्याद्वेषानुपङ्गरहितोहम् ।
ईक्षणविषयमतीनामीप्सितपुरुषार्थसाधनपरोहम् ॥ १०८ ॥
उदयोहमेव जगतामुपनिषदुद्यानकृतविहारोहम् । उद्वेलशोक-
सागरवाडवहुतवाहनार्चिरहम् ॥ १०९ ॥ ऊर्जस्वलनिजविभवै-
रूर्ध्वमधस्तिर्यग्भुवानोहम् । ऊहापोहविचारैरुररीकृतवत्प्रतीय-

मानोहम् ॥११०॥ ऋषिरहमृषिगणोहं सृष्टिरहं सृज्यमानोहं
 हम् । ऋद्धिरहं वृद्धिरहं वृत्तिरहं वृत्तिदीपदीप्तिरहम् ॥१११॥ ए
 हमेतदीदृशमेवमिति स्फुरितभेदरहितोहम् । यष्टव्योहमनी
 न्तःसुकृतानुभूतिरहितोहम् ॥११२॥ ऐक्यावभासकोऽहं वा
 परिज्ञानपावनमतीनाम् । ऐशमहमेव तत्त्वं नैशतमः प्रायमोह
 हिरोहम् ॥११३॥ ओजोहमौपधीनामोतप्रोतायमानविभवो
 ओङ्कारसारसोल्लसदात्मसुखामोदमत्तभृङ्गोहम् ॥ ११४ ॥
 पधमहमशुभानामौपाधिकधर्मजालरहितोहम् । औदार्या
 योहं चित्तविविधचतुर्वर्गतरणपरोहम् ॥ ११५ ॥ अङ्कुश
 खिलानां महत्तया मत्तवारणेन्द्राणाम् । अम्बरमिव विमल
 शम्बररिपुजातविकृतिरहितोहम् ॥ ११६ ॥ आत्मविक
 तीनामस्खलदुपदेशगम्यमानोऽहम् । अस्थिरसुखविमुक्त
 सुस्थिरसुखबोधसंपदुचितोहम् ॥ ११७ ॥ करुणारसम
 कवलितकमलासनादिलोकोहम् । कलुपाहङ्कारविलक्षणोहं क
 पसुकृतोपलेशरहितोहम् ॥ ११८ ॥ खानामगोचरोहं ख
 तोहं खपुष्पभवगोहम् । खलजनदुरासदोहं खण्डज्ञानाप
 नपरोहम् ॥ ११९ ॥ गलितद्वैतकथोहं देही भवदखिल
 दयोहम् । गन्तव्योहमनीर्हर्गत्या गतिरहितपूर्णबोधोहम् ॥१२०॥
 घनतरमोहतिमिरग्रकरग्रध्वंसभानुनिकरोहम् । घटिकावा
 जनीसंवत्सरयुगकल्पकालभेदोहम् ॥ १२१ ॥ चरदचरा
 कोहं चतुरमतिश्लाघ्यचरितोहम् । चपलजनदुर्गमोहं चल
 जलधिपारदेशोहम् ॥ १२२ ॥ छन्दःसिन्धुनिगूढज्ञानसुख
 दमोदमानोहम् । छलपदविहतमतीनां छन्नोहं शान्तिमार्ग
 हम् ॥ १२३ ॥ जलजासनादिगोचरपञ्चमहाभूतमूलभूतो

जगदानन्दकरोहं जन्मजरारोगमरणरहितोहम् ॥ १२४ ॥ उंकृति-
हुंकृतिसिञ्जितवृंहितमुखविविधनादभेदोहम् । झटिति घटि-
तात्मवेदनदीपपरिस्फुरितहृदयभवनोहम् ॥ १२५ ॥ ज्ञानमहं
ज्ञेयमहं ज्ञाताहं ज्ञानसाधनगणोहम् । ज्ञातृज्ञानविनाकृतमस्ति-
त्वमेवाहम् ॥ १२६ ॥ तच्चातीतपदोहं तदन्तरोऽस्मीति भाव-
रहितोहम् । तामसदुरधिगमोहं तत्त्वंपदबोध्यहृदयोहम्
॥ १२७ ॥ दैवतदैत्यनिशाचरमानवतिर्यङ्महीधरादिरहम् ।
देहेन्द्रियरहितोहं दक्षिणपूर्वादिदिग्विभागोहम् ॥ १२८ ॥ धर्मा-
धर्ममयोहं धर्माधर्मादिवन्धरहितोहम् । धार्मिकजनसुलभोऽहं
धन्योहं धातुरादिभूतोहम् ॥ १२९ ॥ वामादिविरहितोहं नर-
कस्वर्गापवर्गरहितोहम् । नादान्तरविदितोहं नानाविश्वनिखि-
लागमसारोहम् ॥ १३० ॥ परजीवभेदबाधकपरमार्थज्ञानशु-
द्धचित्तोहम् । प्रकृतिरहं विकृतिरहं परिणतिरहमस्मि भागधेया-
नाम् ॥ १३१ ॥ फणधरभूधरवारणविग्रहविधृतप्रपञ्चसारोहम् ।
भालतलोहितलोचनपावकपरिभूतपञ्चबाणोहम् ॥ १३२ ॥ बद्धो
भवामि नाहं बन्धान्मुक्तस्तथापि नैवाहम् । बोध्यो भवामि
नाहं बोधोहं नैव बोधको नाहम् ॥ १३३ ॥ भक्तिरहं भजनमहं
मुक्तिरहं मुक्तियुक्तिरहमेव । भूतानुशासनोहं भूतभवद्भावमूलभू-
तोहम् ॥ १३४ ॥ मान्योहमस्मि महतां मन्दमतीनाममाननी-
योहम् । मदरागमानमोहितमानसदुर्वासनादुरापोहम् ॥ १३५ ॥
यजनयजमानयाजकयागमयोहं यमादिरहितोहम् । इन्द्रयमव-
रुणयक्षराक्षसमरुदीशवह्निरूपोहम् ॥ १३६ ॥ रक्षाविधानशि-
क्षावीक्षितलीलावलोकमहिमाहम् । रजनीदिवसविरामस्फुर-
दनुभूतिप्रमाणसिद्धोहम् ॥ १३७ ॥ लक्षणलक्ष्यमयोहं लाक्ष-

णिकोहं लयादिरहितोहम् । लाभालाभमयोहं लब्धव्याना
 भ्यमानोहम् ॥ १३८ ॥ वर्णाश्रमरहितोहं वर्णमयोहं वरे
 ण्योहम् । वाचामगोचरोहं वचसामर्थे पदे निविष्टोहम् ॥ १३९ ॥
 शमदमविरहितमनसां शास्त्रशतैरप्यगम्यमानोहम् । शरण
 मेव विदुषां शकलीकृतविविधसंशयगणोहम् ॥ १४० ॥
 भावविरहितोहं पद्मगुणरहितोहमहितरहितोहम् । पद्मको
 रहितोहं पद्मत्रिशत्तत्त्वजालरहितोहम् ॥ १४१ ॥ संवित्
 त्मकोहं समाधिसंकल्पकल्पवृक्षोहम् । संसारविरहितोहं सा
 त्कारोहमात्मविद्यायाः ॥ १४२ ॥ हव्यमहं कव्यमहं हेयो
 देयभावश्चन्योहम् । हरिरहमस्मि हरोऽहं विधिरहमेवास्मि क
 तेपाम् ॥ १४३ ॥ क्षालितकलुषमयोहं क्षपितभवक्लेशजाल
 हम् । क्षान्ताद्यक्षरसहितो विविधव्यवहारमूलमेवाहम् ॥ १४४ ॥
 बहुभिः किमेभिरुक्तैरहमेवेदं चराचरं विश्वम् । सीकरफे
 ज्ञाः सिन्धोरपराणि न खलु वस्तूनि ॥ १४५ ॥ शरणं
 मम जननी न पिता न सुता न सोदरा नान्ये । परमं क
 मिदमेव चरणं मम मूर्ध्नि दैशिकन्यस्तम् ॥ १४६ ॥
 दैशिकचरणं निरवधिरास्ते तदीक्षणे करुणा ।
 किमपि यदुक्तं किमतः परमस्ति जन्मसाफल्यम् ॥ १४७ ॥
 हिमकरकरसारसान्द्राः काङ्क्षितवरदानकल्पविशेषाः । श्रीगु
 रणकटाक्षाः शिशिराः शमयन्ति चित्तसन्तापम् ॥ १४८ ॥
 कवलितचञ्चलचेतो गुरुतरमणूकजातपरितोष्मा । शेते हृदय
 हायां चिरतरमेकैव चिन्मयी भुजङ्गी ॥ १४९ ॥ मयि
 बोधपयोधौ महति ब्रह्माण्डबुद्बुदसहस्रम् । मायाविशेषशक्ति
 भूत्वा भूत्वा पुनस्तिरोधत्ते ॥ १५० ॥ गुरुकृपयैव मुन

प्राक्तनभाग्यप्रवृद्धमारुतया । दुःसहदुःखतरङ्गस्तुङ्गः संसार-
सागरस्तीर्णः ॥ १५१ ॥ सति तमसि मोहरूपे विश्वमपश्यं
तदेतदित्यखिलम् । उदितवति बोधभानौ किमपि न पश्यामि
किं त्विदं चित्रम् ॥ १५२ ॥ नाहं नमामि देवान्देवानतीत्य न
सेवते देवम् । न तदनुकरोति विधानं तस्मै यतते नमो नमो
मह्यम् ॥ १५३ ॥ इत्यात्मबोधलाभं मुहुर्मुहुर्नुचिन्त्य मोद-
मानेन । प्रारब्धकर्मणोन्ते परं पदं प्राप्यतेस्व कैवल्यम् ॥ १५४ ॥
मोहान्धकारहरणं संसारोद्वेलसागरोत्तरणम् । स्वात्मनिरूपण-
मेतत्प्रकरणमकृत दक्षिणामूर्तिः ॥ १५५ ॥ अज्ञानान्ध्यवि-
हन्ता विरचितविज्ञानपङ्कजोल्लासः । मानसगगनतलं मे भास-
यति श्रीनिवासगुरुभानुः ॥ १५६ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरि-
व्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यविरचितं स्वात्मनिरूपणं संपू-
र्णम् ॥ २९ ॥

शतश्लोकी ॥ ३० ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ दृष्टान्तो नैव दृष्टस्त्रिभुवनजठरे सद्गुरो-
र्ज्ञानदातुः स्पर्शश्चेत्तत्र कल्प्यः स नयति यदहो स्वर्णताम-
श्मसारम् । न स्पर्शत्वं तथापि श्रितचरणयुगे सद्गुरुः स्वीय-
शिष्ये स्वीयं साम्यं विधत्ते भवति निरुपमस्तेन वा लौकि-
कोपि ॥ १ ॥ यद्वच्छ्रीखण्डवृक्षप्रसृतपरिमलेनाभितोऽन्येपि
वृक्षाः शश्वत्सौगंध्यभाजोप्यतनुतनुमृतां तापमुन्मूलयन्ति ।
आचार्याल्लब्धबोधा अपि विधिवशतः सन्निधौ संस्थितानां
त्रेधा तापं च पापं सकरुणहृदयाः श्लोक्तिभिः क्षालयन्ति ॥ २ ॥
आत्मानात्मप्रतीतिः प्रथममभिहिता सत्यमिथ्यात्वयोगात् द्वेधा

ब्रह्मप्रतीतिर्निगमनिगदिता खानुभूत्योपपत्त्या । आद्या दे
 नुबंधाद्भवति तदपरा सा च सर्वात्मकत्वादादौ ब्रह्माहम
 त्यनुभव उदिते खल्विदं ब्रह्म पश्चात् ॥ ३ ॥ आत्मा चि
 त्सुखात्मानुभवपरिचितः सर्वदेहादियंता सत्येवं मूढजु
 र्भजति ननु जनोऽनित्यदेहात्मबुद्धिम् । बाह्येस्थित्वायुमज
 लरुधिरवसाचर्ममेदोयुगंतविष्णुमूत्रश्लेष्मपूर्णं स्वपरवपुरहो सं
 दित्वापि भूयः ॥ ४ ॥ देहस्त्रीपुत्रमित्रानुचरहयवृषास्तोषं
 र्मेमेत्थं सर्वे स्वायुर्नयन्ति प्रथितमलममी मांसमीमांसये
 एते जीवंति येन व्यवहृतिपटवो येन सौभाग्यभाजस्तं प्रा
 थीशमंतर्गतममृतममुं नैव मीमांसयन्ति ॥ ५ ॥ कश्चित्की
 कथंचित्पटुमतिरभितः कंटकानां कुटीरं कुर्वस्तेनैव स
 व्यवहृतिविधये चेष्टते यावदायुः । तद्वज्जीवोपि नानाचरित
 शुदितैः कर्मभिः स्थूलदेहं निर्मायात्रैव तिष्ठन्ननुदिनमप
 साकमभ्येति भूमौ ॥ ६ ॥ स्त्रीकुर्वन् व्याघ्रवेपं स्वजठरमु
 भीषयन्त्यश्च मुग्धान् मत्ता व्याघ्रोहमित्थं स नरपशुमु
 चाघते किंनु सत्त्वान् । मत्ता स्त्रीवेपधारी रुयहमिति कु
 किं नटो भर्तुरिच्छां तद्वच्छारीर आत्मा पृथगनुभवतो दे
 यः स साक्षी ॥ ७ ॥ स्वं बालं रोदमानं चिरतरसमयं शो
 मानेतुमग्रे द्राक्षं स्वार्जूरमाग्रं सुकदलमथवा योजयत्यंवि
 स्य । तद्वच्चेतोतिमूढं बहुजननभवान्मौढ्यसंस्कारयोगाद्बोधोप
 रनेकैरवशमुपनिपद्बोधयामास सम्यक् ॥ ८ ॥ यत्प्रीत्या प्री
 पात्रं तनुयुवतितनूजार्थमुख्यं स तस्मात्प्रेयानात्माथ शोका
 दमितरदतः प्रेय एतत्कथं स्यात् । भार्याद्यं जीवितार्थी वि
 रति च वपुः स्वात्मनः श्रेय इच्छंस्तस्मादात्मानमेव प्रियम्

कमुपासीत विद्वान्न चान्यत् ॥ ९ ॥ यस्माद्यावत्प्रियं स्यादिह
 हि विषयतस्तावदस्मिन्प्रियत्वं यावद्दुःखं च यस्माद्भवति खलु
 ततस्तावदेवाप्रियत्वम् । नैकस्मिन्सर्वकालेस्त्युभयमपि कदाप्य-
 प्रियोपि प्रियः स्यात्प्रेयानप्यप्रियो वा सततमपि यतः प्रेय आ-
 त्माख्यवस्तु ॥ १० ॥ श्रेयः प्रेयश्च लोके द्विविधमभिहितं काम्य-
 मात्यंतिकं च काम्यं दुःखैकबीजं क्षणलवधिरसं तच्चिकीर्षति
 मंदाः । ब्रह्मैवात्यंतिकं यन्निरतिशयसुखस्यास्पदं संश्रयंते
 तत्त्वज्ञास्तच्च काठोपनिषदभिहितं पद्धिधायां च बल्याम् ॥ ११ ॥
 आत्मांभोधेस्तरंगोस्म्यहमिति गमने भावयन्नासनस्थः संवि-
 त्मूत्रानुविद्धो मणिरहमिति वा चेंद्रियार्थप्रतीतौ । हृष्टोस्म्या-
 त्मावलोकादिति शयनविधौ मग्न आनंदसिंघावंतर्निष्ठो मुमुक्षुः
 स खलु तनुभृतां यो नयत्येवमायुः ॥ १२ ॥ वैराजव्यष्टिरूपं
 जगदखिलमिदं नामरूपात्मकं स्यादंतःस्थप्राणमुख्यात्प्रचलति
 च पुनर्वेत्ति सर्वान्पदार्थान् । नायं कर्ता न भोक्ता सवितृ-
 वदिति यो ज्ञानविज्ञानपूर्णः साक्षादित्थं विज्ञानन्व्यवहरति
 परात्मानुसंधानपूर्वम् ॥ १३ ॥ नैर्वेद्यं ज्ञानगर्भं द्विविधमभि-
 हितं तत्र वैराग्यमाद्यं । प्रायो दुःखावलोकाद्भवति गृहसुहृत्पु-
 त्रवित्तैपणादेः । अन्यज्ज्ञानोपदेशाद्यदुदितविषये वांतवद्वेयता
 स्यात्प्रव्रज्यापि द्विधा स्यान्नियमितमनसां देहतो गेहतश्च ॥ १४ ॥
 यः कश्चित्सौख्यहेतोस्त्रिजगति यतते नैव दुःखस्य हेतोर्देहेहंता
 तदुत्था स्वविषयममता चेति दुःखास्पदे द्वे । जानन्नोगाभि-
 धाताद्यनुभवति यतो नित्यदेहात्मबुद्धिर्भार्यापुत्रार्थनाशे विपद-
 मथ परामेति नारातिनाशे ॥ १५ ॥ तिष्ठन्गेहे गृहेशोप्यति-
 थिरिव निजं धाम गंतुं चिकीर्षुर्गेहस्थं दुःखसौख्यं न भजति

सहसा निर्ममत्वाभिमानः । आयात्रायास्यतीदं जलदपटलवधा-
यास्यत्यवश्यं देहाद्यं सर्वमेव प्रविदितविषयो यच्च तिष्ठत-
यत्नः ॥ १६ ॥ शक्त्या निर्मोक्तः स्वाद्बहिरहिरिव यः प्रव्र-
न्धीयगेहाच्छायां मार्गद्रुमोत्थां पथिक इव मनाक्संश्रयेदे-
संस्थाम् । क्षुत्पर्याप्तं तरुभ्यः पतितफलमयं प्रार्थयेद्भक्ष्यमा-
खात्मारामं प्रवेष्टुं स खलु सुखमयं प्रव्रजेद्देहतोपि ॥ १७ ॥
कामो बुद्धानुदेति प्रथममिह मनस्युद्दिशत्यर्थजातं तद्ब्रह्मार्तं
द्रियास्यैस्तदनधिगमतः क्रोध आविर्भवेच्च । प्राप्तवर्थस्य सं-
क्षणमतिरुदितो लोभ एतन्नयं स्यात्सर्वेषां पातहेतुस्तदिह मति-
मता त्याज्यमध्यात्मयोगात् ॥ १८ ॥ दानं ब्रह्मार्पणं यत्किञ्च-
इह नृभिः स्यात्क्षमाक्रोधसंज्ञा श्रद्धास्तिक्यं च सत्यं सदि-
परमतः सेतुसंज्ञं चतुष्कम् । तत्स्याद्ब्रंधाय जंतोरिति चतु-
श्मानन्दानपूर्वैश्चतुर्भिस्तीर्त्वा श्रेयोमृतं च श्रयत इह न-
स्वर्गतिं ज्योतिराप्तिम् ॥ १९ ॥ अन्नं देवातिथिभ्योर्पितम-
तमिदं चान्यथा मोघमन्नं यथात्मार्थं विधत्ते तदिह निगदि-
मृत्युरूपं हि तस्य । लोकेसौ केवलाद्यो भवति तनुभृतां के-
लादी च यः स्यात्त्यक्त्वा प्राणाग्निहोत्रं विधिवदनुदिनं योज-
ते सोपि मर्त्यः ॥ २० ॥ लोके भोजः स एवार्पयति गृहगताया-
र्थिनेन कृशाय यस्तस्मै पूर्णमन्नं भवति मखविधौ जायतेज्जात-
शत्रुः । सख्यै नानार्थिने योर्पयति न स सखा सेवमाना-
नित्यं संसक्तायान्नमस्माद्विमुख इव परावृत्तिमिच्छेत्कदर्या-
॥ २१ ॥ स्वाज्ञानज्ञानहेतु जगदुदयलयौ सर्वसाधारणौ लो-
जीवेष्वास्यर्णगर्भं श्रुतय इति जगुर्ह्यते स्वप्रबोधे । विश्वं ब्रह्म-
प्यबोधे जगति पुनरिदं ह्यते ब्रह्म तद्वच्छक्तौ सौम्यं च सौम्यं

धिकरणमथवा ह्यतेन्योन्यमोहात् ॥ २२ ॥ तुच्छत्वान्नासदा-
सीद्गगनकुसुमवज्जदकं नो सदासीत् किंवाभ्यामन्यदासीच्च-
ब्रह्मतिगतिसन्नास लोकस्तदानीम् ॥ किंत्वर्गिव शुक्तौ रजतवद-
परो नो विराड्व्योमपूर्वः शर्मण्यात्मन्यथैतत्कुहकसलिलवत्किं
भवेदावरीवः ॥ २३ ॥ बंधो जन्मात्ययात्मा यदि न पुनरभू-
त्तर्हि मोक्षोपि नासीद्यद्वात्रिदिनं वा न भवति तरणौ किंतु
हृद्दोष एषः । अप्राणं शुद्धमेकं समभवदथ तन्मायया कर्तु-
संज्ञं तस्मादन्यच्च नासीत्परिवृतमजया जीवभूतं तदेव
॥ २४ ॥ प्रागासीद्भावरूपं तम इति तमसा गूढमस्मादतर्क्य
क्षीरांतर्यद्भदंभोजनिरिह जगतो नामरूपात्मकस्य । कामाद्वातुः
सिद्धक्षोरनुगतजगतः कर्मभिः संप्रवृत्ताद्रेतोरूपैर्मनोभिः प्रथम-
मनुगतैः संततैः कार्यमाणैः ॥ २५ ॥ चत्वारोऽस्याः कपर्दा
युवतिरथ भवेन्नूतना नित्यमेषा माया वा पेशला स्यादघट-
नघटनापाटवं याति यस्मात् । स्यादारंभे घृतास्या श्रुतिभव-
वयुनान्येवमाच्छादयन्ती तस्यामेतौ सुपर्णाविव परपुरुषौ
तिष्ठतोर्यप्रतीत्या ॥ २६ ॥ एकस्तत्रास्त्यसंगस्तदनु तदपरो-
ज्ञानसिंधुं प्रविष्टो विस्मृत्यात्मस्वरूपं स विविधजगदाकारमा-
भासमैक्षत् । बुद्ध्यांतर्यावदैक्षद्विष्टजति तमजा सोपि तामेवमे-
कस्तावद्विप्रास्तमेकं कथमपि बहुधा कल्पयन्ति स्ववाग्भिः ॥ २७ ॥
नायाति प्रत्यगात्मा प्रजननसमये नैव यात्यंतकाले यत्सोखंडो-
स्ति लैंगं मन इह विशति प्रव्रजत्यूर्ध्वमर्वाक् । तत्काश्यं वा
स्थूलतां न भजति वपुषः किंतु संस्कारजातैस्तेजोमात्रा गृहीत्वा
व्रजति पुनरिहायाति तैस्तैः सहैव ॥ २८ ॥ आसीत्पूर्वं सुबंधु-
र्भृशमवनिसुरो यः पुरोधाः सनातेर्ब्राह्म्यात्कूटाभिचारात्स खलु-

मृतिमितस्तन्मनोगात्कृतांतम् । तद्वाता श्रौतमंत्रैः पुनरनयदिति
 ग्राह मृक्तेन वेदस्तस्मादात्माभियुक्तं व्रजति ननु मनः कर्हिनि
 चांतरात्मा ॥ २९ ॥ एको निष्कंप आत्मा प्रचलति मनसा धाव
 मानेन तस्मिंस्तिष्ठन्नप्रेथ पश्चान्न हि तमनुगतं जानते चक्षु
 राद्याः । यद्वत्पाथस्तरंगैः प्रचलति परितो धावमानैस्तदंत
 ग्राक्पश्चादस्ति तेषां पवनसमुदितैस्तैः प्रशांतैर्यथावत् ॥ ३० ॥
 एकाक्यासीत्स पूर्वं मृगयति विषयानानुपूर्व्यांतरात्मा जात
 मे स्यात्प्रजा वा धनमुपकरणं कर्म कुर्वस्तदर्थम् । क्लेशैः प्राणा
 वशेर्पैर्महदपि मनुते नान्यदस्माद्गरीयस्त्वेकालाभेप्यकृत्स्नो मृ
 इव विरमत्येकहान्याकृतार्थः ॥ ३१ ॥ नासीत्पूर्वं न पश्चादत
 नुदिनकराच्छादको वारिवाहो दृश्यः किंतुंतरासौ स्थगयति न
 दृशं पश्यतो नार्कविम्बम् । नोचेदेवं विनार्कं जलधरपटलं
 भासते तर्हि कस्मात्तद्वद्विश्यं पिधते दृशमथ न परं भासते
 चालकं स्वम् ॥ ३२ ॥ भुंजानः स्वप्नराज्यं स सकलविभवं
 जागरं प्राप्य भूयो राज्यभ्रष्टोहमित्थं न भजति विषमं त
 न्मृपा मन्यमानः । स्वप्ने कुर्वन्नगम्यागमनमुखमधं तेन त
 प्रत्यवायी तद्वज्राग्रदशायां व्यवहृतिमखिलां स्वप्नवद्विस्मरेन्न
 ॥ ३३ ॥ स्वप्नावस्थानुभूतं शुभमथ विषमं तन्मृपा जागरे स्वा
 ज्ञाग्रत्यां स्थूलदेहव्यवहृतिविषयं तन्मृपा स्वप्नकाले । इत्
 मिध्यात्वसिद्धावनिशमुभयथा सज्जते तत्र मूढः सत्येतद्भास
 केसिन्निह हि कुत इदं तन्न विन्नो वयं हि ॥ ३४ ॥ जीवं
 जाग्रतीह स्वजनमथ मृतं स्वप्नकाले निरीक्ष्य निर्वेदं यात्यक
 सान्मृतममृतममुं वीक्ष्य हर्षं प्रयाति । स्मृत्वाप्येतस्य जंतो
 निधनमसुयुतिं भाषते तेन साकं सत्येवं भाति भूयोऽप्यक

समयवशात्सत्यता वा मृपात्वम् ॥ ३५ ॥ स्वामन्त्रीसंगसौ-
ख्यादपि भृशमसतो या च रेतश्च्युतिः स्यात्सादृश्यात्तद्वदेतत्स्फुर-
रति जगदसत्कारणं सत्यकल्पम् । स्वप्ने सत्यः पुमान्स्याद्युवति-
रिह मृपैवानयोः संयुतिश्च प्रातः शुक्लेण वस्त्रोपहतिरिति यतः
कल्पनामूलमेतत् ॥ ३६ ॥ पश्यंत्याराममस्य प्रतिदिवसममी
जंतवः स्वापकाले पश्यत्येनं न कश्चित्करणगणमृते मायया क्रीड-
मानम् । जाग्रत्यर्थव्रजानामथ च तनुभृतां भासकं चालकं वा
नो जानीते सुषुप्तौ परमसुखमयं कश्चिदाश्चर्यमेतत् ॥ ३५ ॥ स्वप्ने
मंत्रोपदेशः श्रवणपरिचितः सत्य एष प्रबोधे स्वाम्नादेव प्रसादा-
दभिलषितफलं सत्यतां प्रातरेति । सत्यप्राप्तिस्त्वसत्यादपि भवति
तथा किं च तत्स्वप्रकाशं येनेदं भाति सर्वं चरमचरमथो-
च्चावचं दृश्यजातम् ॥ ३८ ॥ मध्यग्राणं सुषुप्तौ स्वजनिमनुवि-
शंत्यग्निमूर्यादयोमी वागाद्याः प्राणवायुं तदिह निगदिता
ग्लानिरेपां न वायोः । तेभ्यो दृश्यावभासो भ्रम इति विदितः
शुक्तिकारौप्यकल्पः प्राणायामव्रतं तच्छ्रुतिशिरसि मतं स्वा-
त्मलब्धौ न चान्यत् ॥ ३९ ॥ नोकस्मादार्द्रमेधः स्पृशति च
दहनः किंतु शुष्कं निदाघादार्द्रं चेतोनुबंधैः कृतसुकृतमपि
स्वोक्तकर्मप्रजायैः । तद्वज्ज्ञानाग्निरेतत्स्पृशति न सहसा किंतु
वैराग्यशुष्कं तस्माच्छुद्धो विरागः प्रथममभिहितस्तेन विज्ञान-
सिद्धिः ॥ ४० ॥ यत्किञ्चिन्नामरूपात्मकमिदमसदेवोदितं भाति
भूमौ येनानेकप्रकारैर्व्यवहरति जगद्येन तेनेश्वरेण ॥ तद्वत्प्र-
च्छादनीयं निभृतरशनया यद्वदेव द्विजिह्वस्तेन त्यक्तेन भोज्यं
सुखमनतिशयं मा गृधोन्यद्वनाद्यम् ॥ ४१ ॥ जीवन्मुक्तिर्मु-
मुक्षोः प्रथममथ ततो मुक्तिरात्यंतिकी च तेऽभ्यासज्ञानयो-

गादुरुचरणकृपापांगसंगेन लब्धात् । अभ्यासोपि द्विष
 स्यादधिकरणवशादैहिको मानसश्च शारीरस्त्वासनाद्यो ह्युप
 रतिरपरो ज्ञानयोगः परोक्तः ॥ ४२ ॥ सर्वानुन्मूल्य कामात्
 हृदि कृतनिलयान्क्षिप्तशङ्कनिवोच्चैर्दीर्यदेहाभिमानस्त्यजति चपत्
 तामात्मदत्तावधानः । यात्यूर्ध्वस्थानमुच्चैः कृतसुकृतभो
 नाडिकाभिर्विचित्रं नीलश्वेदारुणाभिः स्रवदमृतभरं गृह्यमा
 णात्मसौख्यः ॥ ४३ ॥ प्रापश्यद्विधमात्मेत्ययमिह पुरुष
 शोकमोहाद्यतीतः शुक्रं ब्रह्माध्यगच्छत्स खलु सकलवित्तं
 सिद्ध्यास्पदं हि । विस्मृत्य स्थूलसूक्ष्मग्रभृतिवपुरसौ सर्वसं
 ल्पशून्यो जीवन्मुक्तस्तुरीयं पदमधिगतवान्पुण्यपापैर्विहीनः
 ॥ ४४ ॥ यः सत्त्वाकारवृत्तौ प्रतिफलति युवा देहमात्रा
 तोपि तद्वर्मेर्वात्यवाध्यादिभिरनुपहतः प्राण आविर्भव
 श्रेयान्साध्यस्तमेतं सुनिपुणमतयः सत्यसंकल्पभाजोप्यभ्यासा
 वर्यतः परिणतमनसा साकमूर्ध्वं नयन्ति ॥ ४५ ॥ प्रायो कायो
 स्तकामो निरतिशयसुखायात्मकामस्तदासौ तत्प्राप्तावाप्तकाम
 स्थितचरमदशस्तस्य देहावसाने । प्राणा नैवोत्क्रमन्ति क्रम
 विरतिमिताः स्वस्वहेतौ तदानीं कायं जीवो विलीनो लवण
 मिव जलेऽखण्ड आत्मैव पश्चात् ॥ ४६ ॥ पिण्डीभूतं यदंतर्जल
 निधिसलिलं याति तत्संधवाख्यं भूयः प्रक्षिप्तमस्मिन्विलययु
 पगतं नामरूपं जहाति । प्राज्ञस्तद्वत्परात्मन्यथ भजति त्वं
 तस्य चेतो हिमांशौ वागशौ चक्षुरर्के पयसि पुनरस्येव तत्
 दिक्षु कर्णौ ॥ ४७ ॥ क्षीरान्तर्गद्वदार्ज्यं मधुरिमविदितं तत्प
 थम्भूतमसाद्भूतेषु ब्रह्म तद्वद्भवहृतिविदितं श्रान्तविश्रान्तिबीजम् ।
 यं लब्ध्वा लाभसन्त्यत्तणमिव मुमुक्षुः यत्र वेदेति भीति

सान्द्रानन्दं यदन्तः स्फुरति तदमृतं विद्ध्यतो ह्यन्यदार्तम्
 ॥ ४८ ॥ ओतः प्रोतश्च तंतुष्विह विततपटश्चित्रवर्णेषु चित्रस्त-
 सिञ्जिज्ञास्यमाने ननु भवति पटः सूत्रमात्रावशेषः । तद्वद्विश्वं
 विचित्रं नगनगरनरग्रामपञ्चादिरूपं प्रोतं वैराजरूपे स वियति
 तदपि ब्रह्मणि प्रोतमोतम् ॥ ४९ ॥ रूपं रूपं प्रतीदं प्रतिफल-
 नवशात्प्रातिरूप्यं प्रपेदे । हेको द्रष्टा द्वितीयो भवति च सलिले
 सर्वतोऽन्तरूपः इन्द्रो मायाभिरास्ते श्रुतिरिति वदति व्या-
 पकं ब्रह्म तस्माज्जीवत्वं यात्यकस्मादतिविमलतरे विम्बितं बुद्ध्यु-
 पाधौ ॥ ५० ॥ तज्ज्ञाः पश्यन्ति बुद्ध्या परमबलवतो माय-
 याक्तं पतङ्गं बुद्धावन्तः समुद्रे प्रतिफलितमरीच्यास्पदं वेधस-
 स्तम् । यादृग्यावानुपाधिः प्रतिफलति तथा ब्रह्म तस्मिन् यथा-
 स्यं प्राप्तादर्शानुरूपं प्रतिफलति यथावस्थितं तत्सदैवम् ॥ ५१ ॥
 एको भानुस्तदर्थप्रतिफलनवशाद्यस्त्वेकोदकांतर्नानात्वं यात्यु-
 पाधिस्थितिगतिसमतां चापि तद्वत्परात्मा । भूतेषूच्चावचेषु
 प्रतिफलित इवाभाति तावत्स्वभावावच्छिन्नो यः परंतु स्फुटम-
 नुपहतो भाति तावत्स्वभावैः ॥ ५२ ॥ यद्वत्पीयूषपरश्मौ दिन-
 करकिरणैर्विविक्तेरिति सान्द्रं नाशं नैशं तमिस्रं गृहगतमथवा
 मूर्छितैः कांस्यपात्रे । तद्वद्बुद्धौ परात्मद्युतिभिरनुपदं विवि-
 ताभिः समन्ताद्भासन्ते हीन्द्रियास्यप्रसृतिभिरनिशं रूपमुख्याः
 पदार्थाः ॥ ५३ ॥ पूर्णात्मानात्मभेदात्रिविधमिह परं बुद्ध्य-
 वच्छिन्नमन्यत्तत्रैवाभासमात्रं गगनमिव जले त्रिप्रकारं विभाति ।
 अम्भोवच्छिन्नमस्मिन् प्रतिफलितमतः पाथसोतर्वहिश्च पूर्णाव-
 च्छिन्नयोगे व्रजति लयमविद्या स्वकार्यैः सहैव ॥ ५४ ॥
 दृश्यन्ते दारुनार्यो युगपदगणिताः स्तम्भसूत्रप्रयुक्ताः संगीतं

दर्शयंत्यो व्यवहृतिमपरां लोकसिद्धां च सर्वाम् । सर्वत्राणु
विष्टादभिनवविभवाद्यावदर्थानुबंधात्तद्वत्सूत्रात्मसंज्ञाश्चवहति
जगद्भूवःस्वर्महान्तम् ॥ ५५ ॥ तत्सत्यं यत्रिकालेष्वनुप
मदः प्राणदिग्व्योममुख्यं यस्मिन्विश्रान्तमास्ते तदिह नि
दितं ब्रह्म सत्यस्य सत्यम् । नास्त्यन्यत्किंच यद्वत्परमधिक
नाम सत्यस्य सत्यं सच्च त्यच्चेति मूर्ताद्युपहितमवरं सत्यमस्या
सत्यम् ॥ ५६ ॥ यत्किंचिद्भात्यसत्यं व्यवहृतिविषये रौप्य
पांशुमुख्यं तद्वै सत्याश्रयेणेत्ययमिह नियमः सावधिलोकी
द्वः । तद्वत्सत्यस्य सत्ये जगदखिलमिदं ब्रह्मणि प्राविरा
न्मिध्याभूतं प्रतीतं भवति खलु यतस्तच्च सत्यं वदन्ति ॥ ५७ ॥
यत्राकाशावकाशः कलयति च कलामात्रतां यत्र कालो
वाशावसानं बृहदिह हि विराट्पूर्वमर्वागिवास्ते । सूत्रं य
विरासीन्महदपि महत्तत्तद्वि पूर्णाच्च पूर्णं संपूर्णादर्णवादे
भवति यथा पूर्णमेकार्णवांभः ॥ ५८ ॥ अन्तः सर्वोपर्व
पृथगमितरसैर्गंधवीर्यैर्विपाकैरेकं पाथोदपाथः परिणमति
तद्वदेवान्तरात्मा । नानाभूतस्वभावैर्वहति वसुमती येन वि
पयोदो वर्पत्युच्चैर्हुताशः पचति दहति वा येन सर्वांतरा
॥ ५९ ॥ भूतेष्वात्मानमात्मन्यनुगतमखिलं भूतजातं प्रप
त्प्रायः पाथस्तरंगान्वयवदथ चिरं सर्वमात्मैव पश्येत् ।
ब्रह्माद्वितीयं श्रुतिशिरसि मतं नेह नानास्ति किंचिन्मृत्यो
मोति मृत्युं स इह जगदिदं यस्तु नानेव पश्येत् ॥ ६० ॥
प्राक्पश्चादस्ति कुंभाद्गगनमिदमिति प्रत्यये सत्यपीदं कुम्भ
त्यच्चाबुदेति प्रलयमुपगते नश्यतीत्यन्यदेशम् । नीते
साकं ब्रजति भजति वा तत्प्रमाणानुकारमित्यादि निश्चयः

तिः स्फुरति तनुभृतां विश्वतस्तद्वदात्मा ॥ ६१ ॥ यावान्पिण्डो
 गुडस्य स्फुरति मधुरिमैवास्ति सर्वोपि तावान्यावान्कर्पूरपिण्डः
 परिणमति सदा मोद एवात्र तावान् । विश्वं यावद्विभाति द्रुम-
 नगनगरारामचैत्याभिरामं तावच्चैतन्यमेकं प्रविकसति यतस्त-
 त्त्तदात्मावशेषम् ॥ ६२ ॥ बाद्यान्नादानुभूतिर्यदपि तदपि सा
 नूनमाघातगम्या बाद्याघातध्वनीनां पृथगनुभवतः किंतु
 तत्साहचर्यात् । मांयोपादानमेतत्सहचरितमिव ब्रह्मणा भाति
 तद्वत्तस्मिन्प्रत्यक्षप्रतीते न किमपि विषयीभावमाप्नोति यस्मात्
 ॥ ६३ ॥ दृष्टः साक्षादिदानीमिह खलु जगतामीश्वरः संवि-
 दात्मा विज्ञानस्थाणुरेको गगनवदभितः सर्वभूतान्तरात्मा ।
 दृष्टं ब्रह्मातिरिक्तं सकलमिदमसद्रूपमाभासमात्रं शुद्धं ब्रह्माहम-
 स्मीत्यविरतमधुनात्रैव तिष्ठेदनीहः ॥ ६४ ॥ इन्द्रेन्द्राण्योः
 प्रकामं सुरतमुखजुषोः स्याद्रतान्तः सुषुप्तिस्तस्यामानन्दसान्द्रं
 पदमतिगहनं यत्स आनन्दकोशः । तस्मिन्नो वेद किञ्चिन्निरति-
 शयसुखाभ्यन्तरे लीयमानो दुःखी स्याद्बोधितः सन्निति कुशल-
 मतिर्वोधयेन्नैव सुप्तम् ॥ ६५ ॥ सर्वे नन्दन्ति जीवा अधिगतय-
 शसा गृह्णता चक्षुरादीनन्तःसर्वोपकर्त्रा बहिरपि च सुषुप्तौ
 यथा तुल्यसंस्थाः । एतेषां किल्बिषस्पृक् जठरभृतिकृते यो
 बहिर्दृष्टिरास्ते त्वक्चक्षुःश्रोत्रनासारसनवशमितो याति शोकं
 च मोहम् ॥ ६६ ॥ जाग्रत्यामन्तरात्मा विषयसुखकृतेऽनेकय-
 त्तान्विधास्यन् श्राम्यत्सर्वेन्द्रियौघोधिगतमपि मुखं विस्मरन्त्याति
 निद्राम् । विश्रामाय स्वरूपे त्वतितरसुलभं तेन चार्तीन्द्रियं हि
 सौख्यं सर्वोत्तमं स्यात्परिणतिविरसादिन्द्रियोत्थात्सुखाच्च ॥ ६७ ॥
 पक्षावभ्यस्य पक्षी जनयति मरुतं तेन यात्युच्चदेशं लब्ध्वा वायुं

महान्तं श्रममपनयति स्वीयपक्षौ प्रसार्य । दुःसंकल्पैर्विक्रान्तं
विषयमनुकदर्थीकृतं चित्तमेतत्त्रिभुवं विश्रामहेतोः स्था
चिरमहो हस्तपादान्प्रसार्य ॥ ६८ ॥ आश्लिष्यात्मानमात्मा
किमपि सहसैवांतरं वेद ब्राह्मं यद्वत्कामी विदेशात्सदनमुप
गाढमाश्लिष्य कान्ताम् । यात्यस्तं तत्र लोकव्यवहृतिरिति
पुण्यपापानुबन्धः शोको मोहो भयं वा समविषममिदं न ह
त्येव किञ्चित् ॥ ६९ ॥ अल्पानल्पग्रपंचग्रलय उपरतिर्वा
याणां सुखाप्तिर्जीवन्मुक्तौ सुपुप्तौ त्रितयमपि समं किंतु तत्रा
भेदः । प्राक्संस्कारात्प्रसुप्तः पुनरपि च परावृत्तिमेति प्र
नश्यत्संस्कारजातो न स किल पुनरावर्तते यश्च मुक्तः ॥ ७० ॥
आनन्दान्यश्च सर्वाननुभवति नृपः सर्वसंपत्समृद्धस्तस्यान
स एकः स खलु शतगुणः संग्रतिष्ठः पितृणाम् । आदेव
लोकं शतशतगुणितास्ते यदन्तर्गताः स्युर्ब्रह्मानन्दः स ए
स्त्यथ विषयसुखान्यस्य मात्रा भवन्ति ॥ ७१ ॥ यत्रानन्द
मोदाः प्रमद इति मुदश्चासते सर्व एते यत्राप्ताः सर्वकाम
स्युरखिलविरमात्केवलीभाव आस्ते । मां तत्रानन्दसांद्रे
चिरमनृतं सोमपीयूषपूर्णा धारामिन्द्राय देहीत्यपि निगम
भूयुगांतर्गताय ॥ ७२ ॥ आत्माकंपः सुखात्मा स्फुरति
परा त्वन्यथैव स्फुरंती स्थैर्यं वा चंचलत्वं मनसि परि
याति तत्रत्यमस्मिन् । चांचल्यं दुःखहेतुर्मनस इदमहो या
ष्टार्थलब्धिस्तस्यां यावत्स्थिरत्वं मनसि विषयजं स्यात्सुखं त
देव ॥ ७३ ॥ यद्वत्सौख्यं रतान्ते निमिषमिह मनस्वेक
रसे स्यात्स्थैर्यं यावत्सुपुप्तौ सुखमनतिशयं तावदेवाथ मुक्त
नित्यानन्दः प्रशांते हृदि तदिह सुखस्थैर्ययोः साहचर्यं नित

नंदस्य मात्रा विषयसुखमिदं युज्यते तेन वक्तुम् ॥ ७४ ॥
 श्रांतं स्वांतं सत्त्वाद्यव्यवहृतिभिरिदं ताः समाकृष्य सर्वास्तत्त-
 त्संस्कारयुक्तं ह्युपरमति परावृत्तमिच्छन्निदानम् । स्वाम्नान्सं-
 स्कारजातप्रजनितविषयान् स्वामदेहेनुभूतान् प्रोत्स्थांतः प्रत्य-
 गात्मप्रवणमिदमगाद्भूरिविश्राममस्मिन् ॥ ७५ ॥ स्वप्ने भोगः
 सुखादेर्भवति ननु कुतः साधने मूर्च्छमाने स्वप्नं देहांतरं तद्व्य-
 वहृतिकुशलं नव्यमुत्पद्यते चेत् । तत्सामग्र्या अभावात्कुत इद-
 मुदितं तद्वि सांकल्पितं चेत्तत्किं स्वप्ने रतांते वपुषि निपतिते
 दृश्यते शुक्रमोक्षः ॥ ७६ ॥ भीत्या रोदित्यनेन प्रवदति हसति
 श्लाघते नूनमस्मात्स्वप्नेऽप्यंगेनुबंधं त्यजति न सहसा मूर्च्छितेऽप्यं-
 तरात्मा । पूर्वं ये येनुभूतास्तनुयुवतिहयंव्याघ्रदेशादयोर्थास्तत्सं-
 स्कारस्वरूपान्मृजति पुनरमून् श्रित्य संस्कारदेहम् ॥ ७७ ॥
 सन्धौ जाग्रत्सुषुप्त्योरनुभवविदिता स्वाप्यवस्था द्वितीया तत्रा-
 त्मज्योतिरास्ते पुरुष इह समाकृष्य सर्वेन्द्रियाणि । संवेद्य
 स्थूलदेहं समुचितशयने स्वीयभासांतरात्मा पश्यन्संस्काररूपा-
 नभिमतविषयान्याति कुत्रापि तद्वत् ॥ ७८ ॥ रक्षन् प्राणैः
 कुलायं निजशयनगतं श्वासमात्रावशेषैर्माभूत्तत्प्रेतकल्पाकृतक-
 मिति पुनः सारमेयादिभक्ष्यम् । स्वप्ने स्वीयप्रभावात्सृजति
 हयरथाभिन्नगाः पल्वलानि क्रीडास्थानान्यनेकान्यपि सुहृदव-
 लापुत्रमित्रानुकारान् ॥ ७९ ॥ मातंगव्याघ्रदस्युद्विपदुरगकपी-
 न्कुत्रचित्प्रेयसीभिः क्रीडन्नास्ते हसन्वा विहरति कुहचिन्मृष्टम-
 भ्राति चान्नम् । स्लेच्छत्वं प्राप्तवानस्म्यहमिति कुहचिच्छंफितः
 स्वीयलोकादास्ते व्याघ्रादिभीत्या प्रचलति कुहचिद्रोदिति ग्रस्य-
 मानः ॥ ८० ॥ यो यो दृग्गोचरोर्थो भवति स स तदा तद्गतात्म-

स्वरूपाविज्ञानोत्पद्यमानः स्फुरति ननु यथा शुक्तिकाङ्क्ष
हेतुः । रौप्याभासो मृपैव स्फुरति च किरणाज्ञानतोभो शुभं
रञ्जज्ञानान्निमेपं सुखभयकृदतो दृष्टसृष्टं किलेदम् ॥ ८१ ॥
मायाध्यासाश्रयेण प्रविततमखिलं यन्मया तेन मत्स्थानं
न्येतेषु नाहं यदपि हि रजतं भाति शुक्तौ न रौप्ये । शुक्लं
स्तेन भूतान्यपि मयि निवसंतीति विष्णुग्विनेता प्राहासाद्
जातं सकलमपि मृपैवैद्रजालोपमेयम् ॥ ८२ ॥ हेतुः क
लोके सुखतदितरयोरेवमज्ञोऽविदिता मित्रं वा शत्रुरित्थं न
हरति मृपा याज्ञवल्क्यार्तभागौ । यत्कर्मैवोचतुः प्राक् ज
नृपगृहे चक्रतुस्तत्प्रशंसां वंशोत्तंसो यदूनामिति वदति
कोप्यत्र तिष्ठत्यकर्मा ॥ ८३ ॥ वृक्षच्छेदे कुठारः प्र
यदपि प्राणिनोद्यस्तथापि प्रायोन्नं तृप्तिहेतुस्तदपि निर्ग
कारणं भोक्तृयत्नः । प्राचीनं कर्म तद्वद्विषमसमफलप्राप्तिहेतु
थापि स्वातंत्र्यं नश्वरेस्मिन्न हि खलु घटते प्रेरकोऽस्यांतरा
॥ ८४ ॥ स्मृत्या लोकेषु वर्णाश्रमविहितमदो नित्यकाम्या
कर्म सर्वं ब्रह्मार्पणं स्यादिति निगमगिरः संगिरन्तेतिरम्भ
यन्नासानेत्रजिह्वाकरचरणशिरःश्रोत्रसंतर्पणेन तुष्येदंगीव सा
त्तरुरिव सकलो मूलसंतर्पणेन ॥ ८५ ॥ यः प्रैत्यात्मानं
श्रुतिविदपि तथा कर्मकृत्कर्मणोऽस्य नाशः स्यादल्पभोगात्
रवतरणे दुःखभोगो महीयान् । आत्माभिज्ञस्य लिप्सोरपि न
ति महाज्ज्ञाश्वतः सिद्धिभोगो ह्यात्मा तस्मादुपास्यः खलु
धिगमे सर्वसौख्यान्यलिप्सोः ॥ ८६ ॥ सूर्याद्यैरर्थमानं न
भवति पुनः केवलैर्नात्र चित्रं सूर्यात्सूर्यप्रतीतिर्न भवति स
नापि चंद्रस्य चंद्रात् । अग्रेरग्रेथ किंतु स्फुरति रविमुखं

पश्चित्प्रयुक्तादात्मज्योतिस्ततोयं पुरुष इह महो देवतानां च
चित्रम् ॥ ८७ ॥ प्राणेनांभांसि भूयः पिबति पुनरसावन्नम-
श्नाति तत्र तत्पाकं जाठरोभिस्तदुपहितबलो द्राक् शनैर्वा
करोति । व्यानः सर्वाङ्गनाडीष्वथ नयति रसं प्राणसंतर्पणार्थं
निःसारं पूतिगंधं त्यजति बहिरयं देहतोपानसंज्ञः ॥ ८८ ॥
व्यापारं देहसंस्थः प्रतिवपुरखिलं पञ्चवृत्त्यात्मकोसौ प्राणः
सर्वेन्द्रियाणामधिपतिरनिशं सत्तया निर्विवादम् । यस्येत्थं चिद्ध-
नस्य स्फुटमिह कुरुते सोऽसि सर्वस्य साक्षी प्राणस्य प्राण एषो-
प्यखिलतनुभृतां चक्षुषश्चक्षुरेपः ॥ ८९ ॥ यं भातं चिद्धनैकं
क्षितिजलपवनादित्यचन्द्रादयो ये भासा तस्यैव चानु प्रविर-
लगतयो भांति तस्मिन्वसन्ति । विद्युत्पुञ्जोभिसंघोष्युडुगणवित-
तिर्भासयेत्किं परेशं ज्योतिः शांतं ह्यनंतं कविमजममरं शाश्वतं
जन्मशून्यम् ॥ ९० ॥ तद्ब्रह्मैवाहमस्मीत्यनुभव उदितो यस्य
कस्यापि चेद्वै पुंसः श्रीसद्गुरुणामतुलितकरुणापूर्णपीयूषदृष्ट्या ।
जीवन्मुक्तः स एव भ्रमविधुरमना निर्गतेनाद्युपाधौ नित्यानं-
दैकधाम प्रविशति परमं नष्टसंदेहवृत्तिः ॥ ९१ ॥ नो देहो
नेन्द्रियाणि क्षरमतिचपलं नो मनो नैव बुद्धिः प्राणो नैवाहम-
स्मीत्यखिलजडमिदं वस्तुजातं कथं स्याम् । नाहंकारो न दारा-
गृहसुतसुजनक्षेत्रवित्तादि दूरं साक्षी चित्प्रत्यगात्मा निखिलज-
गदधिष्ठानभूतः शिवोहम् ॥ ९२ ॥ दृश्यं यद्रूपमेतद्भवति च
विशदं नीलपीताद्यनेकं सर्वस्यैतस्य दृग्वै स्फुरदनुभवता
लोचनं चैकरूपम् । तद्दृश्यं मानसं दृक् परिणतविषयाकार-
धीवृत्तयोपि दृश्या दृग्रूप एव प्रश्चुरिह स तथा दृश्यते नैव
साक्षी ॥ ९३ ॥ रज्ज्वज्ञानाद्भुजंगस्तदुपरि सहसा भाति मंदा-

न्वकारे स्वात्माज्ञानात्तथासौ भृशमसुखमभूदात्मनो जीव
 वः । आप्तोक्त्याहिभ्रमांते स च खलु विदिता रज्जुरेका त
 कूटस्थो नैव जीवो निजगुरुवचसा साक्षिभूतः शिवोहम् ॥ ९३ ॥
 किं ज्योतिस्ते वदस्वाहनि रविरिह मे चंद्रदीपादि रात्रौ सा
 मानुदीपादिकपरिकलने किं तव ज्योतिरस्ति । चक्षुस्तन्मा
 किं भवति च सुतरां धीर्धियः किं प्रकाशे तत्रैवाहं त
 तदसि परमकं ज्योतिरस्ति प्रभोहम् ॥ ९५ ॥ कंचित्
 स्थितः कौ पुनरिह भजते नैव देहादिसंघं यावत्प्रारब्धं
 कथमपि स सुखं चेष्टते संगबुद्ध्या । निर्द्वंद्वो नित्यशुद्धो नि
 लितममताहंकृतिर्नित्यतृप्तो ब्रह्मानंदस्वरूपः स्थिरमतिर
 निर्गताशेषमोहः ॥ ९६ ॥ जीवात्मब्रह्मभेदं दलयति सा
 यत् प्रकाशैकरूपं विज्ञानं तच्च बुद्धौ समुदितमतुलं यस्य पु
 षवित्रम् । माया तेनैव तस्य क्षयमुपगमिता संसृतेः का
 या नष्टा सा कार्यकर्त्री पुनरपि भविता नैव विज्ञानमात्र
 ॥ ९७ ॥ विश्वं नेति प्रमाणाद्विगलितजगदाकारभानस्त
 पीता यद्वत्फलांभस्त्यजति च सुतरां तत्फलं सौरभाज्ज
 सम्यक् सच्चिदनैकामृतमुखकवलाखादपूर्णो हृदासौ ज
 निःसारमेवं जगदखिलमिदं स्वप्रभः शांतचित्तः ॥ ९८ ॥
 क्षीयंते चास्य कर्माण्यपि खलु हृदयग्रंथिरुद्भिद्यते वै छि
 संशया ये जनिमृतिफलदा दृष्टमात्रे परेशे । तस्मिंश्चिन्मात्र
 गुणमलरहिते तत्त्वमस्यादिलक्ष्ये कूटस्थे प्रत्यगात्मन्यखिल
 धिमनोगोचरे ब्रह्मणीशे ॥ ९९ ॥ आदौ मध्ये तथांते जनि
 तिफलदं कर्ममूलं विशालं ज्ञात्वा संसारवृक्षं भ्रममदमुदि
 शोकतानेकपत्रम् । कामक्रोधादिशाखं सुतामश्रुनिताकन्य

पक्षिसंघं छिन्वासंगासिनैनं पटुमतिरभितश्चितयेद्वासुदेवम् ॥
॥ १०० ॥ जातं मय्येव सर्वं पुनरपि मयि तत्संस्थितं चैव
विश्वं सर्वं मय्येव याति प्रचिलयमिति तद्ब्रह्म चैवाहमस्मि ।
यस्य स्मृत्या च यज्ञाद्यखिलशुभविधौ सुप्रयातीह कार्यं न्यूनं
संपूर्णतां वै तमहमतिमुदैवाच्युतं सन्नतोस्मि ॥ १०१ ॥ इति
श्रीमच्छंकराचार्यकृतशतश्लोकी संपूर्णा ॥ ३० ॥

विवेकचूडामणिः ॥ ३१ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥ १ ॥ जन्तूनां
नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरता
विद्वत्त्वमस्मात्परम् । आत्मानात्मविवेचनं खनुभवो ब्रह्मात्मना-
संस्थितिर्मुक्तिर्नो शतकोटिजन्मसुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते ॥ २ ॥
दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहेहेतुकम् । मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरु-
षसंश्रयः ॥ ३ ॥ लब्ध्वा कथंचिन्नरजन्म दुर्लभं तत्रापि पुंस्त्वं
श्रुतिपारदर्शनम् । यस्तात्ममुक्त्यै न यतेत मूढधीः स ह्यात्महा
स्वं विनिहन्त्यसद्ब्रह्मात् ॥ ४ ॥ इतः कोन्योऽस्ति मूढात्मा यस्तु
स्वार्थे प्रमाद्यति । दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ॥ ५ ॥
वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान् कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ।
आत्मैक्यबोधेन विनापि मुक्तिर्न सिद्ध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि
॥ ६ ॥ अमृतत्वस्य नाशास्ति विचेनेत्येव हि श्रुतिः । त्रयीति
कर्मणो मुक्तेरहेतुत्वं स्फुटं यतः ॥ ७ ॥ अतो विमुक्त्यै प्रयतेत
विद्वान् संन्यस्तवाह्यार्थसुखस्पृहः सन् । सन्तं महान्तं समुपेत्य

देशिकं तेनोपदिष्टार्थसमाहितात्मा ॥ ८ ॥ उद्धरेदात्मनात्मा
 मयं संसारवारिधौ । योगारूढत्वमासाद्य सम्यग्दर्शननिष्ठ
 ॥ ९ ॥ संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये । यत्यतां परि
 तैर्धीरैरात्माभ्यास उपस्थितैः ॥ १० ॥ चित्तस्य शुद्धये
 नतु वस्तूपलब्धये । वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किञ्चित्कर्मको
 भिः ॥ ११ ॥ सम्यग्विचारतः सिद्धा रञ्जुतत्त्वावधारणा
 भ्रान्तोदितमहासर्पभयदुःखविनाशिनी ॥ १२ ॥ अ
 निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्तिः । न स्नानेन न दा
 प्राणायामशतेन वा ॥ १३ ॥ अधिकारिणमाशास्ते फलसि
 विंशेषतः । उपाया देशकालाद्याः सन्त्यस्मिन्सहकारिणः ॥ १४ ॥
 अतो विचारः कर्तव्यो मुमुक्षोरात्मवस्तुनः । समासाद्य द
 सिन्धुं गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम् ॥ १५ ॥ मेधावी पुरुषो विद्वान्
 पोहविचक्षणः । अधिकार्यात्मविद्यायामुक्तलक्षणलक्षितः ॥ १६ ॥
 विवेकिनो विरक्तस्य शमादिगुणशालिनः । मुमुक्षोरेव हि ब्र
 जिज्ञासायोग्यता मता ॥ १७ ॥ साधनान्यत्र चत्वारि क
 तानि मनीषिभिः । येषु सत्त्वेव सन्निष्ठा यदभावे न सि
 ति ॥ १८ ॥ आदौ नित्याजनित्यवस्तुविवेकः परिगण्यते
 इहामुत्रफलभोगविरागस्तदनन्तरम् ॥ १९ ॥ शमादिपङ्क्त
 त्तिर्मुमुक्षुत्वमिति स्फुटम् । ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंत
 विनिश्चयः ॥ २० ॥ सोऽयं नित्यानित्यवस्तुविवेकः समुदा
 तः । तद्वैराग्यं जिहासा या दर्शनश्रवणादिभिः ॥ २१ ॥
 देहादिब्रह्मपर्यन्ते ह्यनित्ये भोगवस्तुनि । विरज्य विषयव्रा
 षोपदृष्ट्या मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥ खलक्षये नियतावस्था मन
 शम उच्यते । विषयेभ्यः परावर्त्य स्थापनं स्वस्वगतं

॥ २३ ॥ उभयेपामिन्द्रियाणां स दमः परिकीर्तितः । बाह्या-
नालम्बनं वृत्तेरेवोपरतिरुत्तमा ॥ २४ ॥ सहनं सर्वदुःखाना-
मप्रतीकारपूर्वकम् । चिन्ताविलापरहितं सा तितिक्षा निगद्यते
॥ २५ ॥ शास्त्रस्य गुरुवाक्यस्य सत्यबुद्ध्यवधारणम् । सा श्रद्धा
कथिता सद्भिर्गया वस्तूपलभ्यते ॥ २६ ॥ सर्वदा स्थापनं
बुद्धेः शुद्धे ब्रह्मणि सर्वदा । तत्समाधानमित्युक्तं नतु चित्त-
स्य लालनम् ॥ २७ ॥ अहंकारादिदेहान्तान्वन्धानज्ञानकल्पि-
तान् । स्वस्वरूपावबोधेन मोक्तुमिच्छा मुमुक्षुता ॥ २८ ॥
मन्दमध्यमरूपापि वैराग्येण शमादिना । प्रसादेन गुरोः सेयं
प्रबुद्धा सूयते फलम् ॥ २९ ॥ वैराग्यं च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य
तु विद्यते । तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः
॥ ३० ॥ एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्वमुमुक्षयोः । मरौ सलि-
लवत्तत्र शमादेर्भानमात्रता ॥ ३१ ॥ मोक्षकारणसामग्र्यां
भक्तिरेव गरीयसी । स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते
॥ ३२ ॥ स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरित्यपरे जगुः । उक्त-
साधनसंपन्नस्तच्चजिज्ञासुरात्मनः ॥ ३३ ॥ उपसीदेद्गुरुं प्राज्ञं
यस्माद्बन्धविमोक्षणम् । श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्म-
वित्तमः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानिलः ।
अहेतुकदयासिन्धुर्वन्धुरानमतां सताम् ॥ ३५ ॥ तमाराध्य
गुरुं भक्त्या प्रहृष्टप्रश्रयसेवनैः । प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञात-
व्यमात्मनः ॥ ३६ ॥ स्वामिन्नमस्ते नतलोकबन्धो कारुण्यसि-
न्धो पतितं भवान्धौ । मामुद्धरात्मीयकटाक्षदृष्ट्या ऋज्व्याऽ-
तिकारुण्यसुधाभिवृष्ट्या ॥ ३७ ॥ दुर्वारसंसारदवाग्नितां
दोधूयमानं दुरदृष्टिवातैः । मीतं प्रपन्नं परिपाहि मृत्योः शर-

ण्यमन्यद्यदहं न जाने ॥ ३८ ॥ शान्ता महान्तो निवसन्तो
 सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः । तीर्णाः स्वयं भीममवा
 जना न हेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥ ३९ ॥ अयं स्वयं
 स्वत एव यत्परश्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम् । सुधोषं
 स्वयमर्ककर्कशप्रभाभितप्तमवति क्षितिं किल ॥ ४० ॥
 ब्रह्मानन्दरसानुभूतिकलितैः पूतैः सुशीतैर्युतैर्युष्मद्वाक्लशो
 तैः श्रुतिमुखैर्वाक्यामृतैः सेचय । संतप्तं भवतापदावदहनन
 लाभिरेनं प्रभो धन्यास्ते भवदीक्षणक्षणगतेः पात्रीकृ
 स्त्रीकृताः ॥ ४१ ॥ कथं तरेयं भवसिन्धुमेतं का वा गति
 कतमोऽस्त्युपायः । जाने न किञ्चित्कृपयाऽव मां प्रभो सं
 दुःखक्षतिमातनुष्व ॥ ४२ ॥ तथा वदन्तं शरणागतं
 संसारदावानलतापतप्तम् । निरीक्ष्य कारुण्यरसार्द्रदृष्ट्या द
 दभीतिं सहसा महात्मा ॥ ४३ ॥ विद्वान्स तस्मा उप
 त्तिमीयुषे मुमुक्षवे साधु यथोक्तकारिणे । प्रशान्तचित्त
 शमान्विताय तच्चोपदेशं कृपयैव कुर्यात् ॥ ४४ ॥
 भैष्ट विद्वंस्तव नास्त्युपायः संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः
 येनैव याता यतयोऽस्य पारं तमेव मार्गं तव नि
 शामि ॥ ४५ ॥ अस्त्युपायो महान्कश्चित्संसारभयनाशन
 तेन तीर्त्वा भवाम्भोधिं परमानन्दमाप्स्यसि ॥ ४६ ॥ वे
 न्तार्थविचारेण जायते ज्ञानमुत्तमम् । तेनात्यन्तिकसं
 दुःखनाशो भवत्यनु ॥ ४७ ॥ श्रद्धाभक्तिध्यानयोगान्मुमु
 र्मुक्तेर्हेतून्वक्ति साक्षाद्भुतेर्गीः । यो वा एतेष्वेव तिष्ठत्य
 मोक्षोऽविद्याकल्पितादेहवन्धात् ॥ ४८ ॥ अज्ञानयोगात्पर
 त्मनस्तव ह्यनात्मवन्धस्तत एव संसृतिः । तयोर्विवेकोदितः

धवहिरज्ञानकार्यं प्रदहेत्समूलम् ॥ ४९ ॥ कृपया श्रूयतां
 स्वामिन्प्रश्नोऽयं क्रियते मया । यदुत्तरमहं श्रुत्वा कृतार्थः स्वां
 भवन्मुखात् ॥ ५० ॥ को नाम बन्धः कुत एष आगतः कथं
 प्रतिष्ठाऽस्य कथं विमोक्षः । कोऽसावनात्मा परमः स आत्मा
 तयोर्विवेकः कथमेतदुच्यताम् ॥ ५१ ॥ धन्योऽसि कृतकृत्यो-
 ऽसि पावितं ते कुलं त्वया । यदविद्याबन्धमुक्त्या ब्रह्मीभवितु-
 मिच्छसि ॥ ५२ ॥ ऋणमोचनकर्तारः पितुः सन्ति सुतादयः ।
 बन्धमोचनकर्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चन ॥ ५३ ॥ मस्तक-
 न्यस्तभारादेर्दुःखमन्यैर्निवार्यते । क्षुधादिकृतदुःखं तु विना
 स्वेन न केनचित् ॥ ५४ ॥ पथ्यमौषधसेवा च क्रियते येन
 रोगिणा । आरोग्यसिद्धिर्दृष्टाऽस्य नान्यानुष्ठितकर्मणा ॥ ५५ ॥
 वस्तुस्वरूपं स्फुटबोधचक्षुषा स्वेनैव वेद्यं नतु पण्डितेन । चन्द्र-
 स्वरूपं निजचक्षुषैव ज्ञातव्यमन्यैरवगम्यते किम् ॥ ५६ ॥
 अविद्याकामकर्मादि पाशबन्धं विमोचितुम् । कः शक्नुयाद्वि-
 नात्मानं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ५७ ॥ न योगेन न सांख्येन
 कर्मणा नो न विद्यया । ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्ध्यति
 नान्यथा ॥ ५८ ॥ वीणाया रूपसौन्दर्यं तन्त्रीवादनसौष्ठवम् ।
 प्रजारञ्जनमात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते ॥ ५९ ॥ वाग्वैखरी-
 शब्दझरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम् । वैदुष्यं विदुषां मध्ये
 युक्तये न तु मुक्तये ॥ ६० ॥ अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधी-
 तिस्तु निष्फला । विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फ-
 ला ॥ ६१ ॥ शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम् । अतः
 प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञातत्त्वमात्मनः ॥ ६२ ॥ अज्ञानसर्पदष्टस्य
 ब्रह्मज्ञानौषधं विना । किमु वेदैश्च शास्त्रैश्च किमु मन्त्रैः किमौ-

पधैः ॥ ६३ ॥ न गच्छति विना पानं व्याधिरौषधशब्द
 विनाऽपरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते ॥ ६४ ॥ अहं
 दृश्यविलयमज्ञात्वा तत्त्वमात्मनः । बाह्यशब्दैः कुतो मुचि
 क्तिमात्रफलैर्नृणाम् ॥ ६५ ॥ अकृत्वा शत्रुसंहारमगताजित
 भूश्रियम् । राजाहमिति शब्दाच्चो राजा भवितुमर्हति ॥ ६६ ॥
 आसोक्तिं खननं तथोपरि शिलाद्युत्कर्षणं स्वीकृतिं निषे
 समपेक्षते न हि वहिः शब्दैस्तु निर्गच्छति । तद्वद्ब्रह्मविदो
 शमननध्यानादिभिर्लभ्यते मायाकार्यतिरोहितं स्वममलं त
 न दुर्युक्तिभिः ॥ ६७ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भवबन्धविमुक्तं
 स्वैरेव यत्नः कर्तव्यो रोगादाविव पण्डितैः ॥ ६८ ॥ य
 याद्य कृतः प्रश्नो वरीयाञ्छास्त्रविन्मतः । सूत्रप्रायो निगूढ
 ज्ञातव्यश्च मुमुक्षुभिः ॥ ६९ ॥ शृणुष्वभावहितो विद्वन् यन्
 समुदीर्यते । तदेतच्छ्रवणात्सद्यो भवबन्धाद्विमोक्ष्यसे ॥ ७० ॥
 मोक्षस्य हेतुः प्रथमो निगद्यते वैराग्यमत्यन्तमनित्यवस्तु
 ततः शमश्चापि दमस्तितीक्षा न्यासः प्रसक्ताखिलकर्म
 भृशम् ॥ ७१ ॥ ततः श्रुतिस्तन्मननं सतत्त्वध्यानं चिरं कि
 निरन्तरं श्रुतेः । ततो विकल्पं परमेत्य विद्वानिहैव निर्वाण
 समृच्छति ॥ ७२ ॥ यद्वोद्वयं तवेदानीमात्मानात्मविवेचन
 तदुच्यते मया सम्यक् श्रुत्वात्मन्यवधारय ॥ ७३ ॥ मज्जादि
 मेदःपलरक्तचर्मत्वगादयैर्धातुभिरेभिरन्वितम् । पादोरुवक्षोऽङ्ग
 पृष्ठमस्तकैरङ्गैरुपाङ्गैरुपयुक्तमेतत् ॥ ७४ ॥ अहं ममेति प्रा
 शरीरं मोहास्पदं स्थूलमितीर्यते बुधैः । नभोनभस्वदहनाम्
 मयः सूक्ष्माणि भूतानि भवन्ति तानि ॥ ७५ ॥ परस्पर
 मिलितानि भूत्वा स्थूलानि च स्थूलशरीरहेतवः । मात्रा

दीया विषया भवन्ति शब्दादयः पञ्च सुखाय भोक्तुः ॥ ७६ ॥
य एषु मूढा विषयेषु बद्धा रागोरुपाशेन सुदुर्दमेन । आयान्ति
निर्यान्त्यथ ऊर्ध्वमुखैः स्वकर्मदूतेन जवेन नीताः ॥ ७७ ॥
शब्दादिभिः पञ्चभिरेव पञ्च पञ्चत्वमापुः स्वगुणेन बद्धाः ।
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गमीनमृङ्गा नरः पञ्चभिरश्रितः किम् ॥ ७८ ॥
दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णसर्पविपादपि । विषं निहन्ति
भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्ययम् ॥ ७९ ॥ विषयाशामहापाशाद्यो
विमुक्तः सुदुस्त्यजात् । स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः पदशास्त्र-
वेद्यपि ॥ ८० ॥ आपातवैराग्यवतो मुमुक्षून् भवाब्धिपारं
प्रतियातुमुद्यतान् । आशाग्रहो मज्जयतेऽन्तराले निगृह्य कण्ठे
विनिवर्त्य वेगात् ॥ ८१ ॥ विषयाख्यग्रहो येन सुविरक्त्यसिना
हतः । स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूहवर्जितः ॥ ८२ ॥
विषमविषयमार्गेर्गच्छतोऽनच्छबुद्धेः प्रतिपदमभियातो मृत्यु-
रप्येव विद्धि । हितसुजनगुरुक्त्या गच्छतः स्वस्य युक्त्या
प्रभवति फलसिद्धिः सत्यमित्येव विद्धि ॥ ८३ ॥ मोक्षस्य
काङ्क्षा यदि वै तवास्ति त्यजातिदूराद्विषयान्विषं यथा । पीयूष-
वत्तोषदयाक्षमार्जवप्रशान्तिदान्तीर्भज नित्यमादरात् ॥ ८४ ॥
अनुक्षणं यत्परिहृत्य कृत्यमनाद्यविद्याकृतबन्धमोक्षणम् । देहः
परार्थोऽयममुष्य पोषणे यः सज्जते स स्वमनेन हन्ति ॥ ८५ ॥
शरीरपोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति । ग्राहं दारुधिया
धृत्वा नदीं तर्तुं स गच्छति ॥ ८६ ॥ मोह एष महामृत्युर्मुमु-
क्षोर्वपुरादिषु । मोहो विनिर्जितो येन स मुक्तिपदमर्हति
॥ ८७ ॥ मोहं जहि महामृत्युं देहदारसुतादिषु । यं जित्वा
मुनयो यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ८८ ॥ तद्भांसरुधिर-

स्नायुमेदोमज्जास्थिसंकुलम् । पूर्णं मूत्रपुरीषाभ्यां स्थूलं नि-
 मिदं वपुः ॥ ८९ ॥ पञ्चीकृतेभ्यो भूतेभ्यः स्थूलेभ्यः
 पूर्वकर्मणा । समुत्पन्नमिदं स्थूलं भोगायतनमात्मनः
 अवस्था जागरस्तस्य स्थूलार्थानुभवो यतः ॥ ९० ॥ वा-
 न्द्रियैः स्थूलपदार्थसेवां स्रक्चन्दनक्षयादिविचित्ररूपाम्
 करोति जीवः स्वयमेतदात्मना तस्मात्प्रशस्तिर्वपुषोऽस्य जा-
 ॥ ९१ ॥ सर्वोऽपि बाह्यसंसारः पुरुषस्य यदाश्रयः । वि-
 देहमिदं स्थूलं गृहवद्गृहमेधिनः ॥ ९२ ॥ स्थूलस्य संभव-
 रामरणानि धर्माः सौल्यादयो बहुविधाः शिशुताप-
 स्थाः । वर्णाश्रमादिनियमा बहुधामयाः स्युः पूजावमान-
 मानमुखा विशेषाः ॥ ९३ ॥ बुद्धीन्द्रियाणि श्रवणं त्व-
 घ्राणं च जिह्वा विषयावबोधनात् । वाक्पाणिपादा गुदम-
 पस्थः कर्मेन्द्रियाणि प्रवणेन कर्मसु ॥ ९४ ॥ निगद्यतेऽ-
 करणं मनोधीरहंकृतिश्चित्तमिति स्ववृत्तिभिः । मनस्तु संक-
 विकल्पनादिभिर्बुद्धिः पदार्थाध्यवसायधर्मतः ॥ ९५ ॥
 अत्राभिमानादहमित्यहंकृतिः । स्वार्थानुसन्धानगुणेन चि-
 त्तम् ॥ ९६ ॥ प्राणापानव्यानोदानसमाना भवत्यसौ प्राण-
 स्वयमेव वृत्तिभेदाद्विकृतेर्भेदात्सुवर्णसलिलवत् ॥ ९७ ॥ वा-
 दिपञ्च श्रवणादिपञ्च प्राणादिपञ्चाश्रमुत्खानि पञ्च । बुद्धि-
 यविद्यापि च कामकर्मणी पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमाहुः ॥ ९८ ॥
 इदं शरीरं शृणु सूक्ष्मसंज्ञितं लिङ्गं तपञ्चीकृतभूतसंभवम्
 सवासनं कर्म फलानुभावकं स्वाज्ञानतोऽनादिरूपाधिरात्म-
 ॥ ९९ ॥ स्वप्नो भवत्यस्य विभक्त्यवस्था स्वमात्रशेषेण विभक्ति-
 यत्र । स्वप्ने तु बुद्धिः स्वयमेव जाग्रत्कालीनतानाविधवा

नाभिः ॥ १०० ॥ कर्त्रादिभावं प्रतिपद्य राजते यत्र स्वयं भाति
ह्ययं परात्मा । धीमात्रकोपाधिरशेषसाक्षी न लिप्यते तत्कृत-
कर्मलेशैः ॥ यस्मादसङ्गस्तत एव कर्मभिर्न लिप्यते किञ्चिदुपा-
धिना कृतैः ॥ १०१ ॥ सर्वं व्यापृतिकरणं लिङ्गमिदं स्याच्चि-
दात्मनः पुंसः । चास्यादिकमिव तक्षणस्तेनैवात्मा भवत्यसङ्गो-
ज्यम् ॥ १०२ ॥ अन्धत्वमन्दत्वपटुत्वधर्माः सौगुण्यवैगुण्यव-
शाद्धि विद्धि । बाधिर्यमूकत्वमुखास्तथैव श्रोत्रादिधर्मा नतु
चेत्तुरात्मनः ॥ १०३ ॥ उच्छ्वासनिःश्वासविजृम्भणक्षुत्प्रस्प-
न्दनाद्युत्क्रमणादिकाः क्रियाः । प्राणादिकर्माणि वदन्ति
तज्ज्ञाः प्राणस्य धर्मावशनापिपासे ॥ १०४ ॥ अन्तःकरणमे-
तेषु चक्षुरादिषु वर्ष्मणि । अहमित्यभिमानेन तिष्ठत्याभासते-
जसा ॥ १०५ ॥ अहंकारः स विज्ञेयः कर्त्ता भोक्ताभिमान्य-
यम् । सत्त्वादिगुणयोगेन चावस्थात्रयमश्रुते ॥ १०६ ॥ विष-
याणामानुकूल्ये सुखी दुःखी विपर्यये । सुखं दुःखं च तद्धर्मः
सदानन्दस्य नात्मनः ॥ १०७ ॥ आत्मार्थत्वेन हि प्रेयान्वि-
षयो न स्वतः प्रियः । स्वत एव हि सर्वेषामात्मा प्रियतमो
यतः ॥ १०८ ॥ तत आत्मा सदानन्दो नास्य दुःखं कदा-
चन । यत्सुषुप्तौ निर्विषय आत्मानन्दोऽनुभूयते ॥ श्रुतिः प्रत्य-
क्षमैतिह्यमनुमानं च जाग्रति ॥ १०९ ॥ अव्यक्तनाम्नी परमे-
शशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा । कार्यानुमेया सुधि-
यैव माया यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥ ११० ॥ सन्नाप्यस-
न्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो । साङ्गा-
प्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा ॥ १११ ॥
शुद्धाद्वयब्रह्मविबोधनाश्या सर्पभ्रमो रज्जुविवेकतो यथा । रज-

स्तमः सत्वमिति प्रसिद्धा गुणास्तदीयाः प्रथितैः स्वकायैः
 ॥ ११२ ॥ विक्षेपशक्ती रजसः क्रियात्मिका यतः प्रवृत्तिः
 प्रसृता पुराणी । रागादयोऽस्याः प्रभवन्ति नित्यं दुःखाः
 मे मनसो विकाराः ॥ ११३ ॥ कामक्रोधो लोभदम्भाद्यः
 अहंकारेर्ष्यामित्सराद्यास्तु घोराः । धर्मा एते राजसाः पुं प्रवृत्तिः
 र्यसादेषा तद्रजो बन्धहेतुः ॥ ११४ ॥ एषा वृत्तिर्नाम तत्
 गुणस्य शक्तिर्यया वस्त्ववभासतेऽन्यथा । सैषा निदानं पुरुषस्य
 संसृतेर्विक्षेपशक्तेः प्रवणस्य हेतुः ॥ ११५ ॥ प्रज्ञावानपि
 ण्डितोऽपि चतुरोऽप्यत्यन्तसूक्ष्मात्मदृक् । व्यालीढस्तमसा
 वेत्ति बहुधा संवोधितोऽपि भृशम् । भ्रान्त्यारोपितमेव
 कलयत्यालम्बते तद्गुणान् हन्तासौ प्रवला दुरन्ततमसः शक्तिः
 महत्यावृत्तिः ॥ ११६ ॥ अभावना वा विपरीतभावना सं
 वना विप्रतिपत्तिरस्याः । संसर्गयुक्तं न विमुञ्चति ध्रुवं वि
 शक्तिः क्षपयत्यजस्रम् ॥ ११७ ॥ अज्ञानमालस्यजडत्वनि
 प्रमादमूढत्वमुखास्तमोगुणाः । एतैः प्रयुक्तो नहि वेत्ति किं
 निद्रालुवत्स्तम्भवदेव तिष्ठति ॥ ११८ ॥ सत्त्वं विशुद्धं ज्ञातुं
 तथापि ताभ्यां मिलित्वा शरणाय कल्प्यते । यत्रात्मवि
 प्रतिविम्बितः सन् प्रकाशयत्यर्क इवाखिलं जगत् ॥ ११९ ॥
 मिश्रस्य सत्त्वस्य भवन्ति धर्माः स्वमानिताद्या नियमाः
 द्याः । श्रद्धा च भक्तिश्च सुसुक्ष्मता च दैवी च संपत्तिरस्य
 वृत्तिः ॥ १२० ॥ विशुद्धसत्त्वस्य गुणाः प्रसादः स्वात्मानुभूतिः
 परमा प्रशान्तिः । तृप्तिः ग्रहर्षः परमात्मनिष्ठा यया सदानु
 रसं समृच्छति ॥ १२१ ॥ अव्यक्तमेतन्निगुणैर्निरुक्तं तत्का
 नाम शरीरमात्मनः । सुषुप्तिरेतस्य विप्रत्ययस्याः प्रतीतिः

न्द्रियबुद्धिर्दृष्टिः ॥ १२२ ॥ सर्वप्रकारप्रमितिप्रशान्तिर्वीजात्म-
 नावस्थितिरेव बुद्धेः । सुषुप्तिरेतस्य किल प्रतीतिः किञ्चिन्न
 वेद्मीति जगत्प्रसिद्धेः ॥ १२३ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोजहमादयः
 सर्वे विकारा विषयाः सुखादयः । व्योमादिभूतान्यखिलं च
 विश्वमव्यक्तपर्यन्तमिदं ह्यनात्मा ॥ १२४ ॥ माया मायाकार्यं
 सर्वं महदादिदेहपर्यन्तम् । असदिदमनात्मकत्वं विद्धि मरुम-
 रीचिकाकल्पम् ॥ १२५ ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि स्वरूपं परमा-
 त्मनः । यद्विज्ञाय नरो बन्धान्मुक्तः कैवल्यमश्नुते ॥ १२६ ॥
 अस्ति कश्चित्स्वयं नित्यमहंप्रत्ययगोचरः । अवस्थात्रयसाक्षी सन्
 पञ्चकोशविलक्षणः ॥ १२७ ॥ यो विजानाति सकलं जाग्रत्स्वप्न-
 सुषुप्तिषु । बुद्धितद्बुतिसद्भावमभावमहमित्ययम् ॥ १२८ ॥ यः
 पश्यति स्वयं सर्वं यं न पश्यति कश्चन । यश्चेतयति बुद्ध्यादि
 न तद्यं चेतयत्ययम् ॥ १२९ ॥ येन विश्वमिदं व्याप्तं यन्न व्या-
 प्रोति किञ्चन । आभारूपमिदं सर्वं तं भान्तमनु भात्ययम् ॥ १३० ॥
 यस्य सन्निधिमात्रेण देहेन्द्रियमनोधियः । विषयेषु स्वकीयेषु
 वर्तन्ते प्रेरिता इव ॥ १३१ ॥ अहंकारादिदेहान्ता विषयाश्च
 सुखादयः । वेद्यन्ते घटवद्येन नित्यबोधस्वरूपिणा ॥ १३२ ॥
 एषोऽन्तरात्मा पुरुषः पुराणो निरन्तराखण्डसुखानुभूतिः ।
 सदैकरूपः प्रतिबोधमात्रो येनेपिता वागसवश्चरन्ति ॥ १३३ ॥
 अत्रैव सत्तात्मनि धीगुहायामव्याकृताकाश उशत्प्रकाशः ।
 आकाश उच्चै रधिवत्प्रकाशते स्वतेजसा विश्वमिदं प्रकाशयन्
 ॥ १३४ ॥ ज्ञाता मनोहंक्रुतिविक्रियाणां देहेन्द्रियप्राणकृतक्रि-
 याणाम् । अयोऽग्निवत्ताननुवर्त्तमानो न चेष्टते नो विकरोति
 किञ्चन ॥ १३५ ॥ न जायते नो म्रियते न वर्धते न क्षीयते नो
 वे. स. ७

विकरोति नित्यः । विलीयमानोऽपि वपुष्यमुष्मिन्न लीयते
 इवाम्बरः स्वयम् ॥ १३६ ॥ प्रकृतिविकृतिभिन्नः शुद्धबोध-
 भावः सदसदिदमशेषं भासयन्निर्विशेषः । विलसति परमा-
 जाग्रदादिष्ववस्थास्यहमहमिति साक्षात्साक्षिरूपेण बुद्धेः ॥ १३७ ॥
 नियमितमनसाऽयं त्वं स्वमात्मानमात्मन्यहमहमिति सा-
 द्विद्धि बुद्धिप्रसादात् । जनिमरणतरङ्गापारसंसारसिन्धुं प्रतरा-
 कृतार्थो ब्रह्मरूपेण संस्थः ॥ १३८ ॥ अत्रानात्मन्यहमि-
 मतेर्वन्ध एषोऽस्य पुंसः प्राप्तोऽज्ञानाजननमरणक्लेशसंपातहे-
 येनैवायं वपुरिदमसत्सत्यमित्यात्मबुद्ध्या पुष्यत्युक्षत्यवर्ति-
 यैस्तन्तुभिः कोशकृद्बत् ॥ १३९ ॥ अतस्मिंस्तद्वुद्धिः प्रक-
 विमूढस्य तमसा विवेकाभावाद्ब्रह्म स्फुरति भुजगे रज्जुधिपण-
 ततोऽनर्थव्रातो निपतति समादातुरधिकस्ततो योऽसद्ब्रह्म न-
 भवति बन्धः शृणु सखे ॥ १४० ॥ अखण्डनित्याद्वयं
 शक्त्या स्फुरन्तमात्मानमनन्तवैभवम् । समावृणोत्यावृतिर्वा-
 रेणा तमोमयी राहुरिवार्कविम्बम् ॥ १४१ ॥ तिरोभूते स्वा-
 न्यमलतरतेजोवति पुमाननात्मानं मोहादहमिति शरीरं
 यति । ततः कामक्रोधप्रभृतिभिरमुं बन्धनगुणैः परं वि-
 ख्या रजस उरुशक्तिर्व्यथयति ॥ १४२ ॥ महामोहग्राहग्रस्त-
 लितात्मावगमनो धियो नानावस्थां स्वयमभिनयंस्तद्गुणत-
 अपारे संसारे विषयविषपूरे जलनिधौ निमज्ज्योन्मज्ज्यायं
 ति कुमतिः कुत्सितगतिः ॥ १४३ ॥ भानुग्रभासंजनितानि
 क्लिर्भानुं तिरोधाय विजृम्भते यथा । आत्मोदिताहंकृतिरा-
 तत्त्वं तथा तिरोधाय विजृम्भते स्वयम् ॥ १४४ ॥ कर्मा-
 दिननाथे दुर्दिने सान्द्रमेघैर्व्यथयति हिमशृङ्गावायुख्यो

तान् । अविरततमसात्मन्यावृते मूढबुद्धिं क्षपयति बहुदुःखै-
स्तीव्रविक्षेपशक्तिः ॥ १४५ ॥ एताभ्यामेव शक्तिभ्यां बन्धः
पुंसः समागतः । याभ्यां विमोहितो देहं मत्वात्मानं भवत्य-
यम् ॥ १४६ ॥ बीजं संसृतिभूमिजस्य तु तमो देहात्मधीरङ्कुरो
रागः पल्लवमम्युकर्म तु वपुः स्कन्धोऽसवः शाखिकाः । अग्रा-
णीन्द्रियसंहतिश्च विषयाः पुष्पाणि दुःखं फलं नानाकर्मसमुद्भवं
बहुविधं भोक्तात्र जीवः खगः ॥ १४७ ॥ अज्ञानमूलोऽयम-
नात्मबन्धो नैसर्गिकोऽनादिरनन्त ईरितः । जन्माप्ययं व्याधि-
जरादिदुःखप्रवाहपातं जनयत्यमुष्य ॥ १४८ ॥ नास्त्वेन शस्त्रै-
रनिलेन वह्निना छेतुं न शक्यो न च कर्मकोटिभिः । विवेक-
विज्ञानमहासिना विना धातुः प्रसादेन सितेन मञ्जुना ॥ १४९ ॥
श्रुतिप्रमाणैकमतेः स्वधर्मनिष्ठा तयैवात्मविशुद्धिरस्याः । विशु-
द्धबुद्धेः परमात्मवेदनं तेनैव संसारसमूलनाशः ॥ १५० ॥
कोशैरन्नमयाद्यैः पञ्चभिरात्मा न संबृतो भाति । निजशक्ति-
समुत्पन्नैः शैवलपटलैरिवाम्बु वापीस्थम् ॥ १५१ ॥ तच्छैवा-
लापनये सम्यक् सलिलं प्रतीयते शुद्धम् । तृष्णासंतापहरं सद्यः
सौख्यप्रदं परं पुंसः ॥ १५२ ॥ पञ्चानामपि कोशानामपवादे
विभात्ययं शुद्धः । नित्यानन्दैकरसः प्रत्यग्रूपः परं स्वयंज्योतिः
॥ १५३ ॥ आत्मानात्मविवेकः कर्तव्यो बन्धमुक्तये विदुषा ।
तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञायैव सच्चिदानन्दम् ॥ १५४ ॥
मुञ्जादिपीकामिव दृश्यवर्गात्प्रत्यञ्चमात्मानमसङ्गमक्रियम् । वि-
विच्य तत्र प्रविलाप्य सर्वं तदात्मना तिष्ठति यः स मुक्तः
॥ १५५ ॥ देहोऽयमन्नभवनोऽन्नमयस्तु कोशश्चाग्नेन जीवति
विनश्यति तद्विहीनः । लवचर्ममांसरुधिरास्थिपुरीपराशिर्नायं

स्वयं भावेतुमर्हति नित्यशुद्धः ॥ १५६ ॥ पूर्वं जनेरपि मृतो
 नायमस्ति जातक्षणः क्षणगुणोऽनियतस्वभावः । नैको ज
 घटवत्परिदृश्यमानः स्वात्मा कथं भवति भावविकारो
 ॥ १५७ ॥ पाणिपादादिमान्देहो नात्मा व्यङ्ग्येऽपि ज
 नात् । तत्तच्छक्तेरनाशाच्च न नियम्यो नियामकः ॥ १५८
 देहतद्धर्मतत्कर्मतदवस्थादिसाक्षिणः । स्वत एव स्वतः नि
 तद्वैलक्षण्यमात्मनः ॥ १५९ ॥ शल्यराशिर्मांसलिप्तो मलय
 ऽतिकश्मलः । कथं भवेदयं वेत्ता स्वयमेतद्विलक्षणः ॥ १६०
 त्वञ्चांसमेदोऽस्थिपुरीपराशावहंमतिं मूढजनः करोति । वि
 क्षणं वेत्ति विचारशीलो निजस्वरूपं परमार्थभूतम् ॥ १६१
 देहोऽहमित्येव जडस्य बुद्धिर्देहे च जीवे विदुपस्त्वहंधीः । वि
 कविज्ञानवतो महात्मनो ब्रह्माहमित्येव मतिः सदात्
 ॥ १६२ ॥ अत्रात्मबुद्धिं त्यज मूढबुद्धे त्वञ्चांसमेदोऽस्थि
 पराशौ । सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे कुरुष्व शान्तिं प
 भजस्व ॥ १६३ ॥ देहेन्द्रियादावसति भ्रमोदितां विद्वानह
 न जहाति यावत् । तावन्न तस्यास्ति विमुक्तिवार्ताप्य
 वेदान्तनयान्तदर्शी ॥ १६४ ॥ छायाशरीरे प्रतिबिम्ब
 यत्स्वप्नदेहे हृदि कल्पिताङ्गे । यथात्मबुद्धिस्तव नास्ति का
 जीवच्छरीरे च तथैव मास्तु ॥ १६५ ॥ देहात्मधीरेव क
 मसद्विया जन्मादिदुःखप्रभवस्य बीजम् । यतस्ततस्त्वं जहि
 प्रयत्नात् त्यक्ते तु चित्ते न पुनर्भवाशा ॥ १६६ ॥ कर्मेति
 पञ्चभिरश्रितोऽयं प्राणो भवेत्प्राणमयस्तु कोशः । येनात्म
 नमयोऽन्नपूर्णात् प्रवर्ततेऽसौ सकलक्रियासु ॥ १६७ ॥ द
 त्मापि प्राणमयो वायुविकारो गन्तागन्ता वायुवदन्तर्बहिर्

यस्मात्किञ्चित्क्वापि न वेत्तीष्टमनिष्टं स्वं वान्यं वा किञ्चिन्नित्यं
 परतन्त्रः ॥ १६८ ॥ ज्ञानेन्द्रियाणि च मनश्च मनोमयः स्था-
 त्कोशो ममाहमिति वस्तुविकल्पहेतुः । संज्ञादिभेदकलनाक-
 लितो बलीयांस्तत्पूर्वकोशमभिपूर्य विजृम्भते यः ॥ १६९ ॥
 पञ्चेन्द्रियैः पञ्चभिरेव होतृभिः प्रचीयमानो विषयाज्यधारया ।
 जाज्वल्यमानो बहुवासनेन्धनैर्मनोमयाग्निर्वहति प्रपञ्चम् ॥ १७० ॥
 नह्यस्त्यविद्या मनसोऽतिरिक्ता मनो ह्यविद्या भवबन्धहेतुः ।
 तस्मिन्निनष्टे सकलं विनष्टं विजृम्भतेऽस्मिन्सकलं विजृम्भते
 ॥ १७१ ॥ स्वप्नेऽथ शून्ये सृजति स्वशक्त्या भोक्तादिविश्वं मन
 एव सर्वम् । तथैव जाग्रत्यपि नो विशेषस्तत्सर्वमेतन्मनसो वि-
 जृम्भणम् ॥ १७२ ॥ सुषुप्तिकाले मनसि प्रलीने नैवास्ति किं-
 चित्सकलग्रसिद्धेः । अतो मनःकल्पित एव पुंसः संसार एतस्य
 न वस्तुतोऽस्ति ॥ १७३ ॥ वायुनाऽऽनीयते मेघः पुनस्तेनैव
 नीयते । मनसा कल्प्यते बन्धो मोक्षस्तेनैव कल्प्यते ॥ १७४ ॥
 देहादिसर्वविषये परिकल्प्य रागं बध्नाति तेन पुरुषं पशुवद्गु-
 णेन । वैरस्यमत्र विषवत्सुविधाय पश्चादेनं विमोचयति तन्मन
 एव बन्धात् ॥ १७५ ॥ तस्मान्मनः कारणमस्य जन्तोर्वन्धस्य
 मोक्षस्य च वा विधाने । बन्धस्य हेतोर्मलिनं रजोगुणैर्मोक्षस्य
 शुद्धं विरजस्तमस्कम् ॥ १७६ ॥ विवेकवैराग्यगुणातिरेका-
 च्छुद्धतमासाद्य मनो विमुक्त्यै । भवत्यतो बुद्धिमतो मुमुक्षो-
 स्ताभ्यां दृढाभ्यां भवितव्यमग्रे ॥ १७७ ॥ मनो नाम महा-
 व्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु । चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये
 मुमुक्षवः ॥ १७८ ॥ मनः प्रसृते विषयानशेषान् स्थूलात्मना
 सूक्ष्मतया च भोक्तुः । शरीरवर्णाश्रमजातिभेदान् गुणक्रिया-

हेतुफलानि नित्यम् ॥ १७९ ॥ असङ्गचिद्रूपममुं विमोक्षं
 इन्द्रियप्राणगुणैर्निबध्य । अहंममेति भ्रमयत्यजस्रं मनः
 तेषु फलोपशुक्तिषु ॥ १८० ॥ अध्यासदोषात्पुरुषस्य संश्रु-
 रध्यासबन्धस्त्वमुनैव कल्पितः । रजस्तमोदोषवतो विवेकि-
 जन्मादिदुःखस्य निदानमेतत् ॥ १८१ ॥ अतः प्राहुर्मे-
 ऽविद्यां पण्डितास्तत्त्वदर्शिनः । येनैव भ्राम्यते विश्वं वायुने-
 भ्रमण्डलम् ॥ १८२ ॥ तन्मनःशोधनं कार्यं प्रयत्नेन मुमुक्षु-
 विशुद्धे सति चैतस्मिन्मुक्तिः करफलायते ॥ १८३ ॥ मोक्ष-
 सत्तया विषयेषु रागं निर्मूल्य संन्यस्य च सर्वकर्म । सच्चि-
 यः श्रवणादिनिष्ठो रजःस्वभावं स धुनोति बुद्धेः ॥ १८४ ॥ क-
 मयो नापि भवेत्परात्मा ह्याद्यन्तवच्चात्परिणामिभावात् ॥
 स्वात्मकत्वाद्विषयत्वहेतोर्द्रष्टा हि दृश्यात्मतया न दृष्टः ॥ १८५ ॥
 बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः कर्तृलक्षणः । विज्ञानमयस्य
 स्यात्पुंसः संसारकारणम् ॥ १८६ ॥ अनुव्रजचित्प्रतिबिम्ब-
 क्तिर्विज्ञानसंज्ञः प्रकृतेर्विकारः । ज्ञानक्रियावानहमित्यजस्रं
 इन्द्रियादिष्वभिमन्यते भृशम् ॥ १८७ ॥ अनादिकालोऽय-
 स्वभावो जीवः समस्तव्यवहारबोधा । करोति कर्माण्यपि
 वासनः पुण्यान्यपुण्यान्यपि तत्फलानि ॥ १८८ ॥ भुङ्क्ते वि-
 त्तास्वपि योनिषु व्रजन्नायाति निर्यात्यथ ऊर्ध्वमेव । अत-
 विज्ञानमयस्य जाग्रत्स्वप्नावस्थासुखदुःखभोगः ॥ १८९ ॥
 देहादिनिष्ठाश्रमधर्मकर्मगुणाभिमानं सततं ममेति । विज्ञ-
 कोशोऽयमतिप्रकाशः प्रकृत्यसान्निध्यवशात्परात्मना ।
 भवत्येव उपाधिरस्य यदात्मधीः संसरति भ्रमेण ॥ १९० ॥
 योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृदि स्फुरत्यसंश्रुतेति ॥ १९१ ॥

सन्नात्मा कर्ता भोक्ता भवत्युपाधिस्थः ॥ १९१ ॥ स्वयं परि-
च्छेदमुपेत्य बुद्धेस्तादात्म्यदोषेण परं मृपात्मनः । सर्वात्मकः
सन्नपि वीक्षते स्वयं स्वतः पृथक्त्वेन मृदो घटानिव ॥ १९२ ॥
उपाधिसंबन्धवशात्परात्मा ह्युपाधिधर्माननुभाति तद्गुणः ।
अयोविकारानविकारिवद्विवत् सदैकरूपोऽपि परः स्वभावात्
॥ १९३ ॥ अमेणाप्यन्यथा वास्तु जीवभावः परात्मनः । तद्गु-
पाधेरनादितान्नानादेर्नाश इष्यते ॥ १९४ ॥ अतोऽस्य जीव-
भावोऽपि नित्या भवति संसृतिः । न निवर्तेत तन्मोक्षः कथं
मे श्रीगुरो वद ॥ १९५ ॥ सम्यक् पृष्टं त्वया विद्वन्सावधानेन
तच्छृणु । ग्रामाणिकी न भवति भ्रान्त्या मोहितकल्पना १९६
भ्रान्तिं विना त्वसङ्गस्य निष्क्रियस्य निराकृतेः । न घटेतार्थ-
संबन्धो नभसो नीलतादिवत् ॥ १९७ ॥ स्वस्य द्रष्टुर्निर्गुण-
स्याक्रियस्य प्रत्यग्बोधानन्दरूपस्य बुद्धेः । भ्रान्त्या प्राप्तो जीव-
भावो न सत्यो मोहापाये नास्त्यवस्तुस्वभावात् ॥ १९८ ॥
यावद्भ्रान्तिस्तावदेवास्य सत्ता मिथ्याज्ञानोज्जृम्भितस्य प्रमा-
दात् । रज्ज्वां सर्पो भ्रान्तिकालीन एव भ्रान्तेर्नाशे नैव सर्पो-
ऽपि तद्वत् ॥ १९९ ॥ अनादित्वमविद्यायाः कार्यस्यापि तथे-
ष्यते । उत्पन्नायां तु विद्यायामविद्यकमनाद्यपि ॥ २०० ॥
प्रबोधे स्वप्नवत्सर्वं सहमूलं विनश्यति । अनाद्यपीदं नो नित्यं
प्रागभाव इव स्फुटम् ॥ २०१ ॥ अनादेरपि विध्वंसः प्राग-
भावस्य वीक्षितः । यद्बुद्ध्योपाधिसंबन्धात्परिकल्पितमात्मनि
॥ २०२ ॥ जीवत्वं न ततोऽन्यत्तु स्वरूपेण विलक्षणः । संब-
न्धः स्वात्मनो बुद्ध्या मिथ्याज्ञानपुरस्सरः ॥ २०३ ॥ विनि-
वृत्तिर्भवेत्तस्य सम्यग्ज्ञानेन नान्यथा । ब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानं

सम्यग्ज्ञानं श्रुतेर्मतम् ॥ २०४ ॥ तदात्मानात्मनोः सम्यग्
 वेकेनैव सिद्ध्यति । ततो विवेकः कर्तव्यः प्रत्यगात्मासदात्मा
 नोः ॥ २०५ ॥ जलं पङ्कजदल्यन्तं पङ्कापाये जलं स्फुटम्
 यथा भाति तथात्मापि दोषाभावे स्फुटप्रभः ॥ २०६ ॥ ज
 निवृत्तौ तु सदात्मना स्फुटं प्रतीतिरेतस्य भवेत्प्रतीचः । त
 निरासः करणीय एव सदात्मनः साध्वहमादिवस्तुनः ॥ २०७ ॥
 अतो नायं परात्मा स्याद्विज्ञानमयशब्दभाक् । विकारित्वात्
 त्वाच्च परिच्छिन्नत्वहेतुतः दृश्यत्वाच्चभिचारित्वान्नानित्यो नि
 दृष्यते ॥ २०८ ॥ आनन्दप्रतिबिम्बचुम्बिततनुवृत्तिस्तमो
 म्भिता स्यादानन्दमयः प्रियादिगुणकः स्वेष्टार्थलाभोदयः । पु
 स्यानुभवे विभाति कृतिनामानन्दरूपः स्वयं भूत्वा नन्दति
 साधुतनुभृन्मात्रः प्रयत्नं विना ॥ २०९ ॥ आनन्दमयकोशस्य
 सौ स्फूर्तिरुत्कटा । स्वप्नजागरयोरीपदिष्टसंदर्शनादिना ॥ २१० ॥
 नैवायमानन्दमयः परात्मा सोपाधिकत्वात्प्रकृतेर्विकारात् ।
 र्यत्नहेतोः सुकृतक्रियाया विकारसंघातसमाहितत्वात् ॥ २११ ॥
 पञ्चानामपि कोशानां निषेधे युक्तितः श्रुतेः । तन्निषेधार्थं
 साक्षी बोधरूपोऽवशिष्यते ॥ २१२ ॥ योज्यमात्मा स्वयं
 तिः पञ्चकोशविलक्षणः । अवस्थात्रयसाक्षी सन्निर्विकारी नि
 ज्ञनः ॥ २१३ ॥ सदानन्दः स विज्ञेयः स्वात्मत्वेन विपश्चि
 मिध्यात्वेन निषिद्धेषु कोशेष्वेतेषु पञ्चसु । सर्वाभावं नि
 किञ्चिन्न पश्याम्यत्र हे गुरो । विज्ञेयं किमु वस्त्वस्ति स्वा
 नात्मविपश्चिता ॥ २१५ ॥ सत्यमुक्तं त्वया विद्वन्निपुणो
 विचारणे । अहमादिविकारास्ते तदभावोऽयमप्यनु ॥ २१६ ॥
 सर्वे येनानुभूयन्ते यः स्वयं नानुभूयते । तस्मात्मानं वेदि

विद्धि बुद्ध्या सुसूक्ष्मया ॥ २१७ ॥ तत्साक्षिकं भवेत्तत्तद्यद्य-
 धेनानुभूयते । कस्याप्यननुभूतार्थं साक्षितं नोपयुज्यते ॥ २१८ ॥
 असौ स्वसाक्षिको भावो यतः स्वेनानुभूयते । अतः परं स्वयं
 साक्षात्प्रत्यगात्मा न चेतः ॥ २१९ ॥ जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु
 स्फुटतरं योऽसौ समुज्जृम्भते प्रत्यग्रूपतया सदाहमहमित्यन्तः
 स्फुरन्नैकधा । नानाकारविकारभागिन इमान्पश्यन्नहंभीमुखा-
 न्नित्यानन्दचिदात्मना स्फुरति तं विद्धि स्वमेतं हृदि ॥ २२० ॥
 घटोदके विम्बितमर्कविम्बमालोक्य मूढो रविमेव मन्यते ।
 तथा चिदाभासमुपाधिसंस्थं भ्रान्त्याहमित्येव जडोऽभिमन्यते
 ॥ २२१ ॥ घटं जलं तद्गतमर्कविम्बं विहाय सर्वं विनिरीक्ष्य-
 तेऽर्कः । तदस्थ एतन्नितयावभासकः स्वयंप्रकाशो विदुषा यथा
 यथा ॥ २२२ ॥ देहं धियं चित्प्रतिविम्बमेव विसृज्य बुद्धौ
 निहितं गुहायाम् । द्रष्टारमात्मानमखण्डबोधं सर्वप्रकाशं सद-
 सद्बिलक्षणम् ॥ २२३ ॥ नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्ममन्तर्बहिः
 शून्यमनन्यमात्मनः । विज्ञाय सम्यङ्निजरूपमेतं पुमान्विपा-
 प्मा विरजो विमृत्युः ॥ २२४ ॥ विशोक आनन्दघनो विप-
 र्थित् स्वयं कुतश्चिन्न विमेति कश्चित् । नान्योऽस्ति पन्था भव-
 बन्धमुक्तेर्विना स्वतत्त्वावगमं मुमुक्षोः ॥ २२५ ॥ ब्रह्माभिन्न-
 त्वविज्ञानं भवमोक्षस्य कारणम् । येनाऽद्वितीयमानन्दं ब्रह्म
 संपद्यते बुधैः ॥ २२६ ॥ ब्रह्मभूतस्तु संसृत्यै विद्वान्नावर्तते
 पुनः । विज्ञातव्यमतः सम्यग्ब्रह्माभिन्नत्वमात्मनः ॥ २२७ ॥
 सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म विशुद्धं परं स्वतःसिद्धम् । नित्यानन्दै-
 करसं प्रत्यगभिन्नं निरन्तरं जयति ॥ २२८ ॥ सदिदं परमा-
 द्वैतं स्वसादन्यस्य वस्तुनोऽभावात् । न ह्यन्यदस्ति किञ्चित्सम्यक्

परमार्थबोधदशायाम् ॥ २२९ ॥ यदिदं सकलं विश्वं न
 रूपं प्रतीतमज्ञानात् । तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेषभावनादे
 ॥ २३० ॥ मृत्कार्यभूतोऽपि मृदो न भिन्नः कुम्भोऽस्ति न
 तु मृत्स्वरूपात् । न कुम्भरूपं पृथगस्ति कुम्भः कुतो
 कल्पितनाममात्रः ॥ २३१ ॥ केनाऽपि मृद्भिन्नतया स
 घटस्य संदर्शयितुं न शक्यते । अतो घटः कल्पित एव मे
 न्मृदेव सत्यं परमार्थभूतम् ॥ २३२ ॥ सद्ब्रह्मकार्यं स
 सदैव तन्मात्रमेतन्न ततोऽन्यदस्ति । अस्तीति यो वक्ति न
 मोहो विनिर्गतो निद्रितवत्प्रजल्पः ॥ २३३ ॥ ब्रह्मैवेदं वि
 मित्येव वाणी श्रौती ब्रूतेऽथर्वनिष्ठा वरिष्ठा । तस्मादेतद्ब्रह्म
 हि विश्वं नाधिष्ठानाद्भिन्नतारोपितस्य ॥ २३४ ॥ सत्यं
 स्याज्जगदेतदात्मना न तच्चहानिर्निगमाप्रमाणता । असत्
 दित्तमपीक्षितुः स्यान्नैतन्नयं साधु हितं महात्मनाम् ॥ २३५ ॥
 ईश्वरो वस्तुतत्त्वज्ञो न चाहं तेष्ववस्थितः । नच मत्स्थानि
 नीत्येवमेव व्यचीकृषत् ॥ २३६ ॥ यदि सत्यं भवेद्विश्वं सुख
 पलभ्यताम् । तन्नोपलभ्यते किञ्चिदतोऽसत्स्वप्नवन्मृषा ॥ २३७ ॥
 अतः पृथङ्नास्ति जगत्परात्मनः पृथक्प्रतीतिस्तु मृषा शु
 दिवत् । आरोपितस्यास्ति किमर्थवत्ताऽधिष्ठानमाभाति त
 अमेण ॥ २३८ ॥ आन्तस्य यद्यद्वमतः प्रतीतं ब्रह्मैव त
 जतं हि शुक्तिः । इदंतया ब्रह्म सदैव रूप्यते त्वारोपितं ब्र
 नाममात्रम् ॥ २३९ ॥ अतः परं ब्रह्म सदद्वितीयं विशु
 ज्ञानधनं निरञ्जनम् । प्रशान्तमाद्यन्तविहीनमक्रियं निर
 नन्दरसस्वरूपम् ॥ २४० ॥ निरस्तमायाकृतसर्वभेदं नित्यं
 निष्कलमप्रमेयम् । अरूपमन्यक्तमनाद्युपाख्यं ज्योतिः

किञ्चिदिदं चकास्ति ॥ २४१ ॥ ज्ञातृज्ञेयज्ञानशून्यमनन्तं नि-
र्विकल्पकम् । केवलाखण्डचिन्मात्रं परं तत्त्वं विदुर्बुधाः ॥ २४२ ॥
अहेयमनुपादेयं मनोवाचामगोचरम् । अप्रमेयमनाद्यन्तं ब्रह्म पू-
र्णमहं महः ॥ २४३ ॥ तत्त्वं पदाम्भ्यामभिधीयमानयोर्ब्रह्मात्म-
नोः शोधितयोर्यदीत्यम् । श्रुत्या तयोस्तत्त्वमसीति सम्यगेक-
त्वमेव प्रतिपाद्यते मुहुः ॥ २४४ ॥ ऐक्यं तयोर्लक्षितयोर्न
वाच्ययोर्निगद्यतेऽन्योन्यविरुद्धधर्मिणोः । खद्योतमान्वोरिव रा-
जभृत्ययोः कूपाम्बुराशयोः परमाणुमेवोः ॥ २४५ ॥ तयोर्वि-
रोधोऽयमुपाधिकल्पितो न वास्तवः कश्चिदुपाधिरेव । ईशस्य
माया महदादिकारणं जीवस्य कार्यं शृणु पञ्चकोशम् ॥ २४६ ॥
एतावुपाधी परजीवयोस्तयोः सम्यङ्गिरासेन परो न जीवः ।
राज्यं नरेन्द्रस्य भटस्य खेटकस्तयोरपोहेन भटो न राजा ॥ २४७ ॥
अथात आदेश इति श्रुतिः स्वयं निपेधति ब्रह्मणि कल्पितं
द्वयम् । श्रुतिप्रमाणानुगृहीतवोधात्तयोर्निरासः करणीय एवम्
॥ २४८ ॥ नेदं नेदं कल्पितत्वाच्च सत्यं रज्जुदृष्टव्यालवत्स्वप्न-
वच्च । इत्थं दृश्यं साधु युक्त्या व्यपोह्य ज्ञेयः पश्चादेकभावस्त-
योर्यः ॥ २४९ ॥ ततस्तु तौ लक्षणया सुलक्ष्यौ तयोरखण्डै-
करसत्त्वसिद्धये । नालं जहत्या न तथाऽजहत्या किंतु भयार्था-
त्मिकयैव भाव्यम् ॥ २५० ॥ स देवदत्तोऽयमितीह वैकृता
विरुद्धधर्मांशमपास्य कथ्यते । यथा तथा तत्त्वमसीति वाक्ये
विरुद्धधर्मानुभयत्र हिता ॥ २५१ ॥ संलक्ष्य चिन्मात्रतया
सदात्मनोरखण्डभावः परिचीयते बुधैः । एवं महावाक्यशतेन
कथ्यते ब्रह्मात्मनोरैक्यमखण्डभावः ॥ २५२ ॥ अस्थूलमित्ये-
तदसन्निरस्य सिद्धं स्वतो व्योमवदप्रतर्क्यम् । अतो मृषामात्र-

मिदं प्रतीतं जहीहि यत्स्वात्मतया गृहीतम् । ब्रह्माहं
 विशुद्धबुद्ध्या विद्धि स्वमात्मानमखण्डबोधम् ॥२५४॥ मृत
 सकलं घटादि सततं मृन्मात्रमेवाहितं तद्वत्सञ्जनितं सदा
 कमिदं सन्मात्रमेवाखिलम् । यस्मान्नास्ति सतः परं किमपि त
 त्यं स आत्मा स्वयं तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्तममलं ब्रह्माद्वयं
 रम् ॥ २५५ ॥ निद्राकल्पितदेशकालविषयज्ञात्रादिसर्वं
 मिथ्या तद्वदिहापि जाग्रति जगत्स्वाज्ञानकार्यत्वतः । यस्मा
 मिदं शरीरकरणप्राणाहमाद्यप्यसत् तस्मात्तत्त्वमसि प्रशान्त
 ब्रह्माद्वयं यत्परम् ॥ २५६ ॥ जातिनीतिकुलगोत्रदूरगं ना
 पगुणदोषवर्जितम् । देशकालविषयातिवर्ति यद्ब्रह्म तत्त्व
 भावयात्मनि ॥ २५७ ॥ यत्परं सकलरागगोचरं गोचरं
 लबोधचक्षुषः । शुद्धचिद्धनमनादिवस्तु यद्ब्रह्म तत्त्वमसि
 यात्मनि ॥ २५८ ॥ पद्मभिरुर्मिभिरयोगियोगिहृद्भावि
 करणैर्विभावितम् । बुद्ध्यवेद्यमनवेद्यमस्ति यद्ब्रह्म तत्त्वमसि
 यात्मनि ॥ २५९ ॥ भ्रान्तिकल्पितजगत्कलाश्रयं स्वाश्रयं
 सदसद्विलक्षणम् । निष्कलं निरुपमानवद्धि यद्ब्रह्म तत्त्व
 भावयात्मनि ॥ २६० ॥ जन्मवृद्धिपरिणत्यपक्षयव्यापि
 नविहीनमव्ययम् । विश्वसृष्ट्यवनधातकारणं ब्रह्म तत्त्व
 भावयात्मनि ॥ २६१ ॥ अस्तभेदमनपास्तलक्षणं निस्तरङ्ग
 राशिनिश्चलम् । नित्यमुक्तमविभक्तमूर्तिं यद्ब्रह्म तत्त्वमसि
 यात्मनि ॥ २६२ ॥ एकमेव सदानेककारणं कारणान्तर्नि
 स्यकारणम् । कार्यकारणविलक्षणं स्वयं ब्रह्म तत्त्वमसि
 त्मनि ॥ २६३ ॥ निर्विकल्पकमनल्पमक्षरं यत्क्षराक्षरविल
 परम् । नित्यमव्ययमुखं निराश्रयं ब्रह्म तत्त्वमसि भावया

॥ २६४ ॥ यद्विभाति सदनैकधा भ्रमानामरूपगुणविक्रिया-
त्मना । हेमवत्स्वयमविक्रियं सदा ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि
॥ २६५ ॥ यच्चकास्त्यनपरं परात्परं प्रत्यगेकरसमात्मलक्षणम् ।
सत्यचित्सुखमनन्तमव्ययं ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि २६६
उक्तमर्थमिममात्मनि स्वयं भावयेत्प्रथितयुक्तिभिर्धिया । संश-
यादिरहितं कराम्बुवत्तेन तत्त्वनिगमो भविष्यति ॥ २६७ ॥
संबोधमात्रं परिशुद्धतत्त्वं विज्ञाय सङ्गे नृपवच्च सैन्ये । तदा-
श्रयः स्वात्मनि सर्वदा स्थितो विलापय ब्रह्मणि विश्वजातम्
॥ २६८ ॥ बुद्धौ गुहायां सदसद्विलक्षणं ब्रह्मास्ति सत्यं परम-
द्वितीयम् । तदात्मना योज्य वसेद्गुहायां पुनर्न तस्याङ्ग गुहा-
प्रवेशः ॥ २६९ ॥ ज्ञाते वस्तुन्यपि बलवती वासनानादिरेषा
कर्ता भोक्ताप्यहमिति दृढा यास्य संसारहेतुः । प्रत्यग्वृष्ट्यात्मनि
निवसता सापनेया प्रयत्नान्मुक्तिं प्राप्नुस्तदिह मुनयो वासना-
तानवं यत् ॥ २७० ॥ अहं ममेति यो भावो देहाक्ष्यादावना-
त्मनि । अध्यासोऽयं निरस्तव्यो विदुषा स्वात्मनिष्ठया ॥ २७१ ॥
ज्ञात्वा स्वं प्रत्यगात्मानं बुद्धितद्बुक्तिसाक्षिणम् । सोऽहमित्येव
सद्बुद्ध्यानात्मन्यात्ममतिं जहि ॥ २७२ ॥ लोकानुवर्तनं त्यक्त्वा
त्यक्त्वा देहानुवर्तनम् । शास्त्रानुवर्तनं त्यक्त्वा स्वाध्यासापनयं
कुरु ॥ २७३ ॥ लोकवासनया जन्तोः शास्त्रवासनयापि च ।
देहवासनया ज्ञानं यथावन्नैव जायते ॥ २७४ ॥ संसारकारा-
गृहमोक्षमिच्छोरयोमयं पादनिबन्धमृङ्खलम् । वदन्ति तज्ज्ञाः
पदुवासनात्रयं योऽस्माद्विमुक्तः समुपैति मुक्तिम् ॥ २७५ ॥
जलादिसंपर्कवशात्प्रभूतदुर्गन्धधूतागुरुदिव्यवासना । संघर्ष-
णेनैव विभाति सम्यग्विधूयमाने सति बाह्यगन्धे ॥ २७६ ॥

अन्तःश्रितानन्तदुरन्तवासनाधूलीविलिप्ता परमात्मवासना
 प्रज्ञातिसंघर्षणतो विशुद्धा प्रतीयते चन्दनगन्धवत्स्फुटम् २
 यथा यथा प्रत्यगवस्थितं मनस्तथा तथा मुञ्चति ब्राह्मवासना
 निःशेषमोक्षे सति वासनानामात्मानुभूतिः प्रतिबन्धश्च
 ॥ २७८ ॥ स्वात्मन्येव सदा स्थित्वा मनो नश्यति योगि
 वासनानां क्षयश्चातः स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २७९ ॥
 द्वाभ्यां रजः सत्त्वात्सत्त्वं शुद्धेन नश्यति । तस्मात्सत्त्वमव
 स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८० ॥ आरब्धं पुण्यति वपुरिति नि
 त्य निश्चलः । धैर्यमालम्ब्य यत्नेन स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८१ ॥
 नाहं जीवः परंब्रह्मेत्येतद्वावृत्तिपूर्वकम् । वासनावेगतः
 स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८२ ॥ श्रुत्या युक्त्या स्वानु
 ज्ञात्वा सार्वान्मात्मनः । कचिदाभासतः प्राप्तस्वाध्यास
 नयं कुरु ॥ २८३ ॥ अनादानविसर्गाभ्यामीपन्नास्ति कि
 मुनेः । तदेकनिष्ठया नित्यं स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८४ ॥
 तत्त्वमस्यादिवाक्योत्थब्रह्मात्मैकत्वबोधतः । ब्रह्मण्यात्मस
 र्व्वाय स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८५ ॥ अहंभावस्य देहेर्ज
 निःशेषविलयावधि । सावधानेन युक्तात्मा स्वाध्यासाप
 नयं कुरु ॥ २८६ ॥ प्रतीतिर्जीवजगतोः स्वप्नवद्भाति यावत्
 तावन्निरन्तरं विद्वन्स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८७ ॥ निद्रा
 लोकवार्तायाः शब्दादेरपि विस्मृतेः । कचिन्नावसरं दत्ता
 न्तयात्मानमात्मनि ॥ २८८ ॥ मातापित्रोर्मलोद्भूतं मलमा
 मयं वपुः । त्यक्त्वा चाण्डालवह्नं ब्रह्मीभूय कृती भव ॥ २८९ ॥
 स्वप्रकाशमधिष्ठानं स्वयंभूय सदात्मनि । ब्रह्माण्डमपि पिण्डा
 त्यज्यतां मलमाण्डवत् ॥ २९० ॥ घटाकाशं महाकाशं

त्मानं परात्मनि । विलाप्याखण्डभावेन तूष्णींभव महामुने
 ॥ २९१ ॥ चिदात्मनि सदानन्दे देहारूढामहंधियम् । निवेश्य
 लिङ्गमुत्सृज्य केवलो भव सर्वदा ॥ २९२ ॥ यत्रैव जगदा-
 भासो दर्पणान्तःपुरं यथा । तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कृतकृत्यो
 भविष्यसि ॥ २९३ ॥ यत्सत्यभूतं निजरूपमाद्यं चिदद्वयान-
 न्दमरूपमक्रियम् । तदेत्य मिथ्यावपुरुत्सृजेत शैलपवद्वेपमुपा-
 त्तमात्मनः ॥ २९४ ॥ सर्वात्मना दृश्यमिदं मृपैव नैवाहमर्थः
 क्षणिकत्वदर्शनात् । जानाम्यहं सर्वमिदं प्रतीतिः कुतोऽहमादेः
 क्षणिकस्य सिद्धेत् ॥ २९५ ॥ अहंपदार्थस्त्वहमादिसाक्षी नित्यं
 सुषुप्तावपि भावदर्शनात् । ब्रूते ह्यजो नित्य इति श्रुतिः स्वयं
 तत्प्रत्यगात्मा सदसद्विलक्षणः ॥ २९६ ॥ विकारिणां सर्ववि-
 कारवेत्ता नित्याविकारो भवितुं समर्हति । मनोरथस्वप्नसुषु-
 प्तिषु स्फुटं पुनः पुनर्दृष्टमसत्त्वमेतयोः ॥ २९७ ॥ अतोऽभिमानं
 त्यज मांसपिण्डे पिण्डाभिमानिन्यपि बुद्धिकल्पिते । कालत्रया-
 वाध्यमखण्डबोधं ज्ञात्वा स्वमात्मानमुपैहि शान्तिम् ॥ २९८ ॥
 त्यजाभिमानं कुलगोत्रनामरूपाश्रमेष्वाद्रिशवाश्रितेषु । लिङ्गस्य
 धर्मानपि कर्तृतादींस्त्यक्त्वा भवाखण्डसुखस्वरूपः ॥ २९९ ॥
 सन्त्यन्ये प्रतिबन्धाः पुंसः संसारहेतवो दृष्टाः । तेषामेवं मूलं
 प्रथमविकारो भवत्यहंकारः ॥ ३०० ॥ यावत्स्यात्स्वस्य संब-
 न्धोऽहंकारेण दुरात्मना । तावन्न लेशमात्रापि मुक्तिवार्ता विल-
 क्षणा ॥ ३०१ ॥ अहंकारग्रहान्मुक्तः स्वरूपमुपपद्यते । चन्द्रव-
 द्विमलः पूर्णः सदानन्दः स्वयंप्रभः ॥ ३०२ ॥ यो वा पुरे
 सोऽहमिति प्रतीतो बुद्ध्या ब्रह्मस्तमसातिमूढया । तस्यैव निः-
 शेषतया विनाशे ब्रह्मात्मभावः प्रतिबन्धशून्यः ॥ ३०३ ॥

ब्रह्मानन्दनिधिर्महाबलवताहंकारघोराहिना संवेष्ट्यात्मनि स
 ते गुणमयैश्चण्डैस्त्रिभिर्मस्तकैः । विज्ञानाख्यमहासिना शुक्ति
 विच्छिद्य शीर्षत्रयं निर्मूल्याहिमिमं निधिं सुखकरं धीतो
 भोक्तुं क्षमः ॥ ३०४ ॥ यावद्वा यत्किंचिद्विषदोपस्फूर्ति
 चेदेहे । कथमारोग्याय भवेत्तद्वदहंताऽपि योगिनो मुक्त्यै ॥ ३०५ ॥
 अहमोऽत्यन्तनिवृत्त्या तत्कृतनानाविकल्पसंहत्या । प्रत्यक्ष
 विवेकादिदमहमस्मीति विन्दते तत्त्वम् ॥ ३०६ ॥ अहं
 कर्तर्यहमिति मतिं मुञ्च सहसा विकारात्मन्यात्मप्रतिफल
 स्वस्थितिमुपि । यदध्यासात्प्राप्ता जनिमृतिजरादुःखबहुला
 चञ्चिन्मूर्तेस्तव सुखतनोः संसृतिरियम् ॥ ३०७ ॥ सदैक
 चिदात्मनो विभोरानन्दमूर्तेरनवद्यकीर्तेः । नैवान्यथा क
 विकारिणस्ते विनाहमध्यासममुष्य संसृतिः ॥ ३०८ ॥ अ
 दहंकारमिमं स्वशत्रुं भोक्तुर्गले कण्टकवत्प्रतीतम् । विवि
 विज्ञानमहासिना स्फुटं शुद्धात्मसाम्राज्यसुखं यथेष्टम् ॥ ३०९ ॥
 ततोऽहमादेर्विनिवर्त्य वृत्तिं संत्यक्तरागः परमार्थलाभा
 तूर्णीं समास्वात्मसुखानुभूत्या पूर्णात्मना ब्रह्मणि निर्वि
 ॥ ३१० ॥ समूलकृत्तोऽपि महानहं पुनर्व्युल्लेखितः स्व
 चेतसा क्षणम् । संजीव्य विक्षेपशतं करोति नमस्वता प्रा
 वारिदो यथा ॥ ३११ ॥ निगृह्य शत्रोरहमोऽवकाशः क
 देयो विषयानुचिन्तया । स एव संजीवनहेतुरस्य प्रक्षीणज
 रतरोरिवाम्बु ॥ ३१२ ॥ देहात्मना संस्थित एव कामी
 क्षणः कामयिता कथं स्यात् । अतोऽर्थसन्धानपरत्नमेव
 सत्तया भवबन्धहेतुः ॥ ३१३ ॥ कार्यप्रवर्धनाद्वीजप्रवृद्धिः
 दृश्यते । कार्यनाशाद्वीजनशस्तसाद्वीजं निरोधयेत् ॥ ३१४ ॥

वासनावृद्धितः कार्यं कार्यवृद्ध्या च वासना । वर्धते सर्वथा
 पुंसः संसारो न निवर्तते ॥ ३१५ ॥ संसारबन्धविच्छिन्न्यै
 तद्वयं प्रदहेद्यतिः । वासनावृद्धिरेताभ्यां चिन्तया क्रियया
 वहिः ॥ ३१६ ॥ ताभ्यां प्रवर्धमाना सा सूते संसृतिमात्मनः ।
 त्रयाणां च क्षयोपायाः सर्वावस्थासु सर्वदा ॥ ३१७ ॥ सर्वत्र
 सर्वदा सर्वं ब्रह्ममात्रावलोकनैः । सद्भाववासनादाढ्यात्तत्रयं
 लयमश्नुते ॥ ३१८ ॥ क्रियानाशे भवेचिन्ता नाशोऽस्माद्वासना-
 क्षयः । वासनाप्रक्षयो मोक्षः सा जीवन्मुक्तिरिष्यते ॥ ३१९ ॥
 सद्वासनास्फूर्तिविजृम्भणे सत्यसौ विलीनाप्यहमादिवासना ।
 अतिप्रकृष्टाप्यरुणप्रभायां विलीयते साधु यथा तमिस्रा ॥ ३२० ॥
 तमस्तमः कार्यमनर्थजालं न दृश्यते सत्युदिते दिनेशे । तथा-
 ऽद्वयानन्दरसानुभूतौ नैवास्ति बन्धो न च दुःखगन्धः ॥ ३२१ ॥
 दृश्यं प्रतीतं प्रविलापयन्सन् सन्मात्रमानन्दधनं विभावयन् ।
 समाहितः सन्वाहिरन्तरं वा कालं नयेथाः सति कर्मबन्धे
 ॥ ३२२ ॥ प्रमादो ब्रह्मनिष्ठायां न कर्तव्यः कदाचन । प्रमादो
 मृत्युरित्याह भगवान्ब्रह्मणः सुतः ॥ ३२३ ॥ न प्रमादादनर्थो-
 ऽन्यो ज्ञानिनः स्वस्वरूपतः । ततो मोहस्ततोऽहंभीस्ततो बन्ध-
 स्ततो व्यथा ॥ ३२४ ॥ विषयाभिमुखं दृष्ट्वा विद्वांसमपि
 विस्मृतिः । विक्षेपयति धीदोषैर्योपा जारमिव प्रियम् ॥ ३२५ ॥
 यथापकृष्टं शैवालं क्षणमात्रं न तिष्ठति । आवृणोति तथा
 माया प्राज्ञं वापि पराञ्जुखम् ॥ ३२६ ॥ लक्ष्यच्युतं चेद्यदि
 चित्तमीषद्वहिर्मुखं संनिपतेत्ततस्ततः । प्रमादतः प्रच्युतकेलि-
 कन्दुकः सोपानपङ्क्तौ पतितो यथा तथा ॥ ३२७ ॥ विषये-
 प्वाविशचेतः संकल्पयति तद्गुणान् । सम्यक् संकल्पनात्कामः

कामात्पुंसः प्रवर्तनम् ॥ ३२८ ॥ अतः प्रमादान्न पणो
 मृत्युविवेकिनो ब्रह्मविदः समाधौ । समाहितः सिद्धिं
 सम्यक् समाहितात्मा भव सावधानः ॥ ३२९ ॥ ततः
 पवित्रंशो विभ्रष्टस्तु पतत्यधः । पतितस्य चिना नाशं पुन
 रोह ईक्ष्यते ॥ ३३० ॥ संकल्पं वर्जयेत्तस्मात्सर्वानर्थस्य क
 णम् । जीवतो यस्य कैवल्यं विदेहे स च केवलः ॥ यत्किं
 त्पश्यतो भेदं भयं ब्रूते यजुःश्रुतिः ॥ ३३१ ॥ यदा
 वापि विपश्चिदेऽप ब्रह्मण्यनन्तेऽप्यणुमात्रभेदम् । पश्यत्यथान
 भयं तदैव यद्वीक्षितं भिन्नतया प्रमादात् ॥ ३३२ ॥ श्रुति
 तिन्यायशतैर्निपिद्धे दृश्येऽत्र यः स्वात्ममतिं करोति । ज
 दुःखोपरि दुःखजातं निपिद्धकर्ता स मलिम्लुचो यथा ॥ ३३३ ॥
 सत्याभिसन्धानरतो विमुक्तो महत्त्वमात्मीयमुपैति नित्य
 मिथ्याभिसंधानरतस्तु नश्येद्दुष्टं तदेतद्यदचौरचौरयोः ॥ ३३४ ॥
 यतिरसदनुसन्धिं बन्धहेतुं विहाय स्वयमयमहमस्मीत्यात्मद
 तिष्ठेत् । सुखयति ननु निष्ठा ब्रह्मणि स्वानुभूत्या हरति प
 विद्याकार्यदुःखं प्रतीतम् ॥ ३३५ ॥ बाह्यानुसन्धिः पति
 येत्फलं दुर्वासनामेव ततस्ततोऽधिकाम् । ज्ञात्वा विवेकैः
 हृत्य बाह्यं स्वात्मानुसन्धिं विदधीत नित्यम् ॥ ३३६ ॥
 निरुद्धे मनसः प्रसन्नता मनःप्रसादे परमात्मदर्शनम् । त
 न्नुद्वेगं भवबन्धनाशो बहिर्निरोधः पदवीं विमुक्तेः ॥ ३३७ ॥
 कः पण्डितः सन्सदसद्विवेकी श्रुतिप्रमाणः परमार्थदर्शी ।
 नन्हि कुर्यादसतोऽवलम्ब्य स्वपातहेतोः शिशुवन्मुमुक्षुः ॥ ३३८ ॥
 देहादिसंसक्तिमतो न मुक्तिर्मुक्तस्य देहाद्यभिमत्यभावः । ज
 नो जागरणं न जाग्रतः स्वप्नस्तयोर्भिन्नमुपाश्रयत्वात् ॥ ३३९ ॥

अन्तर्बहिः स्वं स्थिरजङ्गमेषु ज्ञात्वात्मनाधारतया विलोक्य ।
 त्यक्ताखिलोपाधिरखण्डरूपः पूर्णात्मना यः स्थित एष मुक्तः
 ॥ ३४० ॥ सर्वात्मना बन्धविमुक्तिहेतुः सर्वात्मभावान्न परो-
 ऽस्ति कश्चित् । दृश्याग्रहे सत्युपपद्यतेऽसौ सर्वात्मभावोऽस्य
 सदात्मनिष्ठया ॥ ३४१ ॥ दृश्यस्याग्रहणं कथं तु घटते देहात्मना
 तिष्ठतो बाह्यार्थानुभवप्रसक्तमनसस्तत्तत्क्रियां कुर्वतः । संन्य-
 स्ताखिलधर्मकर्मविपर्ययैर्नित्यात्मनिष्ठापरैस्तत्त्वज्ञैः करणीयमा-
 त्मनि सदानन्देच्छुभिर्यत्नतः ॥ ३४२ ॥ सर्वात्मसिद्धये भिक्षोः
 कृतश्रवणकर्मणः । समाधिं विदधात्येषा शान्तो दान्त इति
 श्रुतिः ॥ ३४३ ॥ आरूढशक्तेरहमो विनाशः कर्तुं न शक्यः
 सहसापि पण्डितैः । ये निर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चलास्तानन्त-
 रानन्तभवा हि वासनाः ॥ ३४४ ॥ अहंबुद्ध्यैव मोहिन्या योज-
 यित्वाऽऽवृतेर्वलात् । विक्षेपशक्तिः पुरुषं विक्षेपयति तद्गुणैः
 ॥ ३४५ ॥ विक्षेपशक्तिविजयो विषमो विधातुं निःशेषमावरण-
 शक्तिनिवृत्त्यभावे । दृग्दृश्ययोः स्फुटपयोजलवद्विभागे नश्ये-
 तदावरणमात्मनि च स्वभावात् ॥ ३४६ ॥ निःसंशयेन भवति
 प्रतिबन्धशून्यो विक्षेपणं नहि तदा यदि चेन्मृपार्थं । सम्यग्विवेकः
 स्फुटबोधजन्यो विभज्यदृग्दृश्यपदार्थतत्त्वम् । छिनत्ति मायाकृ-
 तमोहबन्धं यस्माद्विमुक्तस्य पुनर्न संसृतिः ॥ ३४७ ॥ परावरै-
 कत्वविवेकवह्निर्दहत्यविद्याग्रहनं ह्यशेषम् । किं स्यात्पुनः संस-
 रणस्य बीजमद्वैतभावं समुपेयुषोऽस्य ॥ ३४८ ॥ आवरणस्य
 निवृत्तिर्भवति हि सम्यक्पदार्थदर्शनतः । मिथ्याज्ञानविनाश-
 स्तद्विक्षेपजनितदुःखनिवृत्तिः ॥ ३४९ ॥ एतन्नितयं दृष्टं सम्यग्र-
 ज्ञुस्वरूपविज्ञानात् । तस्माद्वस्तु सतत्त्वं ज्ञातव्यं बन्धमुक्तये

विदुषा ॥ ३५० ॥ अयोप्रियोगादिव सत्समन्वयान्मात्रा-
 पेण विजृम्भते धीः । तत्कार्यमेतद्वितयं यतो मृषा दृष्टं
 स्वप्नमनोरथेषु ॥ ३५१ ॥ ततो विकाराः प्रकृतेरहंमुखाः
 वसाना विपयाश्च सर्वे । क्षणेऽन्यथा भावितया ह्यमीषाम-
 मात्मा तु कदापि नान्यथा ॥ ३५२ ॥ नित्याद्वयाखण्डा-
 करूपो बुद्ध्यादिसाक्षी सदसद्विलक्षणः । अहंपदप्रत्ययलक्षित-
 प्रत्यक्सदानन्दधनः परात्मा ॥ ३५३ ॥ इत्थं विपश्चित्
 द्विभज्य निश्चित्य तत्त्वं निजबोधदृष्ट्या । ज्ञात्वा स्वमात्मा-
 खण्डबोधं तेभ्यो विमुक्तः स्वयमेव शाम्यति ॥ ३५४ ॥
 नहृदयग्रन्थेर्निःशेषविलयस्तदा । समाधिना विकल्पेन
 द्वैतात्मदर्शनम् ॥ ३५५ ॥ तमहमिदमितीयं कल्पना-
 दोषात् प्रभवति परमात्मन्यद्वये निर्विशेषे । प्रविलसति स-
 वस्य सर्वो विकल्पो विलयनमुपगच्छेद्वस्तुतत्त्वावधृत्या ॥ ३५६ ॥
 शान्तो दान्तः परमुपरतः क्षान्तियुक्तः समाधिं कुर्वन्नित्य-
 यति यतिः स्वस्य सर्वात्मभावम् । तेनाविद्यातिमिरजनिता-
 दग्ध्वा विकल्पान् ब्रह्माकृत्या निवसति सुखं निष्क्रियो हि
 कल्पः ॥ ३५७ ॥ समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्यं श्रोत्रा-
 तः स्वमहं चिदात्मनि । त एव मुक्ता भवपाशबन्धैर्नानि-
 पारोक्ष्यकथाभिधायिनः ॥ ३५८ ॥ उपाधिभेदात्स-
 भिद्यते चोपाध्यपोहे स्वयमेव केवलः । तस्मादुपाधेर्विल-
 विद्वान् वसेत्सदा कल्पसमाधिनिष्ठया ॥ ३५९ ॥ सति
 नरो याति सद्भावं ह्येकनिष्ठया । कीटको अमरं ध्यायन्
 त्वाय कल्पते ॥ ३६० ॥ क्रियान्तरासक्तिमपास्य
 ध्यायन्तल्लिङ्गं सति भवमृच्छति । तस्य योगी यत्मा

ध्यात्वा समायाति तदेकनिष्ठया ॥ ३६१ ॥ अतीव सूक्ष्मं पर-
मात्मतत्त्वं न स्थूलदृष्ट्या प्रतिपत्तुमर्हति । समाधिनात्यन्तसु-
सूक्ष्मवृत्त्या ज्ञातव्यमयैरतिशुद्धबुद्धिभिः ॥ ३६२ ॥ यथा
सुवर्णं पुटपाकशोधितं त्यक्त्वा मलं स्वात्मगुणं समृच्छति ।
तथा मनः सत्त्वरजस्तमोमलं ध्यानेन सन्त्यज्य समेति तत्त्वम्
॥ ३६३ ॥ निरन्तराभ्यासवशात्तदित्थं पक्वं मनो ब्रह्मणि लीयते
यदा । तदा समाधिः सविकल्पवर्जितः स्वतोऽद्भयानन्दरसा-
नुभावकः ॥ ३६४ ॥ समाधिनानेन समस्तवासना ग्रन्थेर्विना-
शोऽखिलकर्मनाशः । अन्तर्वहिः सर्वत एव सर्वदा स्वरूपवि-
स्फूर्तिरयत्नतः स्यात् ॥ ३६५ ॥ श्रुतेः शतगुणं विद्यान्मननं
मननादपि । निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम् ॥ ३६६ ॥
निर्विकल्पकसमाधिना स्फुटं ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् । नान्य-
था चलतया मनोगतेः प्रत्ययान्तरविमिश्रितं भवेत् ॥ ३६७ ॥
अतः समाधत्स्व यतेन्द्रियः सन् निरन्तरं शान्तमनः प्रतीचि ।
विध्वंसय ध्वान्तमनाद्यविद्यया कृतं सदेकत्वविलोकेन ॥ ३६८ ॥
योगस्य प्रथमद्वारं बाङ्गिरोधोऽपरिग्रहः । निराशा च निरीहा
च नित्यमेकान्तशीलता ॥ ३६९ ॥ एकान्तस्थितिरिन्द्रियोप-
रमणे हेतुर्दमश्चेतसः संरोधे करणं शमेन विलयं यायादहंवा-
सना । तेनानन्दरसानुभूतिरचला ब्राह्मी सदा योगिनस्तत्सा-
च्चित्तनिरोध एव सततं कार्यः प्रयत्नान्मुने ॥ ३७० ॥ वाचं
नियच्छात्मनि तं नियच्छ बुद्धौ धियं यच्छ च बुद्धिसाक्षिणि ।
तं चापि पूर्णात्मनि निर्विकल्पे विलाप्य शान्तिं परमां भजस्व
॥ ३७१ ॥ देहप्राणेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिभिरुपाधिभिः । यैर्य-
वृत्तेः समायोगस्तत्तद्भावोऽस्य योगिनः ॥ ३७२ ॥ तन्निवृत्त्या

मुनेः सम्यक् सर्वोपरमणं सुखम् । संदृश्यते सदानन्दत
 भवविप्लवः ॥ ३७३ ॥ बहिस्तु विषयैः सङ्गं तथान्तरह
 भिः । विरक्त एव शक्नोति त्यक्तुं ब्रह्मणि निष्ठितः ॥ ३७४ ॥
 अन्तस्त्यागो बहिस्त्यागो विरक्तस्यैव युज्यते । त्यजत्यन्त
 सङ्गं विरक्तस्तु मुमुक्षया ॥ ३७५ ॥ वैराग्यबोधौ पुरुषस्य
 वत् पक्षौ विजानीहि विचक्षण त्वम् । विमुक्तिसौधाग्रल
 रोहणं ताभ्यां विना नान्यतरेण सिद्ध्यति ॥ ३७६ ॥
 न्तवैराग्यवतः समाधिः समाहितस्यैव दृढप्रबोधः । प्रबुद्धत
 हि बन्धमुक्तिर्मुक्तात्मनो नित्यमुखानुभूतिः ॥ ३७७ ॥
 ग्यान्न परं सुखस्य जनकं पश्यामि वश्यात्मनस्तच्चेच्छुद्धत
 बोधसहितं स्वाराज्यसाम्राज्यधुक् । एतद्भारमजस्रमुक्तियु
 सात्त्वमस्मात्परं सर्वत्रास्पृहया सदात्मनि सदा प्रज्ञां कुरु
 ॥ ३७८ ॥ आशां छिन्धि विषोपमेषु विषयेष्वेवैव क
 कृतिस्त्यक्त्वा जातिकुलाश्रमेष्वभिमतिं मुञ्चातिदूराः क्रि
 देहादावसति त्यजात्मधिपणां प्रज्ञां कुरुष्व्वात्मनि त्वं द्रष्टास्व
 जसि निर्द्वयपरंब्रह्मासि यद्वस्तुतः ॥ ३७९ ॥ लक्ष्ये ब्रह्मणि
 दृढतरं संस्थाप्य बाह्येन्द्रियं स्वस्थाने विनिवेश्य निश्चलतनुर्ब्र
 देहस्थितिम् । ब्रह्मात्मैक्यमुपेत्य तन्मयतया चाखण्डवृत्त्या
 ब्रह्मानन्दरसं पिवात्मनि मुदा शून्यैः किमन्यैर्भृशम् ॥ ३८० ॥
 अनात्मचिन्तनं त्यक्त्वा कदमलं दुःखकारणम् । चिन्तय
 नमानन्दरूपं यन्मुक्तिकारणम् ॥ ३८१ ॥ एष स्वयंज्योति
 शेपसाक्षी विज्ञानकोशो विलसत्यजस्रम् । लक्ष्यं विधायेत
 द्विलक्षणमखण्डवृत्त्यात्मतयानुभावय ॥ ३८२ ॥ एतमच्छि
 वृत्त्या प्रत्ययान्तरशून्यया । उल्लेखयन्निजार्थीयत्वं स्वस्व

स्फुटम् ॥ ३८३ ॥ अत्रात्मत्वं दृढीकुर्वन्नहमादिषु सन्त्यजन् ।
उदासीनतया तेषु तिष्ठेत्स्फुटघटादिवत् ॥ ३८४ ॥ विशुद्ध-
मन्तःकरणं स्वरूपे निवेश्य साक्षिण्यबोधमात्रे । शनैःशनैर्निश्च-
लतामुपानयन् पूर्णं स्वमेवानुविलोकयेत्ततः ॥ ३८५ ॥ देहेन्द्रि-
यग्राणमनोऽहमादिभिः स्वाज्ञानकृतैरखिलैरुपाधिभिः । विमु-
क्तमात्मानमखण्डरूपं पूर्णं महाकाशमिवावलोकयेत् ॥ ३८६ ॥
घटकलशकुम्भलम्बुचिमुख्यैर्गगनमुपाधिशतैर्विमुक्तमेकम् । भवति
न विविधं तथैव शुद्धं परमहमादिविमुक्तमेकमेव ॥ ३८७ ॥
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता मृषामात्रा उपाधयः । ततः पूर्णं स्वमा-
त्मानं पश्येदेकात्मना स्थितम् ॥ ३८८ ॥ यत्र भ्रान्त्या कल्पितं
तद्विवेके तत्तन्मात्रं नैव तस्माद्विभिन्नम् । भ्रान्तेर्नाशे भ्रान्तिदृ-
ष्टाहितत्वं रज्जुस्तद्वद्विधमात्मस्वरूपम् ॥ ३८९ ॥ स्वयं ब्रह्मा
स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः । स्वयं विश्वमिदं सर्वं
स्वस्मादन्यन्न किञ्चन ॥ ३९० ॥ अन्तः स्वयं चापि बहिः स्वयं
च स्वयं पुरस्तात्स्वयमेव पश्चात् । स्वयं ह्यवाच्यां स्वयमप्युदी-
च्यां तथोपरिष्ठात्स्वयमप्यधस्तात् ॥ ३९१ ॥ तरङ्गफेनभ्रमबु-
द्बुदादि सर्वं स्वरूपेण जलं यथा तथा । चिदेव देहाद्यहमन्त-
मेतत् सर्वं चिदेवैकरसं विशुद्धम् ॥ ३९२ ॥ सदेवेदं सर्वं
जगदवगतं बाह्यनसयोः सतोऽन्यन्नास्त्येव प्रकृतिपरसीम्नि
स्थितवतः । पृथक् किं मृत्तायाः कलशघटकुम्भाद्यवगतं वद-
त्येव भ्रान्तस्त्वमहमिति मायामदिरया ॥ ३९३ ॥ क्रियासम-
भिहारेण यत्र नान्यदिति श्रुतिः । ब्रवीति द्वैतराहित्यं मिथ्या-
ध्यासनिवृत्तये ॥ ३९४ ॥ आकाशवन्निर्मलनिर्विकल्पनिःसी-
मनिष्पन्दननिर्विकारम् । अन्तर्बहिःशून्यमनन्यमद्वयं स्वयं परं

ब्रह्म किमस्ति बोध्यम् ॥ ३९५ ॥ वक्तव्यं किमु विदुः
 बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वयं ब्रह्मतत्त्वगदाततं नु सकलं ब्रह्म
 तीयं श्रुतिः । ब्रह्मैवाहमिति प्रबुद्धमतयः सन्त्यक्तवाह्याः ।
 ब्रह्मीभूय वसन्ति सन्ततचिदानन्दात्मनैतद्बुधम् ॥ ३९६ ॥
 जहि मलमयकोशेऽहं धियोत्थापिताशां प्रसभमलिनकल्पे
 देहेऽपि पश्चात् । निगमगदितकीर्तिं नित्यमानन्दमूर्तिं
 मिति परिचीय ब्रह्मरूपेण तिष्ठ ॥ ३९७ ॥ श्वाकारं यावत्
 जति मनुजस्तावदशुचिः परेभ्यः स्यात्क्लेशो जननमरण
 धिनिलयः । यदात्मानं शुद्धं कलयति शिवाकारमचलं
 तेभ्यो मुक्तो भवति हि तदाह श्रुतिरपि ॥ ३९८ ॥ स्वात्म
 रोपिताशेषाभासवस्तुनिरासतः । स्वयमेव परं ब्रह्म पूर्ण
 मक्रियम् ॥ ३९९ ॥ समाहितायां सति चित्तवृत्तौ परात्
 ब्रह्मणि निर्विकल्पे । न दृश्यते कश्चिदयं विकल्पः प्रजल्प
 परिशिष्यते ततः ॥ ४०० ॥ असत्कल्पो विकल्पोऽयं वि
 मित्येकवस्तुनि । निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः
 ॥ ४०१ ॥ द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैकवस्तुनि । निर्वि
 निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ ४०२ ॥ कल्पार्णव
 त्यन्तपरिपूर्णैकवस्तुनि । निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे वि
 कुतः ॥ ४०३ ॥ तेजसीव तमो यत्र प्रलीनं भ्रान्तिकारण
 अद्वितीये परे तत्त्वे निर्विशेषे भिदा कुतः ॥ ४०४ ॥ ए
 त्मके परे तत्त्वे भेदवार्ता कथं वसेत् । सुषुप्तौ सुखमात्र
 भेदः केनावलोकितः ॥ ४०५ ॥ न ह्यस्ति विश्वं परतत्त्ववत्
 सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे । कालत्रये नाप्यहिरीक्षितो
 नद्यम्युविन्दुर्मगवृष्णिकाया ॥ ४०६ ॥ माधवाचार्य

मद्वैतं परमार्थतः । इति ब्रूते श्रुतिः साक्षात् सुपुष्पावनुभूयते
 ॥ ४०७ ॥ अनन्यत्वमधिष्ठानादारोप्यस्य निरीक्षितम् । पण्डितै
 रञ्जुसर्पादौ विकल्पो आन्तिजीवनः ॥ ४०८ ॥ चित्तमूलो
 विकल्पोऽयं चित्ताभावे न कश्चन । अतश्चित्तं समाधेहि प्रत्य-
 ग्रूपे परात्मनि ॥ ४०९ ॥ किमपि सततबोधं केवलानन्दरूपं
 निरुपममतिवेलं नित्यमुक्तं निरीहम् । निरवधि गगनाभं नि-
 ष्कलं निर्विकल्पं हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्णं समाधौ
 ॥ ४१० ॥ प्रकृतिविकृतिशून्यं भावनातीतभावं समरसमसमानं
 मानसं बन्धदूरम् । निगमवचनसिद्धं नित्यमसत्प्रसिद्धं हृदि
 कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्णं समाधौ ॥ ४११ ॥ अजरममरमस्ताभा-
 ववस्तुस्वरूपं स्तिमितसलिलराशिग्रन्थिमाख्याविहीनम् । शमि-
 तगुणविकारं शाश्वतं शान्तमेकं हृदि कलयति विद्वान्ब्रह्म पूर्णं
 समाधौ ॥ ४१२ ॥ समाहितान्तःकरणः स्वरूपे विलोकया-
 त्मानमखण्डवैभवम् । विच्छिन्धि बन्धं भवगन्धगन्धितं यत्नेन
 पुंस्त्वं सफलीकुरुष्व ॥ ४१३ ॥ सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सच्चिदा-
 नन्दमद्वयम् । भावयात्मानमात्मस्थं न भूयः कल्पसेऽध्वने
 ॥ ४१४ ॥ छायेव पुंसः परिदृश्यमानमाभासरूपेण फलानु-
 भूत्या । शरीरभाराच्छववन्निरस्तं पुनर्न सन्धत्त इदं महात्मा
 ॥ ४१५ ॥ प्रारब्धसूत्रग्रथितं शरीरं प्रयातु वा तिष्ठतु गोरि-
 वासकम् । न तत्पुनः पश्यति तत्त्ववेत्तानन्दात्मनि ब्रह्मणि लीन-
 वृत्तिः ॥ ४१६ ॥ सततविमलबोधानन्दरूपं समेत्य त्यज जड-
 मलरूपोपाधिमेतं सुदूरे । अथ पुनरपि नैव सूर्यतां वान्तवस्तु
 स्मरणविषयभूतं कल्पते कुत्सनाय ॥ ४१७ ॥ समूलमेतत्परि-
 दह्य बहौ सदात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे । ततः स्वयं नित्यवि-

शुद्धबोधानन्दात्मना तिष्ठति विद्वरिष्टः ॥ ४१८ ॥ अहं
 नन्दमात्मानं विज्ञाय स्वस्वरूपतः । किमिच्छन्कस्य वा हं
 देहं पुष्पाति तत्त्ववित् ॥ ४१९ ॥ संसिद्धस्य फलं त्वेव
 न्मुक्तस्य योगिनः । बहिरन्तःसदानन्दरसास्वादनमान
 ॥ ४२० ॥ वैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम् ।
 नन्दानुभवाच्छान्तिरेवोपरतेः फलम् ॥ ४२१ ॥ यद्युक्तं
 राभावः पूर्वपूर्वं तु निष्फलम् । निवृत्तिः परमा तृप्तिरात्र
 ऽनुपमः स्वतः ॥ ४२२ ॥ दृष्टदुःखेष्वनुद्वेगो विद्यायाः फलम् ।
 यत्कृतं भ्रान्तिवेलायां नाना कर्म जुगुप्सितम् । प
 चरो विवेकेन तत्कथं कर्तुमर्हति ॥ ४२३ ॥ विद्याफलं त्वेव
 सतो निवृत्तिः प्रवृत्तिरज्ञानफलं तदीक्षितम् । तज्ज्ञानयोगेन
 गतृष्णिकादौ नोचेद्दिदां दृष्टफलं किमस्मात् ॥ ४२४ ॥ अ
 नहृदयग्रन्थेर्विनाशो यद्यशेषतः । अनिच्छोर्विषयः किं प्र
 कारणं स्वतः ॥ ४२५ ॥ वासनानुदयो भोग्ये वैराग्यस्य फल
 वधिः । अहंभावोदयाभावो बोधस्य परमावधिः । लीनव
 तुत्पत्तिर्मर्यादोपरतेस्तु सा ॥ ४२६ ॥ ब्रह्माकारतया त्वेव
 स्थिततया निर्मुक्तवाह्यार्थधीरन्यावेदितभोग्यभोगकलनोक्ति
 लुब्धालवत् । स्वमालोकितलोकवज्रगदिदं पश्यन्कचिल्लब्ध
 रास्ते कश्चिदनन्तपुण्यफलभुग्धन्यः स मान्यो भुवि ॥ ४२७ ॥
 स्थितप्रज्ञो यतिरयं यः सदानन्दमश्नुते । ब्रह्मण्येव विलीन
 निर्विकारो विनिष्क्रियः ॥ ४२८ ॥ ब्रह्मात्मनोः शोधितव
 कभावावगाहिनी । निर्विकल्पा च चिन्मात्रा बुद्धिः प्र
 कथ्यते । सुस्थितासौ भवेद्यस्य स्थितप्रज्ञः स उच्यते ॥ ४२९ ॥
 यस्य स्थिता भवेत्प्रज्ञा यस्यानन्दो निरन्तरः । प्रपञ्चो वि

तप्रायः स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३० ॥ लीनधीरपि जागर्ति
 यो जाग्रद्धर्मवर्जितः । बोधो निर्वासनो यस्य स जीवन्मुक्त
 इष्यते ॥ ४३१ ॥ शान्तसंसारकलनः कलावानपि निष्कलः ।
 यस्य चित्तं विनिश्चितं स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४३२ ॥ वर्त-
 मानोऽपि देहेऽस्मिञ्छायावदनुवर्तिनि । अहन्ताममताभावो
 जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३३ ॥ अतीताननुसन्धानं भविष्य-
 दविचारणम् । औदासीन्यमपि प्राप्तं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्
 ॥ ४३४ ॥ गुणदोषविशिष्टेऽस्मिन्स्वभावेन विलक्षणे । सर्वत्र
 समदर्शित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३५ ॥ इष्टानिष्टार्थसं-
 प्राप्तौ समदर्शितयात्मनि । उभयत्राविकारित्वं जीवन्मुक्तस्य
 लक्षणम् ॥ ४३६ ॥ ब्रह्मानन्दरसास्वादासक्तचित्ततया यतेः ।
 अन्तर्बहिरविज्ञानं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम् ॥ ४३७ ॥ देहेन्द्रि-
 यादौ कर्तव्ये ममाहंभाववर्जितः । औदासीन्येन यस्तिष्ठेत्स
 जीवन्मुक्तलक्षणः ॥ ४३८ ॥ विज्ञात आत्मनो यस्य ब्रह्मभावः
 श्रुतेर्वलात् । भवबन्धविनिर्मुक्तः स जीवन्मुक्तलक्षणः ॥ ४३९ ॥
 देहेन्द्रियेष्वहंभाव इदंभावस्तदन्यके । यस्य नो भवतः क्वापि
 स जीवन्मुक्त इष्यते ॥ ४४० ॥ न प्रत्यग्रहणो भेदं कदापि
 ब्रह्मसर्गयोः । प्रज्ञया यो विजानाति स जीवन्मुक्तलक्षणः
 ॥ ४४१ ॥ साधुभिः पूज्यमानेऽस्मिन्पीड्यमानेऽपि दुर्जनैः ।
 समभावो भवेद्यस्य स जीवन्मुक्तलक्षणः ॥ ४४२ ॥ यत्र प्रविष्टा
 विषयाः परेरिता नदीप्रवाहा इव वारिराशौ । लीयन्ति सन्मा-
 त्रतया न विक्रियामुत्पादयन्त्येव यतिर्विमुक्तः ॥ ४४३ ॥
 विज्ञातब्रह्मतत्त्वस्य यथा पूर्वं न संसृतिः । अस्ति चेन्न स विज्ञा-
 तब्रह्मभावो बहिर्मुखः ॥ ४४४ ॥ प्राचीनवासनावेगादसौ

संसरतीति चेत् । न सदेकत्वविज्ञानान्मन्दीभवति वा
 ॥ ४४५ ॥ अत्यन्तकामुकस्यापि वृत्तिः कुण्ठति मातरि ।
 ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानन्दे मनीषिणः ॥ ४४६ ॥ निदिध्यातुं
 शीलस्य बाह्यप्रत्यय ईक्ष्यते । ब्रवीति श्रुतिरेतस्य प्रारब्धं
 दर्शनात् ॥ ४४७ ॥ सुखाद्यनुभवो यावत्तावत्प्रारब्धमिदं
 फलोदयः क्रियापूर्वो निष्क्रियो नहि कुत्रचित् ॥ ४४८ ॥
 अहं ब्रह्मेति विज्ञानात्कल्पकोटिशतान्वितम् । संचितं वि
 याति प्रबोधात्स्वप्नकर्मवत् ॥ ४४९ ॥ यत्कृतं भ्रान्तिकं
 पुण्यं वा पापमुल्वणम् । सुप्तोत्थितस्य किं तत्स्यात्स्वर्गावा
 काय वा ॥ ४५० ॥ स्वप्नसङ्गमुदासीनं परिज्ञाय नभो न
 न श्लिष्यति च यत्किंचित्कदाचिद्भाविकर्मभिः ॥ ४५१ ॥
 नभो न घटयोगेन सुरागन्धेन लिप्यते । तथात्मोपाधि
 तद्धर्मैर्नैव लिप्यते ॥ ४५२ ॥ ज्ञानोदयात्पुरारब्धं कर्मज्ञा
 नश्यति । अदत्त्वा स्वफलं लक्ष्यमुद्दिश्योत्सृष्टवाणवत् ॥ ४५३ ॥
 व्याघ्रबुद्ध्या विनिर्मुक्तो वाणः पश्चात्तु गोमतौ । न लि
 छिनत्येव लक्ष्यं वेगेन निर्भरम् ॥ ४५४ ॥ प्रारब्धं बल
 खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः सम्यग्ज्ञानहुताशनेन वि
 प्राक्संचितागामिनाम् । ब्रह्मात्मैक्यमवेक्ष्य तन्मयतया ये
 संस्थितास्तेषां तत्रितयं नहि कचिदपि ब्रह्मैव ते नि
 ॥ ४५५ ॥ उपाधितादात्म्यविहीनकेवलब्रह्मात्मनैवात्मवि
 ष्टतो मुनेः । प्रारब्धसद्भावकथा न युक्ता स्वप्नार्थसंबन्ध
 जाग्रतः ॥ ४५६ ॥ नहि प्रबुद्धः प्रतिभासदेहे देहोपयोगि
 च प्रपञ्चे । करोत्यहन्तां ममतामिदन्तां किंतु स्वयं वि
 जागरेण ॥ ४५७ ॥ न तस्य मिथ्यात्वसंदेहो न

स्तज्जगतोऽपि दृष्टः । तत्रानुवृत्तिर्यदि चेन्मृपार्थे न निद्रया
मुक्त इतीष्यते ध्रुवम् ॥ ४५८ ॥ तद्वत्परे ब्रह्मणि वर्तमानः
सदात्मना तिष्ठति नान्यदीक्षते । स्मृतिर्यथा स्वप्नविलोकितार्थे
तथाविदः प्राशनमोचनादौ ॥ ४५९ ॥ कर्मणा निर्मितो देहः
प्रारब्धं तस्य कल्प्यताम् । नानादेरात्मनो युक्तं नैवात्मा कर्म-
निर्मितः ॥ ४६० ॥ अजो नित्यः शाश्वत इति ब्रूते श्रुतिर-
मोघवाक् । तदात्मना तिष्ठतोऽस्य कुतः प्रारब्धकल्पना ॥ ४६१ ॥
प्रारब्धं सिद्ध्यति तदा यदा देहात्मना स्थितिः । देहात्मभावो
नैवेष्टः प्रारब्धं त्यजतामतः ॥ ४६२ ॥ शरीरस्यापि प्रारब्ध-
कल्पना भ्रान्तिरेव हि । अध्यस्तस्य कुतः सत्त्वमसत्त्वस्य कुतो
जनिः ॥ ४६३ ॥ अजातस्य कुतो नाशः प्रारब्धमसतः कुतः ।
ज्ञानेनाज्ञानकार्यस्य समूलस्य लयो यदि ॥ ४६४ ॥ तिष्ठत्ययं
कथं देह इति शङ्कावतो जडान् । समाधातुं बाह्यदृष्ट्या प्रारब्धं
वदति श्रुतिः । न तु देहादिसत्यत्वबोधनाय विपश्चिताम्
॥ ४६५ ॥ परिपूर्णमनाद्यन्तमग्रमेयमविक्रियम् । एकमेवाद्वयं
ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४६६ ॥ सद्ब्रह्म चिद्ब्रह्म नित्य-
मानन्दधनमक्रियम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन
॥ ४६७ ॥ प्रत्यगेकरसं पूर्णमनन्तं सर्वतोमुखम् । एकमेवाद्वयं
ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४६८ ॥ अहेयमनुपादेयमनादे-
यमनाश्रयम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४६९ ॥
निर्गुणं निष्कलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरञ्जनम् । एकमेवाद्वयं
ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥ ४७० ॥ अनिरूप्यस्वरूपं यन्म-
नोवाचामगोचरम् । एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन
॥ ४७१ ॥ सत्समृद्धं स्वतःसिद्धं शुद्धं बुद्धमनीदृशम् । एकमे-

वाद्वयं ब्रह्म नेह नानाऽस्ति किञ्चन ॥ ४७२ ॥ निरस्त
 विनिरस्तभोगाः शान्ताः सुदान्ता यतयो महान्तः । कि
 तत्त्वं परमेतदन्ते प्राप्ताः परां निर्वृतिमात्मयोगात् ॥ ४७३
 भवानपीदं परतत्त्वमात्मनः स्वरूपमानन्दधनं विचार्य । वि
 मोहं स्वमनःप्रकल्पितं मुक्तः कृतार्थो भवतु प्रबुद्धः ॥ ४७४
 समाधिना साधुविनिश्चलात्मना पश्यात्मतत्त्वं स्फुटबोधचक्षु
 न संशयं सम्यगवेक्षितश्चेत् श्रुतः पदार्थो न पुनर्वि
 ॥ ४७५ ॥ स्वस्याऽविद्याबन्धसंबन्धमोक्षात् सत्यज्ञानानन्द
 त्मलब्धौ । शास्त्रं युक्तिर्देशिकोक्तिप्रमाणं चान्तःसिद्धा त
 भूतिः प्रमाणम् ॥ ४७६ ॥ बन्धो मोक्षश्च तृप्तिश्च चिन्ता
 क्षुधादयः । स्वेनैव वेद्या यज्ज्ञानं परेपामानुमानिकम् ॥ ४७७
 तदस्थिता बोधयन्ति गुरवः श्रुतयो यथा । प्रज्ञयैव ततो
 नीश्वरानुगृहीतया ॥ ४७८ ॥ स्वानुभूत्या स्वयं ज्ञात्वा त
 त्मानमखण्डितम् । संसिद्धः सन्मुखं तिष्ठेन्निर्विकल्पात्मना
 नि ॥ ४७९ ॥ वेदान्तसिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः त
 जगच्च । अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्र
 णम् ॥ ४८० ॥ इति गुरुवचनाच्छ्रुतिप्रमाणात् परमव
 सतत्त्वमात्मयुक्त्या । प्रशमितकरणः समाहितात्मा क्वि
 लाकृतिरात्मनिष्ठितोऽभूत् ॥ ४८१ ॥ किञ्चित्कालं समा
 परे ब्रह्मणि मानसम् । उत्थाय परमानन्दादिदं वचनम
 ॥ ४८२ ॥ बुद्धिर्विनष्टा गलिता प्रवृत्तिर्ब्रह्मात्मनोरेकतया
 गत्या । इदं न जानेऽप्यनिदं न जाने किं वा कियद्वा तु
 स्त्यपारम् ॥ ४८३ ॥ वाचा वक्तुमशक्यमेव मनसा मन्तु
 वा शक्यमेव स्नानेन स्नानं वा ध्यानेन ध्यानं वा ध्यायितुं ध्यायितुं वा

राशिविशीर्णवार्पिकशिलाभावं भजन्मे मनो यस्यांशांशलवे
विलीनमधुनानन्दात्मना निर्वृतम् ॥ ४८४ ॥ क गतं केन वा
नीतं कुत्र लीनमिदं जगत् । अधुनैव मया दृष्टं नास्ति किं मह-
दद्भुतम् ॥ ४८५ ॥ किं हेयं किमुपादेयं किमन्यत्किं विल-
क्षणम् । अखण्डानन्दपीयूषपूर्णे ब्रह्ममहार्णवे ॥ ४८६ ॥ न
किञ्चिदत्र पश्यामि न शृणोमि न वेदयहम् । स्वात्मनैव सदा-
नन्दरूपेणास्मि विलक्षणः ॥ ४८७ ॥ नमो नमस्ते गुरवे महा-
त्मने विमुक्तसङ्गाय सद्गुत्तमाय । नित्याद्वयानन्दरसस्वरूपिणे
भूम्ने सदापारदयाम्बुधाम्ने ॥ ४८८ ॥ यत्कटाक्षशशिसान्द्रच-
न्द्रिकापातधूतभवतापजश्रमः । प्राप्तवानहमखण्डवैभवानन्द-
मात्मपदमक्षयं क्षणात् ॥ ४८९ ॥ धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं वि-
मुक्तोऽहं भवग्रहात् । नित्यानन्दस्वरूपोऽहं पूर्णोऽहं तदनुग्रहात्
॥ ४९० ॥ असङ्गोऽहमनङ्गोऽहमलिङ्गोऽहमभङ्गुरः । प्रशान्तो-
ऽहमनन्तोऽहममलोऽहं चिरन्तनः ॥ ४९१ ॥ अकर्ताहमभोक्ता-
हमविकारोऽहमक्रियः । शुद्धबोधस्वरूपोऽहं केवलोऽहं सदा
शिवः ॥ ४९२ ॥ द्रष्टुः श्रोतुर्वक्तुः कर्तुर्भोक्तुर्विभिन्न एवाहम् ।
नित्यनिरन्तरनिष्क्रियनिःसीमासङ्गपूर्णबोधात्मा ॥ ४९३ ॥
नाहमिदं नाहमदोऽप्युभयोरवभासकं परं शुद्धम् । बाह्याभ्य-
न्तरशून्यं पूर्णं ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥ ४९४ ॥ निरुपममना-
दितत्त्वं त्वमहमिदमद इति कल्पनादूरम् । नित्यानन्दैकरसं सत्यं
ब्रह्माद्वितीयमेवाहम् ॥ ४९५ ॥ नारायणोऽहं नरकान्तकोऽहं
पुरान्तकोऽहं पुरुषोऽहमीशः । अखण्डबोधोऽहमशेषसाक्षी निरी-
श्वरोऽहं निरहं च निर्ममः ॥ ४९६ ॥ सर्वेषु भूतेष्वहमेव संस्थितो
ज्ञानात्मनान्तर्बहिराश्रितः सन् । भोक्ता च भोग्यं स्वयमेव सर्वं

यद्यत्पृथग्दृष्टमिदन्तया पुरा ॥ ४९७ ॥ मय्यखण्डसुखाम्
 बहुधा विश्ववीचयः । उत्पद्यन्ते विलीयन्ते मायामास्तवि
 ॥ ४९८ ॥ स्थूलादिभावा मयि कल्पिता भ्रमादारोपि
 स्फुरणेन लोकैः । काले यथा कल्पकवत्सरायनर्त्तादयो नि
 लनिर्विकल्पे ॥ ४९९ ॥ आरोपितं नाश्रयदूपकं भवेत्
 मूढरतिदोषदूषितैः । नार्द्रीकरोत्युपरभूमिभागं मरीचिका
 महाप्रवाहः ॥ ५०० ॥ आकाशवह्नेपविदूरगोहमादित्यव
 विलक्षणोऽहम् । अहार्यवन्नित्यविनिश्चलोऽहम्मोघिवत्
 वर्जितोऽहम् ॥ ५०१ ॥ न मे देहेन संबन्धो मेघेन वा
 यसः । अतः कुतो मे मद्धर्मा जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तयः ॥ ५०२ ॥
 उपाधिरायाति स एव गच्छति स एव कर्माणि करोति
 स एव जीवन्म्रियते सदाऽहं कुलाद्रिवन्निश्चल एव स
 ॥ ५०३ ॥ न मे प्रवृत्तिर्न च मे निवृत्तिः सदैकरूपस्य
 शकस्य । एकात्मको यो निविडो निरन्तरो व्योमेव
 कथं नु चेष्टते ॥ ५०४ ॥ पुण्यानि पापानि निरीति
 निश्चेतसो निर्विकृतेनिराकृतेः । कुतो ममाखण्डसुखादु
 हानन्वागतमित्यपि श्रुतिः ॥ ५०५ ॥ छायाया स्पृष्टपु
 शीतं वा सुष्टु दुष्टु वा । न स्पृशत्येव यत्किञ्चित्पुरुषं तद्वि
 णम् ॥ ५०६ ॥ न साक्षिणं साक्ष्यधर्माः संस्पृशन्ति
 क्षणम् । अविकारमुदासीनं गृहधर्माः प्रदीपवत् ॥ ५०७ ॥
 र्वेर्यथा कर्मणि साक्षिभावो वद्देर्यथा दाहनियामकलम् ।
 र्यथाऽऽरोपितवस्तुसङ्गस्तथैव कूटस्थचिदात्मनो मे ॥ ५०८ ॥
 कर्तापि वा कारयितापि नाहं भोक्तापि वा भोजयितापि
 हम् । द्रष्टापि वा दर्शयितापि नाहं सोऽहं स्वयं ज्योतिरर्ना

॥ ५०९ ॥ चलत्युपाधौ प्रतिविम्बलौल्यमौपाधिकं मूढधियो
नयन्ति । स्वविम्बभूतं रविवद्विनिष्क्रियं कर्तासि भोक्तासि
हतोऽसि हेति ॥ ५१० ॥ जले वापि स्थले वापि लुठत्वेप जडा-
त्मकः । नाहं विलिप्ये तद्धर्मैर्घटधर्मैर्नभो यथा ॥ ५११ ॥
कर्तृत्वभोक्तृत्वखलत्वमत्तता जडत्ववद्धत्वविमुक्ततादयः । बुद्धे-
र्विकल्पा न तु सन्ति वस्तुतः स्वस्मिन्परे ब्रह्मणि केवलेऽद्वये
॥ ५१२ ॥ सन्तु विकारः प्रकृतेर्दशधा शतधा सहस्रधा वा-
पि । किं मेऽसङ्गचितस्तैर्न घनः क्वचिदम्बरं स्पृशति ॥ ५१३ ॥
अव्यक्तादिस्थूलपर्यन्तमेतद्विश्वं यत्राभासमात्रं प्रतीतम् । व्योम-
ग्रख्यं सूक्ष्ममाद्यन्तहीनं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमसि ॥ ५१४ ॥
सर्वाधारं सर्ववस्तुप्रकाशं सर्वाकारं सर्वगं सर्वशून्यम् । नित्यं
शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमसि ॥ ५१५ ॥
यत्प्रत्यस्ताशेषमायाविशेषं प्रत्यग्रूपं प्रत्ययागम्यमानम् । सत्य-
ज्ञानानन्तमानन्दरूपं ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमसि ॥ ५१६ ॥ नि-
ष्क्रियोऽस्म्यविकारोऽसि निष्कलोऽसि निराकृतिः । निर्विक-
ल्पोऽसि नित्योऽसि निरालम्बोऽसि निर्द्वयः ॥ ५१७ ॥ स-
र्वात्मकोऽहं सर्वोऽहं सर्वातीतोऽहमद्वयः । केवलाखण्डबोधोऽह-
मानन्दोऽहं निरन्तरः ॥ ५१८ ॥ स्वाराज्यसाम्राज्यविभूतिरेषा
भवत्कृपा श्रीमहिमप्रसादात् । प्राप्ता मया श्रीगुरवे महात्मने
नमो नमस्तेऽस्तु पुनर्नमोऽस्तु ॥ ५१९ ॥ महास्वप्ने मायाकृत-
जनिजरामृत्युगहने भ्रमन्तं क्लिश्यन्तं बहुलतरतापैरनुदिनम् ।
अहंकारव्याघ्रव्यथितमिममत्यन्तकृपया प्रबोध्य प्रस्वापात्परम-
वितवान्मामसि गुरो ॥ ५२० ॥ नमस्तस्मै सदेकस्मै कस्मैचिन्महसे
नमः । यदेतद्विध्वरूपेण राजते गुरुराज ते ॥ ५२१ ॥ इति

नतमवलोक्य शिष्यवर्यं समधिगतात्मसुखं प्रबुद्धतत्त्वम् ॥
 दितहृदयः स देशिकेन्द्रः पुनरिदमाह वचः परं महात्मा ॥ ५२३ ॥
 ब्रह्मप्रत्ययसन्ततिर्जगदतो ब्रह्मैव सत्सर्वतः पश्याध्यातुं
 प्रशान्तमनसा सर्वास्ववस्थास्वपि । रूपादन्यदवेक्षितं किमपि
 क्षुप्मतां दृश्यते तद्ब्रह्मविदः सतः किमपरं बुद्धेर्विहारात्
 ॥ ५२३ ॥ कस्तां परानन्दरसानुभूतिमुत्सृज्य शून्येषु
 विद्वान् । चन्द्रे महाह्लादिनि दीप्यमाने चित्रेन्दुमालोकरि
 इच्छेत् ॥ ५२४ ॥ असत्पदार्थानुभवेन किञ्चिन्न ह्यस्ति
 च दुःखहानिः । तदद्वयानन्दरसानुभूत्या तप्तः सुखं तिष्ठ
 त्मनिष्ठया ॥ ५२५ ॥ स्वमेव सर्वथा पश्यन्मन्यमानः स
 यम् । खानन्दमनुभुञ्जानः कालं नय महामते ॥ ५२६ ॥
 अखण्डबोधात्मनि निर्विकल्पे विकल्पनं व्योम्नि पुरप्रकल्प
 तदद्वयानन्दमयात्मना सदा शान्तिं परामृत्यु
 मौनम् ॥ ५२७ ॥ तूष्णीमवस्था परमोपशान्तिर्बुद्धेरसत्
 विकल्पहेतोः । ब्रह्मात्मना ब्रह्मविदो महात्मनो यत्रा
 नन्दसुखं निरन्तरम् ॥ ५२८ ॥ नास्ति निर्वासनान्मात्रं
 सुखकृदुत्तमम् । विज्ञातात्मस्वरूपस्य खानन्दरसपायिनः ॥ ५२९ ॥
 गच्छंस्तिष्ठन्नुपविशञ्छयानो वान्यथापि वा । यथेच्छया
 द्विद्वानात्मारामः सदा मुनिः ॥ ५३० ॥ न देशकाला
 ग्यमादिलक्ष्याद्यपेक्षाऽप्रतिबद्धवृत्तेः । संसिद्धतत्त्वस्य महान्
 ऽस्ति स्ववेदने का नियमाद्यवस्था ॥ ५३१ ॥ षटोप
 विज्ञातुं नियमः कोन्वेक्षते । विना प्रमाणमुष्टुत्वं यत्कि
 पदार्थधीः ॥ ५३२ ॥ अयमात्मा नित्यसिद्धः प्रमाण
 भासते ॥ न देशं नाऽपि वा कालं न शुद्धिं वाप्यपेक्षते ॥ ५३३ ॥

देवदत्तोऽहमित्येतद्विज्ञानं निरपेक्षकम् । तद्वद्ब्रह्मविदोऽप्यस्य
 ब्रह्माहमिति वेदनम् ॥ ५३४ ॥ भानुनेव जगत्सर्वं भासते
 यस्य तेजसा । अनात्मकमसत्तुच्छं किंनु तस्यावभासकम्
 ॥ ५३५ ॥ वेदशास्त्रपुराणानि भूतानि सकलान्यपि । येनार्थ-
 वन्ति तं किंनु विज्ञातारं प्रकाशयेत् ॥ ५३६ ॥ एष स्वयंज्यो-
 तिरनन्तशक्तिरात्माऽप्रमेयः सकलानुभूतिः । यमेव विज्ञाय
 विमुक्तबन्धो जयत्ययं ब्रह्मविदुत्तमोत्तमः ॥ ५३७ ॥ न खिद्यते
 नो विपर्ययः प्रमोदते न सज्जते नापि विरज्यते च । स्वस्मिन्स-
 दा क्रीडति नन्दति स्वयं निरन्तरानन्दरसेन तृप्तः ॥ ५३८ ॥
 क्षुधां देहव्यथां त्यक्त्वा बालः क्रीडति वस्तुनि । तथैव विद्वा-
 च्रमते निर्ममो निरहं सुखी ॥ ५३९ ॥ चिन्ताशून्यमदैन्यभै-
 क्ष्यमशनं पानं सरिद्वारिषु स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशस्थितिर्भीर्निद्रा
 श्मशाने वने । वस्त्रं क्षालनशोपणादिरहितं दिग्वास्तुशय्या म-
 ही संचारो निगमान्तवीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि ॥ ५४० ॥
 विमानमालम्ब्य शरीरमेतद्भुनक्त्यशेषान्विषयानुपस्थितान् ।
 परेच्छया बालवदात्मवेत्ता योऽप्यक्तलिङ्गोऽननुपक्तवाह्यः
 ॥ ५४१ ॥ दिगम्बरो वापि च साम्बरो वा त्रगम्बरो
 वापि चिदम्बरस्थः । उन्मत्तवद्वापि च बालवद्वा पिशा-
 चवद्वापि चरत्यवन्याम् ॥ ५४२ ॥ कामान्निष्कामरूपी संश्र-
 रत्येकचरो मृनिः । स्वात्मनैव सदा तुष्टः स्वयं सर्वात्मना स्थितः
 ॥ ५४३ ॥ कचिन्मूढो विद्वान्कचिदपि महाराजविभवः कचि-
 द्वान्तः सौम्यः कचिदजगराचारकलितः । कचित्पापीभूतः
 कचिदवमतः काप्यविदितश्चरत्येवं ग्राज्ञः सततपरमानन्दसु-
 खितः ॥ ५४४ ॥ निर्धनोऽपि सदा तुष्टोऽप्यसहायो महा-

बलः । नित्यतृप्तोऽप्यभुञ्जानोऽप्यसमः समदर्शनः ॥ ५४५ ॥
 अपि कुर्वन्नकुर्वाणश्चाभोक्ता फलभोग्यपि । शरीर्यप्यपि
 परिच्छिन्नोऽपि सर्वगः ॥ ५४६ ॥ अशरीरं सदासत्
 ब्रह्मविदं क्वचित् । प्रियाप्रिये न स्पृशतस्तथैव च शुभं
 ॥ ५४७ ॥ स्थूलादिसंवन्धवतोऽभिमानिनः सुखं च दुःखं
 शुभाशुभे च । विध्वस्तवन्धस्य सदात्मनो मुनेः कुतः शुभं
 शुभं फलं वा ॥ ५४८ ॥ तमसा ग्रस्तवद्भानादग्रस्तोऽपि
 र्जनैः । ग्रस्त इत्युच्यते भ्रान्त्या ह्यज्ञात्वा वस्तुलक्षणम् ॥
 तद्देहादिवन्धेभ्यो विमुक्तं ब्रह्मवित्तमम् । पश्यन्ति देहवन्
 शरीराभासदर्शनात् ॥ ५५० ॥ अहिनिर्व्वयनीवायं मुक्तः
 तु तिष्ठति । इतस्ततश्चाल्यमानो यत्किञ्चित्प्राणवायुना ॥
 स्रोतसा नीयते दारु यथा निम्नोन्नतस्थलम् । देवेन
 देहस्तथा कालोपभुक्तिषु ॥ ५५२ ॥ प्रारब्धकर्मपरि-
 वासनाभिः संसारिवचरति भुक्तिषु मुक्तेदेहः । सिद्ध-
 वसति साक्षिवदत्र तूष्णीं चक्रस्य मूलमिव कल्पविकल्प-
 ॥ ५५३ ॥ नैवेन्द्रियाणि विषयेषु नियुक्त एव नैवापयु-
 दर्शनलक्षणस्थः । नैव क्रियाफलमपीपदवेक्षते स सा-
 न्द्ररसपानसुमत्तचित्तः ॥ ५५४ ॥ लक्ष्यालक्ष्यगतिं
 यस्तिष्ठेत्केवलात्मना । शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मवि-
 ॥ ५५५ ॥ जीवन्नेव सदा मुक्तः कृतार्थो ब्रह्मवित्तमः ।
 धिनाशाद्रह्यैव सन्ब्रह्माऽप्येति निर्द्वयम् ॥ ५५६ ॥
 वेपसद्भावाभावयोश्च यथा पुमान् । तथैव ब्रह्मविच्छे-
 ब्रह्मैव नापरः ॥ ५५७ ॥ यत्र कापि विशीर्णं सत्त्वं
 तरोर्वपुः पतन्नात् । तद्वीर्यं तस्य यतोऽप्योक्तं तच्चिद्विना-

॥ ५५८ ॥ सदात्मनि ब्रह्मणि तिष्ठतो मुनेः पूर्णाद्विद्यानन्दम-
यात्मना सदा । न देशकालाद्युचितप्रतीक्षा तद्भासविदपिण्ड-
विसर्जनाय ॥ ५५९ ॥ देहस्य मोक्षो नो मोक्षो न दण्डस्य
कमण्डलोः । अविद्याहृदयग्रन्थिमोक्षो मोक्षो यतस्ततः ॥ ५६० ॥
कुल्यायामथ वा नद्यां शिवक्षेत्रेऽथ चतरे । पर्णं पतति चेत्तेन
तरोः किं नु शुभाशुभम् ॥ ५६१ ॥ पत्रस्य पुष्पस्य फलस्य
नाशवदेहेन्द्रियप्राणधियां विनाशः । नैवात्मनः स्वस्य सदात्म-
कस्यानन्दाकृतेर्वृक्षवदस्ति चैपः ॥ ५६२ ॥ प्रज्ञानघन इत्या-
त्मलक्षणं सत्यसूचकम् । अनूद्यौपाधिकस्यैव कथयन्ति विना-
शनम् ॥ ५६३ ॥ अविनाशी वारेऽयमात्मेति श्रुतिरात्मनः ।
प्रवर्णीत्यविनाशित्वं विनश्यत्सु विकारिषु ॥ ५६४ ॥ पापाण-
वृक्षतृणधान्यकडङ्गराद्या दग्धा भवन्ति हि मृदेव यथा तथैव ।
देहेन्द्रियासुमनआदिसमस्तदृश्यं ज्ञानाग्निदग्धमुपयाति परात्म-
भावम् ॥ ५६५ ॥ विलक्षणं यथा ध्वान्तं लीयते भानुतेजसि ।
तथैव सकलं दृश्यं ब्रह्मणि प्रविलीयते ॥ ५६६ ॥ घटे नष्टे
यथा व्योम्नि व्योमैव भवति स्फुटम् । तथैवोपाधिविलये ब्रह्मैव
ब्रह्मवित्स्वयम् ॥ ५६७ ॥ क्षीरं क्षीरे यथा क्षिप्तं तैलं तैले जलं
जले । संयुक्तमेकतां याति तथात्मन्यात्मविन्मुनिः ॥ ५६८ ॥
एवं विदेहकैवल्यं सन्मात्रत्वमखण्डितम् । ब्रह्मभावं प्रपद्यैव
यतिर्नावर्तते पुनः ॥ ५६९ ॥ सदात्मैकत्वविज्ञानदग्धाविद्या-
दिवर्ष्मणः । अमुष्य ब्रह्मभूतत्वाद् ब्रह्मणः कुत उद्भवः ॥ ५७० ॥
मायाहृष्टौ बन्धमोक्षौ न स्तः स्वात्मनि वस्तुतः । यथा रज्जौ
निष्क्रियायां सर्पाभासविनिर्गमौ ॥ ५७१ ॥ आवृतेः सदस-
त्त्वाभ्यां वक्तव्ये बन्धमोक्षणे । नावृतिर्ब्रह्मणः काचिदन्याभा-

वादनावृतम् । यद्यस्त्यद्वैतहानिः स्याद्वैतं न सहते ॥ ५७२ ॥ बन्धं च मोक्षं च मृपैव मूढा बुद्धेर्गुणं क
 कल्पयन्ति । दगावृत्तिं मेघकृतां यथा रवौ यतोऽद्वयासङ्गि
 दक्षरम् ॥ ५७३ ॥ अस्तीति प्रत्ययो यश्च यश्च ना
 वस्तुनि । बुद्धेरेव गुणावेतौ न तु नित्यस्य वस्तुनः ॥ ५७४ ॥
 अतस्तौ मायया क्लृप्तौ बन्धमोक्षौ न चात्मनि । निष्कले
 प्क्रिये शान्ते निरवद्ये निरञ्जने ॥ ५७५ ॥ न विरोधो
 चोत्पत्तिर्न बन्धो न च साधकः । न मुमुक्षुर्न वै मुक्तिर्न
 परमार्थता ॥ ५७६ ॥ सकलनिगमचूडाखान्तसिद्धान्त
 परमिदमतिगुह्यं दर्शितं ते मयाद्य । अपगतकलिदोषं क
 र्मुक्तबुद्धिं स्वसुतवदसकृत्त्वां भावयित्वा मुमुक्षुम् ॥ ५७७ ॥
 श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं प्रश्रयेण कृतानतिः । स तेन समज
 ययौ निर्मुक्तबन्धनः ॥ ५७८ ॥ गुरुरेव सदानन्दसिन्धो
 लमानसः । पावयन्वसुधां सर्वा विचचार निरन्तरः ॥ ५७९ ॥
 इत्याचार्यस्य शिष्यस्य संवादेनात्मलक्षणम् । निरूपितं मुमु
 सुखबोधोपपत्तये ॥ ५८० ॥ हितमिदमुपदेशमाद्रियन्तां
 तनिरस्तसमस्तचित्तदोषाः । भवसुखविरताः प्रशान्ता
 श्रुतिरसिका यतयो मुमुक्षवो ये ॥ ५८१ ॥ संसाराध्वनि
 भानुकिरणप्रोद्भूतदाहव्यथास्त्रिभानां जलकाङ्क्षया
 श्रान्त्या परिभ्राम्यतां । अत्यासन्नसुधाम्बुधिं सुखकरं
 दर्शयत्येषा शंकरभारती विजयते निर्वाणसंदायिनी ॥ ५८२ ॥
 इति श्रीपरमहंसपरिव्राजकाचार्यगोविन्दभगवत्पूज्यपाद
 श्रीमच्छङ्करभगवत्कृतो विवेकचूडामणिः समाप्तः ॥

उपदेशसाहस्री ॥ ३२ ॥

(गद्यप्रबन्धः प्रथमोभागः ।)

शिष्यप्रतिबोधविधिप्रकरणम् १

ॐ परमात्मने नमः॥ अथ मोक्षसाधनोपदेशविधिं व्याख्या-
स्यामो मुमुक्षूणां श्रद्धधानानामर्थिनामर्थाय ॥ १ ॥ तदिदं
मोक्षसाधनं ज्ञानं साधनसाध्यादनित्यात्सर्वसाद्विरक्ताय त्यक्त-
पुत्रवित्तलोकैषणाय प्रतिपन्नपरमहंसपारिव्राज्याय शमदमदया-
दियुक्ताय शास्त्रप्रसिद्धशिष्यगुणसंपन्नाय शुचये ब्राह्मणाय
विधिवदुपसन्नाय शिष्याय जातिकर्मवृत्तविद्याभिजनैः परी-
क्षिताय ब्रूयात् पुनः पुनः यावद्ग्रहणं दृढीभवति ॥ २ ॥ श्रु-
तिश्च-‘परीक्ष्य लोकान्’, ‘तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्-’ इति । दृढ-
गृहीता हि विद्या आत्मनः श्रेयसे संतत्यै च भवति । विद्या-
संततिश्च प्राण्यनुग्रहाय भवति नौरिव नदीं तृतीयोः । शास्त्रं
च-‘यद्यप्यस्मा इमामग्निः परिगृहीतां धनस्य पूर्णां दद्यात्
एतदेव ततो भूयः’ इति । अन्यथा च ज्ञानप्राप्त्यभावात्-
‘आचार्यवान् पुरुषो वेद’, ‘आचार्याद्वैव विद्या विदिता’,
‘आचार्यः प्रवयिता’ सम्यग्ज्ञानं पुत्र इहोच्यते । इत्यादिश्रु-
तिभ्यः, ‘उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं’ इत्यादिस्मृतेश्च ॥ ३ ॥ शिष्यस्य
ज्ञानाग्रहणं च लिङ्गैर्बुद्ध्या अग्रहणे हेतून् अधर्म-लौकिक-प्रमा-
द-नित्यानित्यविवेकविषयासंजातदृढपूर्वश्रुतत्व-लोकचिन्ता-
वेक्षण-जात्याद्यभिमानादीन् तत्प्रतिपक्षैः श्रुतिस्मृतिविहितैः
अपनयेत् अक्रोधादिभिरहिंसादिभिश्च यमैः ज्ञानाविरुद्धैश्च
नियमैः ॥ ४ ॥ अमानित्वादिगुणं च ज्ञानोपायं सम्यक् ग्राह-
येत् ॥ ५ ॥ आचार्यस्तूहापोहग्रहणधारणशमदमदयानुग्रादि-

संपन्नो लब्धागमो दृष्टादृष्टभोगेष्वनासक्तः त्यक्तसर्वकर्म-
 धनो ब्रह्मचित् ब्रह्मणि स्थितोऽभिन्नवृत्तो दम्भदर्पकुहक-
 मायामात्सर्यानृताहंकारममत्वादिदोषवर्जितः केवलपरातु-
 योजनो विद्योपयोगार्थी पूर्वमुपदिशेत्—‘सदेव सोम्येदमग्र-
 सीदेकमेवाद्वितीयम्’, ‘यत्र नान्यत्पश्यति’, ‘आत्मैवेदं स-
 ’आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्’, ‘सर्वं खल्विदं-
 इत्याद्याः आत्मैक्यप्रतिपादनपराः श्रुतीः ॥ ६ ॥ उपदि-
 ग्राहयेत् ब्रह्मणो लक्षणम्—‘य आत्माऽपहतपाप्मा’, यत्स-
 दपरोक्षाद्ब्रह्म’, ‘योऽज्ञनायापिपासे’, ‘नेति नेति’, ‘अस्मि-
 नष्टु’, ‘स एष नेति’, ‘अदृष्टं द्रष्टु’, ‘विज्ञानमानन्दम्’,
 ‘ज्ञानमनन्तम्’, ‘अदृश्येऽनात्म्ये’, ‘स वा एष महानज आ-
 ’अप्राणो ह्यमनाः’, ‘सवाह्याभ्यन्तरो ह्यजः’, ‘विज्ञानघन-
 ’अनन्तरमवाह्यम्’, ‘अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितात्-
 काशो वै नाम’ इत्यादिश्रुतिभिः ॥७॥ स्मृतिभिश्च—‘न ज-
 प्रियते वा’, ‘नादत्ते कस्यचित्पापम्’, ‘यथाऽकाशो-
 नित्यम्’, ‘क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि’, ‘न सत्तन्नासदुच्यते’-
 दित्वाभिर्गुणत्वात्’, ‘समं सर्वेषु भूतेषु’, ‘उत्तमः पुरुषः’-
 दिभिः श्रुत्युक्तलक्षणाविरुद्धाभिः परमात्मासंसारित्वप्रति-
 नपराभिः तस्य सर्वेणानन्यत्वप्रतिपादनपराभिश्च ॥ ८ ॥
 श्रुतिस्मृतिभिः गृहीतपरमात्मलक्षणं शिष्यं संसारसागरा-
 तीर्षु पृच्छेत् कस्त्वमसि सोम्येति ॥ ९ ॥ स यदि ब्र-
 ब्राह्मणपुत्रः अदोन्वयः ब्रह्मचार्यासम्—गृहस्थो वा, इदानीं
 परमहंसपरिव्राट् संसारसागरात् जन्ममृत्युमहाप्राहात् उ-
 र्परिति ॥ १० ॥ आचार्यो ब्रूयात् इदं तव सोम्य

शरीरं वयोभिरद्यते मृज्जावं वापद्यते तत्र कथं संसारादुद्धर्तु-
मिच्छसीति । नहि नद्याः अवरे कूले भस्मीभूते नद्याः पारं
तरिष्यसीति ॥ ११ ॥ स यदि ब्रूयात् अन्योऽहं शरीरात् ।
शरीरं तु जायते म्रियते वयोभिरद्यते शस्त्राभ्यादिभिश्च विना-
श्यते व्याध्यादिभिश्च प्रयुज्यते । तस्मिन् अहं स्वकृतधर्माधर्म-
वशात् पक्षी नीडमिव प्रविष्टः पुनःपुनः शरीरविनाशे धर्माध-
र्मवशात् शरीरान्तरं यास्यामि पूर्वनीडविनाशे पक्षीव नीडा-
न्तरम्, एवमेवाहमनादौ संसारे देवमनुष्यतिर्यङ्मिरयस्थानेषु
स्वकर्मवशादुपात्तमुपात्तं शरीरं त्यजन् नवं नवं च अन्यदुपाद-
दानो जन्ममरणप्रबन्धचक्रे घटीयन्त्रवत् स्वकर्मणा भ्राम्यमाणः
क्रमेणेदं शरीरमासाद्य संसारचक्रभ्रमणात् अस्मान्निर्विण्णो
भगवन्तमुपसन्नोऽस्मि संसारचक्रभ्रमणप्रशमाय । तस्मान्नित्य
एवाहं शरीरादन्यः शरीराणि आगच्छन्त्यपगच्छन्ति च वासां-
सीव पुरूपस्येति ॥ १२ ॥ आचार्यो ब्रूयात् साध्ववादीः सम्य-
क्पश्यसि कथं मृपाऽवादीः ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयो ब्रह्मचार्यासम्,
गृहस्थो वा इदानीमस्मि परमहंसपरिव्राडिति ॥ १३ ॥ तं प्रति
ब्रूयादाचार्यः स यदि ब्रूयात्-भगवन्, कथमहं मृपाऽवादिप-
मिति ॥ १४ ॥ यतस्त्वं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं शरीरं जात्य-
न्वयवर्जितस्यात्मनः प्रत्यभ्यज्ञासीः ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वय इत्या-
दिना वाक्येनेति ॥ १५ ॥ स यदि पृच्छेत् कथं भिन्नजात्य-
न्वयसंस्कारं शरीरं, कथं वा अहं जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इति
॥ १६ ॥ आचार्यो ब्रूयात् शृणु सोम्य, यथेदं शरीरं तत्तो-
भिन्नं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं त्वं च जात्यन्वयसंस्कारवर्जितः
इत्युक्त्वा तं स्मारयेत्-सर्तुमर्हसि सोम्य, परमात्मानं सर्वात्मानं

यथोक्तलक्षणं श्रावितोऽसि 'सदेव सोम्येदम्' इत्यादि
 श्रुतिभिः स्मृतिभिश्च । लक्षणं च तस्य श्रुतिभिः स्मृतिभिः
 ॥ १७ ॥ लब्धपरमात्मलक्षणस्मृतये ब्रूयात्-योऽसावाक
 नामा नामरूपाभ्यामर्थान्तरभूतः अशरीरः अस्थूलादिल
 अपहृतपाप्मादिलक्षणश्च सर्वैः संसारधर्मैः अनागन्ति
 'यत्साक्षादपरोक्षाद्ब्रह्म', 'य आत्मा सर्वान्तरः', 'अदृष्टो
 अश्रुतः श्रोता अमतो मन्ता अविज्ञातो विज्ञाता' नित्यवि
 स्वरूपः 'अनन्तरः अत्राह्यः विज्ञानघन एव' परिपूर्णः आ
 वत् अनन्तशक्तिः आत्मा सर्वस्य अशनायादिवर्जितः अ
 भावतिरोभाववर्जितश्च स्वात्मविलक्षणयोः नामरूपयोः ज
 जभूतयोः स्वात्मस्थयोः तत्त्वान्यत्वाभ्यामनिर्वचनीययोः
 वेद्ययोः सद्भावमात्रेणाचिन्त्यशक्तित्वाद्वाकर्ता अव्याकृत
 ॥ १८ ॥ ते नामरूपे अव्याकृते सती व्याक्रियमाणे तत्
 तत्सादात्मन आकाशनामाकृती संवृत्ते । तच्चाकाशाख्यं
 मनेन प्रकारेण परमात्मनः संभूतं प्रसन्नादिव सलिलान्मल
 फेनम् । न सलिलं न च सलिलादत्यन्तभिन्नं फेनम् । त
 लव्यतिरेकेणादर्शनात् । सलिलं तु स्वच्छं अन्यत्फेनान्म
 पात् । एवं परमात्मा नामरूपाभ्यामन्यः फेनस्थानीया
 शुद्धः प्रसन्नः तद्विलक्षणः ते नामरूपे अव्याकृते सती व्य
 यमाणे फेनस्थानीये आकाशनामाकृती संवृत्ते ॥ १९ ॥
 अपि स्थूलभावमापद्यमाने नामरूपे व्याक्रियमाणे वायुभा
 पद्यते ततोऽप्यग्निभावं अग्नेरब्भावं ततः पृथिव्यंभावं इत्येवं
 पूर्वपूर्वानुप्रवेशेन पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यन्तान्युत्पन्नानि
 ततः पञ्चमहाभूतगुणविशिष्टा पञ्चमी । पञ्चमहाभूतगुणविशिष्टा

त्मक्यो ब्रीहियवाद्या ओषधयो जायन्ते ताम्यो भक्षिताभ्यो
लोहितं च शुक्रं च स्त्रीपुंसशरीरसंवन्धि जायते । तदुभयमृतु-
काले अविद्याप्रयुक्तकामखजनिर्मथनोद्धृतं मन्त्रसंस्कृतं गर्भा-
शये निषिच्यते । तत्स्वयोनिरसानुप्रवेशेन विवर्धमानं गर्भीभूतं
नवमे दशमे वा मासि संजायते ॥ २० ॥ तज्जातं लब्धना-
माकृतिकं जातकर्मादिभिः मन्त्रसंस्कृतं पुनः उपनयनसंस्कार-
योगेन ब्रह्मचारिसंज्ञं भवति । तदेव शरीरं पत्नीयोगसंस्कारयो-
गेन गृहस्थसंज्ञं भवति । तदेव वनस्थसंस्कारेण तापस-
संज्ञं भवति । तदेव क्रियाविनिवृत्तिनिमित्तसंस्कारेण परिव्राट्-
संज्ञं भवति । इत्येवं तत्तो भिन्नं भिन्नजात्यन्वयसंस्कारं शरी-
रम् ॥ २१ ॥ मनश्चेन्द्रियाणि च नामरूपात्मकान्येव 'अन्नमयं
हि सोम्य मनः' इत्यादिश्रुतिभ्यः ॥ २२ ॥ कथं चाहं भिन्न-
जात्यन्वयसंस्कारवर्जित इत्येतच्छृणु । योऽसौ नामरूपयोर्व्या-
कर्ता नामरूपधर्मविलक्षणः स एव नामरूपे व्याकुर्वन् सृष्ट्वेदं
शरीरं स्वयं संस्कारधर्मवर्जितो नामरूपे इह प्रविष्टः अन्यैर-
दृष्टः स्वयं पश्यन् तथाऽश्रुतः शृण्वन्-अमतो मन्वानो-अवि-
ज्ञातो विजानन् 'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो नामानि
कृत्वाऽभिवदन् यदास्ते' इति । अस्मिन्नर्थे श्रुतयः सहस्रशः
'तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्', 'अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्',
'स एष इह प्रविष्टः', 'एष त आत्मा', 'स एतमेव सीमानं
विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत', 'एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा', 'सैयं
देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिष्ठो देवताः' इत्याद्याः ॥ २३ ॥
स्मृतयोऽपि 'आत्मैव देवताः सर्वाः', 'नवद्वारे पुरे देही',
'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि', 'समः सर्वेषु भूतेषु', 'उपद्रष्टानुमन्ता

च', 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः', 'अशरीरं शरीरेषु' इत्यादि-
 तस्मात् जाल्यन्वयसंस्कारवर्जितस्त्वमिति सिद्धम् ॥ २४ ॥
 यदि ब्रूयात्-अन्य एवाहमज्ञः सुखी दुःखी बद्धः संसारी-
 न्योऽसौ मद्विलक्षणः असंसारी देवः तमहं बल्युपहारनमस-
 रादिभिः वर्णाश्रमकर्मभिश्चाराध्य संसारसागरादुत्तिष्ठति
 कथमहं स एवेति ॥ २५ ॥ आचार्यो ब्रूयात्-'नैवं सोऽहं
 प्रतिपत्तुमर्हसि प्रतिपिद्धत्वाद्भेदप्रतिपत्तेः' कथं प्रतिपिद्धा
 प्रतिपत्तिरित्यत आह-'अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद-
 'ब्रह्म तं परादाद्योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद', 'मृत्योः स मृत्यु-
 मोति य इह नानेव पश्यति' इत्येवमाद्या ॥ २६ ॥ एता-
 श्रुतयो भेदप्रतिपत्तेः संसारगमनं दर्शयन्ति ॥ २७ ॥ अमेद-
 तिपत्तेश्च मोक्षं दर्शयन्ति सहस्रशः 'स आत्मा तत्त्वमसि'
 परमात्मभावं विधाय 'आचार्यवान्पुरुषो वेद' इत्युक्त्वा 'त-
 तावदेव चिरम्' इति मोक्षं दर्शयन्त्यभेदविज्ञानादेव सत्याभि-
 संधस्यातस्करस्येव दाहाद्यभाववत् संसाराभावं दर्शयन्ति दृ-
 न्तेन-भेददर्शनादसत्याभिसंधस्य संसारगमनं दर्शयन्ति त-
 रस्येव दाहादिदृष्टान्तेन ॥ २८ ॥ 'त इह व्याघ्रो वा' इत्यादि-
 ना च अमेददर्शनात् 'स खराद् भवति' इत्युक्त्वा तद्विपरीत-
 भेददर्शनेन संसारगमनं दर्शयन्ति-'अथ येऽन्यथाऽतो विदु-
 राजानस्तेऽक्षय्यलोका भवन्ति' इति प्रतिशाखम् । तस्मात् सृष्टि-
 वमवादीः ब्राह्मणपुत्रोऽदोन्वयः संसारी परमात्मविलक्षणः
 ॥ २९ ॥ तस्मात् प्रतिपिद्धत्वाद्भेददर्शनस्य भेदविषयत्वाच्च क-
 पादानस्य कर्मसाधनत्वाच्च यज्ञोपवीतादेः कर्मसाधनोपादान-
 परमात्माऽभेदप्रतिपत्त्या प्रतिषेधः कृतो वेदितव्यः ।

तत्साधनानां च यज्ञोपवीतादीनां परमात्माभेदप्रतिपत्तिविरुद्ध-
त्वात् । संसारिणो हि कर्माणि विधीयन्ते तत्साधनानि च यज्ञोप-
वीतादीनि । न परमात्मनोऽभेददर्शिनः । भेददर्शनमात्रेण च ततो
ऽन्यत्त्वम् ॥ ३० ॥ यदि कर्माणि कर्तव्यानि न निवर्तयिषितानि कर्म-
साधनासंबन्धिनः कर्मनिमित्तजात्याश्रमाद्यसंबन्धिनश्च परमा-
त्मनश्च आत्मनैवाभेदप्रतिपत्तिं नावक्ष्यत् 'स आत्मा तत्त्वमसि'
इत्येवमादिभिर्निश्चितरूपैर्वाक्यैः, भेदप्रतिपत्तिनिन्दां च नाभ्य-
धास्यत् 'एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य', 'अनन्वागतं पुण्येनान-
न्वागतं पापेन, अत्र स्तेनोऽस्तेनः' इत्यादिना ॥ ३१ ॥ कर्मा-
संबन्धिस्वरूपत्वं कर्मनिमित्तवर्णाद्यसंबन्धरूपतां च नाभ्यधा-
स्यत् कर्माणि च कर्मसाधनानि च यज्ञोपवीतादीनि यद्यपरि-
तित्याजयिषितानि तस्मात् ससाधनं कर्म परित्यक्तव्यं मुमुक्षुणा
परमात्माऽभेददर्शनविरोधात् आत्मा च पर एवेति प्रतिपत्तव्यो
यथाश्रुत्युक्तलक्षणः ॥ ३२ ॥ स यदि ब्रूयात् भगवन्, दह्यमाने
छिद्यमाने वा देहे प्रत्यक्षा वेदना-अशनायादिनिमित्तं च प्रत्यक्षं
दुःखं मम । परश्चायमात्मा, 'अयमात्माऽपहतपाप्मा विरजो
विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सर्वगन्धरसवर्जितः'
श्रूयते सर्वश्रुतिषु स्मृतिषु । कथं तद्विलक्षणः अनेकसंसारधर्म-
संयुक्तः परमात्मानमात्मत्वेन च मां संसारिणं परमात्मत्वेन
अग्निमिव शीतत्वेन प्रतिपद्येयम् । संसारी च सन् सर्वाभ्युदय-
निःश्रेयससाधने अधिकृतः अभ्युदयनिःश्रेयससाधनानि कर्मा-
णि तत्साधनानि च यज्ञोपवीतादीनि कथं परित्यजेयमिति
॥ ३३ ॥ तं प्रति ब्रूयात्-यदवोचो दह्यमाने छिद्यमाने वा
देहे प्रत्यक्षा वेदनोपलभ्यते ममेति तदसत् । कस्मात् । दह्यमाने

छिद्यमान इव वृक्षे उपलब्धरूपलभ्यमाने कर्मणि शरीरे च
 छेदवेदनाया उपलभ्यमानत्वात् दाहादिसमानाश्रयैव वेदना
 यत्र हि दाहः छेदो वा क्रियते तत्रैव व्यपदिशति दाहादि-
 दनां लोकः न वेदनां दाहाद्युपलब्धरीति । कथं । क ते
 नेति पृष्टः शिरसि मे वेदना उरसि उदरे इति वा यत्र दाह-
 दिस्तत्रैव व्यपदिशति न तूपलब्धरीति । यद्युपलब्धरि-
 स्यात् वेदनानिमित्तं वा दाहच्छेदादि वेदनाश्रयत-
 दिशेदाहाद्याश्रयवत् ॥ ३४ ॥ स्वयं च नोपलभ्येत चक्षु-
 रूपवत् । तस्मात् दाहच्छेदादिसमानाश्रयत्वेन उपलभ्य-
 तादाहादिवत् कर्मभूतैव वेदना । भावरूपत्वाच्च साश्रया त-
 लपाकवत् । वेदनासमानाश्रय एव तत्संस्कारः । स्मृतिस-
 काल एवोपलभ्यमानत्वात् वेदनाविषयः । तन्निमित्तवि-
 द्वेषोऽपि संस्कारसमानाश्रय एव । तथा चोक्तम् 'रूपसं-
 तुल्याऽऽधी रागद्वेषौ भयं च यत् । गृह्यते धीश्रयं तस्माज्ज-
 शुद्धोऽभयः सदा' ॥ ३५ ॥ किमाश्रयाः पुनः रूपादिसं-
 रादय इति । उच्यते । यत्र कामादयः । क पुनस्ते कामा-
 'कामः संकल्पो विचिकित्सा' इत्यादिश्रुतेः बुद्धावेव । त-
 रूपादिसंस्कारादयोऽपि 'कस्मिन्नु रूपाणि प्रतिष्ठितानि
 हृदये' इति श्रुतेः—'कामा येऽस्य हृदि श्रिताः', 'तीर्णो हि
 सर्वान् शोकान् हृदयस्य', 'असङ्गो ह्ययम्', 'तद्वा अस्मत्त-
 च्छन्दाः' इत्यादिश्रुतिभ्यः, 'अविकार्योऽयमुच्यते', 'अद-
 तान्निर्गुणत्वात्' इत्यादि । इच्छाद्वेषादि च क्षेत्रस्यैव वि-
 धर्मो नात्मन इति स्मृतिभ्यश्च कर्मस्यैवाशुद्धिः नात्मस्या-
 ॥ ३६ ॥ अतो रूपादिसंस्काराद्यशुद्धिसंबन्धाभावात् न

स्मादात्मनो विलक्षणस्त्वमिति प्रत्यक्षादिविरोधाभावात् युक्तं
 पर एवात्माऽहमिति प्रतिपत्तुम्—‘तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मि’,
 ‘एकधैवानुद्रष्टव्यम्’, ‘अहमेवाऽधस्तात्’, ‘आत्मैवाऽधस्तात्’,
 ‘सर्वमात्मानं पश्येत्’ ‘यत्र त्वस्य सर्वमात्मैव’, ‘इदं सर्वं यदय-
 मात्मा’, ‘स एपोऽकलः’, ‘अनन्तरमब्राह्मम्’, ‘सब्राह्माभ्यन्तरो
 ह्यजः’, ‘ब्रह्मैवेदम्’, ‘एतया द्वारा प्रापद्यत’, ‘प्रज्ञानस्य नाम-
 धेयानि’, ‘सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म’, ‘तस्माद्वा’, ‘तत्सृष्ट्वा तदे-
 वानुप्राविशत्’, ‘एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी’, ‘अश-
 रीरं शरीरेषु’, ‘न जायते म्रियते’, ‘स्वप्नान्तं जागरितान्तम्’,
 ‘स म आत्मेति विद्यात्’, ‘यस्तु सर्वाणि भूतानि’, ‘तदेजति
 तन्नैजति’, ‘वेनस्तत्पश्यन्’, ‘तदेवाग्निः’, अहं मनुरभवं सूर्यश्च’,
 ‘अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानाम्’, ‘सदेव सोम्य’, ‘तत्सत्यं स
 आत्मा तत्त्वमसि’ इत्यादिश्रुतिभ्यः ॥ ३७ ॥ स्मृतिभ्यश्च—‘पूः
 प्राणिनः सर्वगुहाशयम्’, ‘आत्मैव देवताः’, ‘नवद्वारे पुरे’,
 ‘समं सर्वेषु भूतेषु’, ‘विद्याविनयसंपन्ने’, ‘अविभक्तं विभक्ते-
 षु’, ‘वासुदेवः सर्वम्’ इत्यादिभ्यः एक एवात्मा परं ब्रह्म सर्व-
 संसारधर्मविनिर्मुक्तस्त्वमिति सिद्धम् ॥ ३८ ॥ स यदि ब्रूयात्
 यदि भगवन्, ‘अनन्तरोऽब्राह्मः’ ‘सब्राह्माभ्यन्तरो ह्यजः’
 ‘कृत्स्नः प्रज्ञानघन एव’ सैन्धवघनवदात्मा सर्वमूर्तिभेदवर्जितः
 आकाशवदेकरसः तर्हि किमिदं दृश्यते श्रूयते वा साध्यं साधनं
 वा साधकश्चेति श्रुतिस्मृतिलोकप्रसिद्धं वादिशतविप्रतिपत्तिविषय
 इति ॥ ३९ ॥ आचार्यो ब्रूयात्—अविद्याकृतमेनद्यदिदं दृश्यते
 श्रूयते वा, परमार्थतस्त्वेक एवात्मा अविद्यादृष्टेः अनेकवत्
 आभासते, तिमिरदृष्ट्या अनेकचन्द्रवत् ‘यत्र वा अन्यदिव

स्यात्, 'यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति', 'सं
 मृत्युमामोति', 'अथ यत्रान्यत्पश्यति अन्यच्छृणोति
 द्विजानाति तदल्पम् अथ यदल्पं तन्मर्त्यमिति', 'वाचा
 विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्,' 'अन्योऽसावन्योऽ
 इति भेददर्शननिन्दोपपत्तेरविद्याकृतं द्वैतम् 'एकमेवाऽद्वितीयं
 'यत्र त्वस्य', 'को मोहः कः शोकः' इत्याद्येकत्वविधियुक्ति
 श्वेति ॥ ४० ॥ यद्येवं भगवन्, किमर्थं श्रुत्या साधन
 नादिभेद उच्यते उत्पत्तिः प्रलयश्चेति ॥ ४१ ॥ उच्यते-अविद्यावत्
 उपात्तशरीरादिभेदस्य इष्टानिष्टयो
 मात्मानं मन्यमानस्य साधनैरेवेष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारोपाय
 कमजानतः इष्टप्राप्तिं चानिष्टपरिहारं चेच्छतः शनैस्तद्वि
 ज्ञानं निवर्तयितुं शास्त्रं न साध्यसाधनादिभेदं विधत्ते ।
 एरूपः संसारो हि स इति तद्भेददृष्टिमेवाविद्यां संसारमु
 यति उत्पत्तिप्रलयाद्येकलोपपत्तिप्रदर्शनेन ॥ ४२ ॥ अति
 यामुन्मूलितायां श्रुतिस्मृतिन्यायेभ्यः 'अनन्तरमवाह्यम्,
 वाह्याभ्यन्तरो ह्यजः', 'सैन्धवघनवत्', 'प्रज्ञानघन
 आत्मा', 'आकाशवत्परिपूर्णः' इत्यत्रैव एका प्रज्ञाप्रतिष्ठा
 मर्थदर्शिनो भवति न साध्यसाधनोत्पत्तिप्रलयादिभेदेन
 द्विगन्धोऽभ्युपपद्यते ॥ ४३ ॥ तच्चैतत् परमार्थदर्शनं प्रति
 मिच्छता वर्णाश्रमाद्यभिमानकृतपाङ्करूप-पुत्रविचलोप
 दिभ्यो व्युत्थानं कर्तव्यम् । सम्यक्प्रत्ययविरोधात्तदभिन
 भेददर्शनप्रतिषेधार्थोपपत्तिश्चोपपद्यते । नह्येकस्मिन्नात्मन
 सारिलबुद्धौ शास्त्रन्यायोत्पादितायां तद्विपरीता बुद्धिर्भवति
 नह्यगौ शीतलबुद्धिः शरीरे वा अजरामरबुद्धिः । तस्मात्

द्याकार्यत्वात् सर्वकर्मणां तत्साधनानां च यज्ञोपवीतादीनां
परमार्थदर्शननिष्ठेन त्यागः कर्तव्यः ॥ ४४ ॥

॥ इति शिष्यप्रतिबोधनविधिर्नाम प्रथमप्रकरणं विवृतम् ॥ १ ॥

कूटस्थाद्वयात्मबोधप्रकरणम् ॥ २ ॥

सुखमासीनं ब्राह्मणं ब्रह्मनिष्ठं कश्चिद्ब्रह्मचारी जन्ममरणल-
क्षणात् संसारात् निर्विण्णो मुमुक्षुः विधिवदुपसन्नः पप्रच्छ—
भगवन्, कथमहं संसारान्मोक्षिष्ये शरीरेन्द्रियविषयवेदनावान्
जागरिते दुःखमनुभवामि तथा स्वप्नेऽनुभवामि च पुनः पुनः
सुषुप्तिप्रतिपत्त्या विश्रम्य विश्रम्य, किमयमेव मम स्वभावः
किंवा अन्यस्वभावस्य सतो नैमित्तिकः इति । यदि स्वभावः न
मे मोक्षाशा स्वभावस्यावर्जनीयत्वात् । अथ नैमित्तिकः निमि-
त्तपरिहारे स्थान्मोक्षोपपत्तिः ॥ ४५ ॥ तं गुरुरुवाच—शृणु
वत्स, न तवायं स्वभावः । नैमित्तिकः ॥ ४६ ॥ इति उक्तः
शिष्य उवाच—किं निमित्तं, किं वा तस्य निवर्तकम्, को वा
मम स्वभावः यस्मिन्निमित्ते निवर्तिते नैमित्तिकाभावः रोग-
निमित्तनिवृत्ताविव रोगी स्वभावं प्रपद्येयेति ॥ ४७ ॥ गुरुरु-
वाच—अविद्यानिमित्तं, विद्या तस्य निवर्तिका, अविद्यायां
निवृत्तायां तन्निमित्ताभावात् मोक्ष्यसे जन्ममरणलक्षणात्, स्वप्न-
जाग्रदुःखं च नानुभविष्यसीति ॥ ४८ ॥ शिष्य उवाच—का
सा अविद्या, किंविषया वा, विद्या च का यया स्वभावं प्रति-
पद्येयेति ॥ ४९ ॥ गुरुरुवाच—त्वं परमात्मानं सन्तं असंसा-
रिणं संसार्यहमस्मीति विपरीतं प्रतिपद्यसे, अकर्तारं सन्तं
कर्तेति, अभोक्तारं सन्तं भोक्तेति, विद्यमानं च अविद्यमान-
मिति, इयमविद्या ॥ ५० ॥ शिष्य उवाच—यद्यप्यहं विद्य-

मानः तथापि न परमात्मा, कर्तृत्वभोक्तृत्वलक्षणः संसारो
 स्वभावः, प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः अनुभूयमानत्वात् । न
 दानिमित्तः अविद्यायाः स्वात्मविषयत्वानुपपत्तेः । अ
 नाम अन्यस्मिन् अन्यधर्माध्यारोपणा—यथा प्रसिद्धं रजतं
 द्वायां शुक्तिकायां, यथा प्रसिद्धं पुरुषं स्थाणावधारो
 प्रसिद्धं वा स्थाणुं पुरुषे । नाप्रसिद्धं प्रसिद्धे प्रसिद्धं चाप्र
 नचात्मन्यनात्मानमध्यारोपयति आत्मनः अप्रसिद्धत्वा
 तथा आत्मानं अनात्मनि आत्मनोऽप्रसिद्धत्वादेव ॥ ५१ ॥
 तं गुरुरावाच—न, व्यभिचारात् । नहि वत्स, प्रसिद्धं
 एवाध्यारोपयतीति नियन्तुं शक्यम् । आत्मन्यध्यारोप
 नात् । गौरोऽहं कृष्णोऽहमिति देहधर्मस्य अहंप्रत्यय
 आत्मनि, अहंप्रत्ययविषयस्य च आत्मनः देहे अवयव
 ॥ ५२ ॥ शिष्य आह—प्रसिद्ध एव तर्ह्यात्मा अहंप्रत्यय
 यतया देहश्च अयमिति । तत्रैवं सति प्रसिद्धयोरेव देहात्म
 तरेतराध्यारोपणात् स्थाणुपुरुषयोः शुक्तिकारजतयोरिव
 कं विशेषमाश्रित्य भगवतोक्तं प्रसिद्धयोरितरेतराध्यारो
 नियन्तुं न शक्यते इति ॥ ५३ ॥ गुरुराह—मृणु ।
 प्रसिद्धां देहात्मानौ नतु स्थाणुपुरुषाविव विविक्तप्रत्यय
 तथा सर्वलोकप्रसिद्धौ । कथं तर्हि नित्यमेव निरंतरादि
 प्रत्ययविषयतया । नहि अयं देहः, अयमात्मा, इति वि
 भ्यां प्रत्ययाभ्यां देहात्मानौ गृह्णाति यतः कश्चित् । न
 हि मोमुह्यते लोकः आत्मानात्मविषये एवमात्मा नैव
 इति । इमं विशेषमाश्रित्यावोचं नैवं नियन्तुं शक्यमिति
 ननु अविद्याऽध्यारोपितं यत् सत् तदसत् सत् इयं श्रुतिः

शुक्तिकायां, स्थाणौ पुरुषं, रज्ज्वां सर्पः, आकाशे तलमलिन-
 त्वमित्यादि, तथा—देहात्मनोरपि नित्यमेव निरन्तराधिविक्तग्र-
 त्ययतया इतरेतराध्यारोपणा कृता स्यात् तदितरेतरयोः नित्य-
 मेव असत्त्वे स्यात् । यथा शुक्तिकादिषु अविद्याध्यारोपितानां
 रजतादीनां नित्यमेव अत्यन्तासत्त्वं तद्विपरीतानां
 च विपरीतेषु तद्वत् देहात्मनोरविद्ययैव इतरेतराध्यारोपणा
 कृता स्यात् । तत्रैवंसति देहात्मनोरसत्त्वं प्रसज्येत । तच्चानिष्टं
 वैनाशिकपक्षत्वात् । अथ तद्विपर्ययेण देहः आत्मन्यविद्यया-
 ऽध्यारोपितः देहस्यात्मनि सति असत्त्वं प्रसज्येत । तच्चानिष्टं
 प्रत्यक्षादिविरोधात् । तस्माद्देहात्मानौ नाविद्यया इतरेतरस्मिन्
 अध्यारोपितौ कथं तर्हि वंशस्तम्भवन्नित्यसंयुक्तौ ॥ ५५ ॥
 न । अनित्यत्वपरार्थप्रसङ्गात्—संहतत्वात् परार्थत्वं अनित्यत्वं च
 वंशस्तम्भादिवदेव । किंच यस्तु परैर्देहेन संहतः कल्पित
 आत्मा स संहतत्वात् परार्थः । तेन असंहतः परोऽन्यो नित्यः
 सिद्धस्तावत् ॥ ५६ ॥ तस्यासंहतस्य देहे देहमात्रतया अध्या-
 रोपितत्वेन असत्त्वानित्यत्वादिदोषप्रसङ्गो भवति । तत्र निरा-
 त्मको देह इति वैनाशिकपक्षप्राप्तिदोषः स्यात् ॥ ५७ ॥ न
 स्वत एवात्मनः आकाशस्येव असंहतत्वाभ्युपगमात् सर्वेणा-
 संहतः स च आत्मेति न निरात्मको देहादिः सर्वः स्यात् ।
 तथाच आकाशं सर्वेणासंहतमिति सर्वं न निराकाशं भवति
 एवम् । तस्मान्न वैनाशिकपक्षप्राप्तिदोषः स्यात् ॥ ५८ ॥ यत्पु-
 नरुक्तं देहस्यात्मन्यसत्त्वे प्रत्यक्षादिविरोधः स्यादिति । तन्न ।
 प्रत्यक्षादिभिः आत्मनि देहस्य सत्त्वानुपलब्धेः । नद्यात्मनि
 कुण्डे वदरं क्षीरे सर्पिः तिले तैलं भित्तौ चित्रमिव च प्रत्यक्षा-

दिभिः देह उपलभ्यते । तस्मान्न प्रत्यक्षादिविरोधः ॥ ५९ ॥
 कथं तर्हि प्रत्यक्षाद्यप्रसिद्धात्मनि देहाध्यारोपणा, दे
 आत्मारोपणा ॥ ६० ॥ नायं दोषः । स्वभावप्रसिद्धत्वा
 नः । नहि कादाचित्कसिद्धावेव अध्यारोपणा न निर्ल
 इति नियन्तुं शक्यं, आकाशे तलमलाद्यध्यारोपणद
 ॥ ६१ ॥ किं भगवन्, देहात्मनोः इतरेतराध्यारोपणा
 दिसंघातकृता अथवा आत्मकृतेति ॥ ६२ ॥ गुरुरवाच-
 देहादिसंघातकृता यदि वा आत्मकृता किं तत्र स्यात् ॥ ६३ ॥
 इत्युक्तः शिष्य आह-यद्यहं देहादिसंघातमात्रः ततो म
 तनत्वात् परार्थत्वमिति न मत्कृता देहात्मनोः इतरेतरा
 पणा । अथाहमात्मा परोऽन्यः संघातात् चित्तिमत्त्वात्
 इति मयैव चित्तिमत्ता आत्मनि अध्यारोपणा क्रियते स
 बीजभूता ॥ ६४ ॥ इत्युक्तो गुरुरवाच-अनर्थबीजभूता
 मिथ्याध्यारोपणां जानीये मा कार्पीस्तर्हि ॥ ६५ ॥ नैव भ
 शक्नोमि न कर्तुम् । अन्येन केनचित् प्रयुक्तोऽहं न
 इति ॥ ६६ ॥ न तर्हि अचित्तिमत्त्वात् स्वार्थः त्वम्
 प्रयुक्तः अस्वतन्त्रः प्रवर्तसे स चित्तिमान् स्वार्थः संघा
 त्वम् ॥ ६७ ॥ यद्यचेतनोऽहं कथं सुखदुःखवेदनां भवदु
 जानामि ॥ ६८ ॥ गुरुरवाच-किं सुखदुःखवेदनाया म
 चान्यस्त्वं, किं वा अनन्य एवेति ॥ ६९ ॥ शिष्य उ
 नाहं तावदनन्यः । कस्मात् । यस्मात्तदुभयं कर्मभूतं घटा
 मिव जानामि, यद्यनन्योऽहं तेन तदुभयं न जानीयां
 जानामि तस्मादनन्यः । सुखदुःखवेदनाविक्रिया च
 प्राप्नोति त्वदुक्तं च स्यात् । अनन्यत्वे न च तयोः

युक्ता । नहि चन्दनकण्टककृते सुखदुःखे चन्दनकण्टकार्थे
घटोपयोगो वा घटार्थः । तस्मात् तद्विज्ञातुर्मम चन्दनादिकृतः
अर्थः । अहं हि ततोऽन्यः समस्तमर्थं जानामि बुद्ध्याखण्डम्
॥ ७० ॥ तं गुरुरुवाच-एवं तर्हि स्वार्थस्त्वं चितिमत्त्वान्न परेण
प्रयुज्यसे । नहि चितिमान् परतन्त्रः परेण प्रयुज्यते-चितिम-
तश्चितिमदर्थत्वानुपपत्तेः समत्वात्प्रदीपप्रकाशयोरिव । नापि
अचितिमदर्थत्वं चितिमतो भवति, अचितिमतोऽचितिमत्त्वा-
देव स्वार्थसंचन्धानुपपत्तेः । नापि अचितिमतोः अन्योन्यार्थत्वं
दृष्टम् । नहि काष्ठकुड्ये अन्योन्यार्थं कुर्वति ॥ ७१ ॥ ननु
चितिमत्त्वे समेऽपि भृत्यस्वामिनोः अन्योन्यार्थत्वं दृष्टम् ॥ ७२ ॥
नैवं-अग्रेरुष्णप्रकाशवत् तव चितिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात् प्रद-
र्शितश्च दृष्टान्तः प्रदीपप्रकाशयोरिति । तत्रैवं सति स्वबुद्ध्याख-
ण्डमेव सर्वमुपलभसे अग्रेरुष्णप्रकाशतुल्येन कूटस्थनित्यचैतन्यस्व-
रूपेण यदि चैवमात्मनः सर्वदा निर्विशेषत्वमुपगच्छसि । कि-
मित्यूचिवान् सुपुत्रे विश्रम्य विश्रम्य जाग्रत्स्वप्नयोः दुःखमनु-
भवामि इति । किं अयमेव मम स्वभावः किंवा नैमित्तिकः
इति च । किमसौ व्यामोहोऽपगतः किंवा नेति ॥ ७३ ॥ इत्यु-
क्तः शिष्य आह-भगवन्, अपगतः त्वत्प्रसादात् व्यामोहः
किंतु मम कूटस्थतायां संशयः कथम्-शब्दादीनां स्वतः सिद्धि-
र्नास्ति अचेतनत्वात्-शब्दाद्याकारग्रत्ययोत्पत्तेस्तु तेषाम् ग्रत्य-
यानामितरेतरव्यावृत्तविशेषणानां नीलपीताद्याकारवतां स्वतः
सिद्ध्यसंभवात् । तस्माद्वाद्याकारनिमित्तत्वं गम्यते इति वाद्या-
कारवत् शब्दाद्याकारत्वसिद्धिः । तथा ग्रत्ययानामपि अहंग्रत्य-
यालम्बनवस्तुभेदानां संहतत्वात् अचेतन्योपपत्तेः स्वार्थत्वासं-

मवात्-स्वरूपव्यतिरिक्तग्राहकग्राह्यत्वेन सिद्धिः शब्दादि
 असंहतत्वे सति चैतन्यात्मकत्वात् स्वार्थोऽपि अहंप्रत्यक्ष
 नीलपीताद्याकाराणामुपलब्धेति विक्रियावानेव कूटस्थः ।
 संशयः ॥ ७४ ॥ तं गुरुरुवाच-न युक्तस्तव संशयः । य-
 पां प्रत्ययानां नियमेन अशेषतः उपलब्धेरेव अपरिणामि-
 कूटस्थत्वसिद्धौ निश्चयेहेतुमेव अशेषचित्तप्रचारोपलब्धिं क-
 हेतुमात्थ । यदि हि तव परिणामित्वं स्यात् अशेषस्वविप-
 चप्रचारोपलब्धिर्न स्यात् चित्तस्येव स्वविषये । यथा चेद-
 णां स्वविषयेषु । नच तथाऽत्मनस्तव स्वविषयैकदेशोपल-
 अतः कूटस्थतैव तवेति ॥ ७५ ॥ तत्राह-उपलब्धिर्नाम
 त्वर्थो विक्रियैव उपलब्धुः कूटस्थात्मता चेति विरुद्धम् ॥
 न धात्वर्थविक्रियायां उपलब्ध्युपचारात् । यो हि बौद्धः
 यः स धात्वर्थो विक्रियात्मकः आत्मनः उपलब्ध्याभास-
 वसान इति उपलब्धिशब्देन उपचर्यते । यथा छिदि-
 द्वैधीभावफलावसानेति धात्वर्थेन उपचर्यते तद्वत् ॥ ७६ ॥
 इत्युक्तः शिष्य आह-ननु भगवन्, मम कूटस्थत्वप्रति-
 प्रति असमर्थो दृष्टान्तः कथम्, छिदिः छेद्यविक्रियाव-
 उपचर्यते-यथा धात्वर्थत्वेन तथा उपलब्धिशब्दोऽपचर्यते
 धात्वर्थो बौद्धप्रत्ययः आत्मनः उपलब्धिविक्रियावसा-
 नात्मनः कूटस्थतां प्रतिपादयितुं समर्थः ॥ ७८ ॥ गुरु-
 -सत्यमेवं स्यात् यदि उपलब्ध्युपलब्धोः विशेषः । नित्य-
 णिमात्र एव हि उपलब्धा नतु तार्किकसमय इव अन्त-
 लब्धिः अन्यः उपलब्धा च ॥ ७९ ॥ ननु उपलब्धिफल-
 नो धात्वर्थः कथमिति ॥ ८० ॥ अन्यतो-मृग्य-उपलब्धि-

सफलावसान इत्युक्तं किं न श्रुतं तत् त्वया, नतु आत्मा वि-
क्रियोत्पादनावसान इति मयोक्तम् ॥ ८१ ॥ शिष्य उवाच-
कथं तर्हि कूटस्थे मयि अशेषस्वविषयचित्तप्रचारोपलब्धत्वमि-
त्यात्थ ॥ ८२ ॥ तं गुरुरूवाच-सत्यमवोचं, तेनैव कूटस्थता-
मयुवं तव ॥ ८३ ॥ यद्येवं भगवन्, कूटस्थनित्योपलब्धिस्वरूपे
मयि शब्दाद्याकारबौद्धप्रत्ययेषु च मत्स्वरूपोपलब्ध्याभासफ-
लावसानवत्सु उत्पद्यमानेषु कस्त्वपराधो मम ॥ ८४ ॥ सत्यम्
नास्त्यपराधः किंतु अविद्यामात्रस्तु अपराध इति प्रागेवावो-
चम् ॥ ८५ ॥ यदि भगवन्, सुषुप्ते इव मम विक्रिया नास्ति
कथं स्वप्नजागरिते ॥ ८६ ॥ तं गुरुरूवाच-किं त्वनुभूयेते त्वया
सततम् ॥ ८७ ॥ बाढम् अनुभवामि, किंतु विच्छिद्यविच्छिद्य
नतु सततम् ॥ ८८ ॥ तं गुरुरूवाच-तर्हि आगन्तुके त्वेते न
तवात्मभूते, यदि तवात्मभूते चैतन्यस्वरूपवत् स्वतःसिद्धे संतते
एव स्याताम् । किंच स्वप्नजागरिते न तव आत्मभूते व्यभि-
चारित्वात् वस्त्रादिवत् । नहि यस्य यत्स्वरूपं तत् तद्व्यभिचारि
दृष्टम् । स्वप्नजागरिते तु चैतन्यमात्रत्वाद्यभिचरतः । सुषुप्ते चेत्
स्वरूपं व्यभिचरेत् तन्नष्टं नास्तीति वा बाध्यमेव स्यात् आगं-
न्तुकानां अतद्धर्माणां उभयात्मकत्वदर्शनात् यथा धनवस्त्रा-
दीनां नाशो दृष्टः स्वप्नभ्रान्तिलब्धानां तु अभावो दृष्टः ॥ ८९ ॥
नन्वेवं भगवन्, चैतन्यस्वरूपमपि आगन्तुकं प्राप्तम् । स्वप्नजाग-
रितयोरिव सुषुप्ते अनुपलब्धेः । अचैतन्यस्वरूपो वा स्यामहम्
॥ ९० ॥ न पश्य तदनुपपत्तेः । चैतन्यस्वरूपं चेत् आगन्तुकं
पश्यसि, पश्य । नैतद्वर्षशतेनापि उपपत्त्या कलयितुं शक्नुमो
वयम्, अन्यो वाऽचैतन्योऽपि संहतत्वात् पारार्थ्यं अनेकत्वं

नाशित्वं च न केनचित् उपपत्त्या वारयितुं शक्यम् । अ-
 स्य स्वतःसिद्धभावादित्यवोचाम । चैतन्यस्वरूपस्य तु आ-
 स्वतःसिद्धेः अन्यानपेक्षत्वं न केनचित् वारयितुं शक्यम् ।
 व्यभिचारात् ॥ ९१ ॥ ननु व्यभिचारो दर्शितो मया सु-
 पश्यामीति ॥ ९२ ॥ न व्याहतत्वात् । कथं व्याघातः ।
 तस्तव न पश्यामि इति व्याहतं वचनम् । नहि कदाचित्
 वन्, सुषुप्ते मया चैतन्यं अन्यद्वा किञ्चित् दृष्टम् । पश्यन्
 सुषुप्ते त्वम् यस्मात् दृष्टमेव प्रतिपेधसि न दृष्टिम् । या तव
 तत् चैतन्यमिति मयोक्तम् । यया त्वं विद्यमानया न किं
 दृष्टमिति प्रतिपेधसि सा दृष्टिः त्वच्चैतन्यम् । तर्हि सर्वत्र
 व्यभिचारात् कूटस्थनित्यत्वं सिद्धं स्वत एव न प्रमाणापेक्षा-
 स्वतःसिद्धस्य हि प्रमातुः अन्यस्य प्रमेयस्य परिच्छि-
 प्रमाणापेक्षा । या तु अन्या नित्यापरिच्छित्तिः अपेक्ष्यते
 स अपरिच्छित्तिरूपस्य परिच्छेदाय सा हि नित्यैव क-
 स्वयंज्योतिःस्वभावा, आत्मनि प्रमाणत्वे प्रमातृत्वे वा न
 प्रति प्रमाणापेक्षा, तत्स्वभावत्वात् । यथा प्रकाशनं उष्णत-
 लोहोदकादिषु परतः अपेक्षते अग्न्यादित्यादिभ्यः
 त्वभावत्वात् न अग्न्यादित्यादीनां तदपेक्षा सर्वदा त-
 भावत्वात् ॥ ९३ ॥ अनित्यत्वे एव प्रमा स्यात् न नित्य-
 इति चेत् ॥ ९४ ॥ न । अवगतेः नित्यत्वानित्यत्वयोः किञ्चि-
 नुपपत्तेः । नहि अवगतेः प्रमात्वे अनित्या अवगतिः प्र-
 नित्या इति विशेषः अवगम्यते ॥ ९५ ॥ नित्यायां प्र-
 अपेक्षाभावः । अनित्यायां तु यत्नान्तरितत्वात् अवगतिः
 क्ष्यत इति विशेषः स्यात् इति चेत् ॥ ९६ ॥ सिद्धा तर्हि

त्मनः प्रमातुः स्वतःसिद्धिः प्रमाणनिरपेक्षतयैवेति ॥ ९७ ॥
 अभावेऽपि अपेक्षाऽभावः नित्यत्वात् इति चेत् न । अवगतेरेव
 आत्मनि सद्भावादिति परिहृतमेतत् ॥ ९८ ॥ प्रमातुश्चेत् प्रमा-
 णापेक्षासिद्धिः कस्य प्रमित्सा स्यात् । यस्य प्रमित्सा स एव
 प्रमाता अभ्युपगम्यते तदीया च प्रमित्सा प्रमेयविषयैव न
 प्रमातृविषया । प्रमातृविषयत्वे अनवस्थाप्रसङ्गात् । प्रमातुः
 तदिच्छायाश्च तस्याप्यन्यः प्रमाता तस्याप्यन्य इति एवमेव
 इच्छायाः प्रमातृविषयत्वे प्रमातुरात्मनः अव्यवहितत्वाच्च प्रमे-
 यत्वानुपपत्तिः । लोके हि प्रमेयं नाम प्रमातुः इच्छा-स्मृति-
 प्रयत्न-प्रमाणजन्म-व्यवहितं सिद्ध्यति नान्यथा । अवगतिः
 प्रमेयविषया दृष्टा । नच प्रमातुः प्रमाता स्वस्य स्वयमेव केनचित्
 व्यवहितः कल्पयितुं शक्यः इच्छादीनामन्यतमेनापि । स्मृति-
 श्च स्मृत्यविषया न स्मृत्यविषया । तथा इच्छायाः इष्टविषय-
 त्वमेव न इच्छावद्विषयत्वम् सान्निध्यविषयत्वेऽपि हि उभयोः
 अनवस्था पूर्ववदपरिहार्या स्यात् ॥ ९९ ॥ ननु प्रमातृविषया-
 वगत्यनुत्पत्तौ अनवगत एव प्रमाता स्यादिति चेत् ॥ १०० ॥
 न, अवगन्तुः अवगतेः अवगन्तव्यविषयत्वात् अवगन्तृविषयत्वे
 च अनवस्था पूर्ववत् स्यात् । अवगतिश्च आत्मनि कूटस्थनित्या-
 त्मज्योतिः अन्यतः अन्यतः अनपेक्षैव सिद्धा अग्न्यादित्याद्यु-
 ष्णप्रकाशवदिति पूर्वमेव प्रसाधितम् । अवगतेः चैतन्यात्मज्यो-
 तिषः स्वात्मनि अनित्यत्वे आत्मनः स्वार्थतानुपपत्तिः कार्य-
 कारणसंघातवत् संहतत्वात् पारार्थ्यं दोषवत्त्वं च अवोचाम ।
 कथम् । चैतन्यात्मज्योतिषः स्वात्मनि अनित्यत्वे स्मृत्यादि-
 व्यवधानात् सान्तरत्वम् । ततश्च तस्य चैतन्यज्योतिषः प्रागुत्प-

तेः प्रध्वंसाच्चोर्ध्वं आत्मन्येव अभावात् चक्षुरादीनामिव संत-
 त्वात् पारार्थ्यं स्यात् । यदा च तत् उत्पन्नं आत्मनि विद्यते
 तदा आत्मनः स्वार्थत्वम् तद्भावाभावापेक्षा हि आत्मानात्मन-
 स्वार्थत्वपरार्थत्वसिद्धिः । तस्मात् आत्मनः अन्यनिरपेक्ष-
 नित्यचैतन्यज्योतिष्टं सिद्धम् ॥ १०१ ॥ ननु एवं सति अ-
 प्रमाऽश्रयत्वे कथं प्रमातुः प्रमातृत्वम् ॥ १०२ ॥ उच्यते-
 प्रमायाः नित्यत्वे अनित्यत्वे च रूपविशेषाभावात् । अवयव-
 हिं प्रमा तस्याः स्मृतीच्छादिपूर्विकायाः अनित्यायाः कूटस्थ-
 त्याया वा न स्वरूपविशेषो विद्यते । यथा धात्वर्थस्य तिष्ठत्वा-
 फलस्य गत्यादिपूर्वकस्य अनित्यस्य अपूर्वस्य नित्यस्य वा त-
 विशेषो नास्तीति तुल्यो व्यपदेशो दृष्टः तिष्ठन्ति मनुष्याः
 णन्ति पर्वताः इत्यादि । तथा नित्यावगतिस्वरूपेऽपि प्रमा-
 प्रमातृत्वव्यपदेशो न विरुद्ध्यते फलसामान्यादिति ॥ १०३ ॥
 अत्राह शिष्यः—नित्यावगतिस्वरूपस्य आत्मनः अविक्रिय-
 कार्यकरणैः असंहत्य तक्षादीनामिव वास्यादिभिः कर्तृत्वं नो-
 पद्यते, असंहतस्वभावस्य च कार्यकरणोपादाने अनवस्था-
 ज्यते, तक्षादीनां तु कार्यकरणैः नित्यमेव संहतत्वमिति वा-
 द्युपादाने नानवस्था स्यादिति ॥ १०४ ॥ इह तु असंहत-
 भावस्य करणानुपादाने कर्तृत्वं नोपपद्यत इति करणं उपादान-
 -तदुपादानमपि विक्रियैवेति तत्कर्तृत्वे करणान्तरमुपादेय-
 तदुपादानेऽपि अन्यदिति प्रमातुः स्वातन्त्र्ये अनवस्था अ-
 हार्या स्यात् इति । नच क्रियैव आत्मानं कारयति अनि-
 तायाः स्वरूपाभावात् । अथ अन्यत् आत्मानं उपेत्य कि-
 कारयतीति चेत् । न । अन्यस्य स्वतः सिद्धत्वाविषयत्वाद्य-

तेः । नहि आत्मनः अन्यत् अचेतनं वस्तु स्वप्रमाणकं दृष्टम् ।
 शब्दादिसर्वमेव अवगतिफलावसानप्रत्ययप्रमितं सिद्धं स्यात्
 अवगतिश्चेदात्मनोज्ञस्य स्यात् सोऽपि आत्मैव असंहतः स्वार्थः
 स्यात् न परार्थः । नच देहेन्द्रियविषयाणां स्वार्थतां अवगन्तुं
 शक्नुमः । अवगत्यवसानप्रत्ययापेक्षसिद्धिदर्शनात् ॥ १०५ ॥
 ननु देहस्यावगतौ न कश्चित् प्रत्यक्षादिप्रत्ययान्तरं अपेक्षते
 ॥ १०६ ॥ बाढम् । जाग्रति एवं स्यात् । मृत्तिसुषुप्त्योस्तु देह-
 स्थापि प्रत्यक्षादिप्रमाणापेक्षैव सिद्धिः तथैव इन्द्रियाणां बाह्या
 एव हि शब्दादयो देहेन्द्रियाकारपरिणता इति प्रत्यक्षादिप्रमा-
 णापेक्षैव हि सिद्धिः । सिद्धिरिति च प्रमाणफलं अवगतिं अवो-
 चाम । सा च अवगतिः कूटस्था स्वयंसिद्धाऽत्मज्योतिःस्वरूपेति
 च ॥ १०७ ॥ अत्राह चोदकः । अवगतिः प्रमाणानां फलं
 कूटस्थनित्यात्मज्योतिःस्वरूपेति च विप्रतिपिद्धम् इत्युक्तवन्त-
 माह-न विप्रतिपिद्धम् । कथं तर्हि कूटस्था नित्यापि सती
 प्रत्यक्षादिप्रत्ययान्ते लक्ष्यते तादर्थ्यात् । प्रत्यक्षादिप्रत्ययस्य
 अनित्यत्वे अनित्येव भवति तेन प्रमाणानां फलं इति उपचर्य-
 ते ॥ १०८ ॥ यद्येवं भगवन् ! कूटस्थनित्यावगतिः आत्मज्यो-
 तिःस्वरूपैव स्वयंसिद्धा आत्मनि प्रमाणनिरपेक्षत्वात् ततोऽन्यतः
 अचेतनं संहत्यकारित्वात् परार्थं येन च सुखदुःखमोहप्रत्यया-
 वगतिरूपेण पारार्थ्यं तेनैव स्वरूपेण अनात्मनः अस्तित्वं ना-
 न्येन रूपान्तरेण, अतो नास्तित्वमेव परमार्थतः । यथा हि
 लोके रज्जुसर्पमरीच्युदकादीनां तदवगतिव्यतिरेकेण अभावो
 दृष्टः एवं जाग्रत्स्वप्नद्वैतभावस्यापि तदवगतिव्यतिरेकेण अभावो
 युक्तः एवमेव परमार्थतः भगवन्, अवगतेः आत्मज्योतिषः

नैरन्तर्यभावात् कूटस्थनित्यता अद्वैतभावश्च सर्वप्रत्ययभेद-
 अव्यभिचारात् प्रत्ययभेदाश्च अवगतिं व्यभिचरन्ति । स्वप्ने
 नीलपीताद्याकारभेदरूपाः प्रत्ययाः तदवगतिं व्यभिच-
 रन्तः परमार्थतो न सन्तीत्युच्यन्ते एवं जाग्रत्यपि नीलपीता-
 प्रत्ययभेदाः तामेवावगतिं व्यभिचरन्तः असत्यरूपाः भवि-
 र्हन्ति । तस्याश्च अवगतेः अन्यः अवगन्ता नास्तीति न त-
 स्वरूपेण स्वयं उपादातुं हातुं वा शक्यते अन्यस्य च अभाव-
 ॥ १०९ ॥ तथैवेति । एषा अविद्या यन्निमित्तः संसारो-
 त्स्वप्नलक्षणः । तस्याः अविद्यायाः विद्या निवर्तिका । इ-
 त्वं अभयं प्राप्नोषि-नातः परं जाग्रत्स्वप्नदुःखमनुभव-
 संसारदुःखान्मुक्तोसीति ॥ ११० ॥ ओमिति ॥ १११
 इति कूटस्थाद्वयात्मबोधनामकं अवगतिप्रकरणं द्वितीयं विवृतम् ।

अथ परिसंख्यानप्रकरणं तृतीयम् ॥ ३ ॥

मुमुक्षूणां उपात्तपुण्यापुण्यक्षपणपराणां अपूर्वानुपचयार्थं
 परिसंख्यानमिदमुच्यते अविद्याहेतवो दोषाः बाधनः काव-
 र्त्तिहेतवः-प्रवृत्तेश्च इष्टानिष्टमिश्रफलानि कर्माणि उपची-
 इति तन्मोक्षार्थम् ॥ ११२ ॥ तत्र शब्दस्पर्शरूपरसगन्ध-
 श्रोत्रादिग्राह्यत्वात् स्वात्मनि परेषु वा विज्ञानाभावः, तेषां
 परिणतानां यथा लोष्टादीनां श्रोत्रादिद्वारैश्च ज्ञायन्ते, तेन
 ज्ञायन्ते सः ज्ञातृत्वात् अतज्जातीयः, ते हि शब्दादयः
 न्योन्यसंसर्गित्वात् जन्मवृद्धिविपरिणामापक्षयनाशसंयोगवि-
 गाविर्भावतिरोभावविकारविकारिक्षेत्रवीजाद्यनेकधर्माणः
 मान्येन च सुखदुःखाद्यनेकधर्माणः तद्विज्ञातृत्वादेव तस्मिन्
 सर्वशब्दादिधर्मविलक्षणः ॥ ११३ ॥ तत्र शब्दादिभिः

लभ्यमानैः पीड्यमानो विद्वान् एवं परिसंचक्षीत ॥ ११४ ॥
 शब्दस्तु ध्वनिसामान्यमात्रेण विशेषधर्मैर्वा पङ्गादिभिः प्रियैः
 स्तुत्यादिभिः इष्टैः अनिष्टैश्च असत्यवीभत्सपरिभवाऽक्रोशादि-
 भिर्वचनैः मां दृक्स्वभावं असंसर्गिणं अविक्रियं अचलं अनि-
 धनं अभयं अत्यन्तमृक्षं अविषयं गोचरीकृत्य स्पष्टं नैवार्हति
 असंसर्गित्वादेव माम् । अतएव न शब्दनिमित्ता हानिः वृद्धिर्वा
 अतो मां किं करिष्यति स्तुतिनिन्दादिप्रियाप्रियत्वादिलक्षणः
 शब्दः । अविवेकिनं हि शब्दं आत्मत्वेन गतं प्रियः शब्दो वर्धयेत्
 अप्रियश्च क्षपयेत् अविवेकित्वात्, नतु मम विवेकिनो बाला-
 ग्रमात्रमपि कर्तुमुत्सहत इति, एवमेव स्पर्शसामान्येन तद्विशेषैश्च
 शीतोष्णमृदुर्कृक्कादि-ज्वरोदरशूलादिलक्षणैश्च अप्रियैः प्रियैश्च
 कैश्चित् शरीरसमवायिभिः बाह्यागन्तुकनिमित्तैश्च न मम का-
 चित् विक्रिया वृद्धिहानिलक्षणा अस्पर्शत्वात् क्रियते व्योम्न
 इव मुष्टिघातादिभिः । तथा रूपसामान्येन तद्विशेषैश्च प्रिया-
 प्रियैः स्त्रीव्यञ्जनादिलक्षणैः अरूपत्वात् न मम काचित् हानिः
 वृद्धिर्वा क्रियते । तथा रससामान्येन तद्विशेषैश्च प्रियाप्रियैः मधु-
 राम्ललवणकटुतिक्तकषायैः मूढबुद्धिभिः परिगृहीतैः अरसा-
 त्मकस्य मम न काचित् हानिः वृद्धिर्वा क्रियते । तथा गन्ध-
 सामान्येन तद्विशेषैः प्रियाप्रियैः पुष्पाद्यनुलेपनादिलक्षणैः
 अगन्धात्मकस्य न मम काचित् हानिः वृद्धिर्वा क्रियते—‘अश-
 ब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्’ इति
 श्रुतेः ॥ ११५ ॥ किंच य एव बाह्याः शब्दादयः ते शरीरा-
 कारेण संस्थिताः तद्बाह्यैश्च श्रोत्राद्याकारैः अन्तःकरणद्वयतद्वि-
 पयाकारेण च अन्योन्यसंसर्गित्वात् संहतत्वाच्च सर्वक्रियासु तत्र

एवं सति विदुषो मम न कश्चित् शत्रुः मित्रं उदासीनो
 अस्ति, तत्र यदि कश्चित् मिथ्याज्ञानाभिमानेन प्रियं वा
 वा प्रयुयुङ्क्षेत् क्रियाफललक्षणं तन्मृपैव प्रयुयुङ्क्षेत् सः तस्य
 ययत्नान्मम—‘अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयं, इति स्मृतेः ।
 सर्वेषां पञ्चानामपि भूतानां अविकार्यः अविषयत्वात् ‘अ-
 व्योऽयमदाह्योऽयं’ इति स्मृतेः । यापि शरीरेन्द्रियसंस्थान-
 मुपलक्ष्य मद्भक्तानां विपरीतानां च क्रियाऽक्रियादिप्रयु-
 तञ्जा च धर्माधर्मादिप्राप्तिः सा तेषामेव नतु मयि अजरे अ-
 अभये ‘नैनं कृताकृते तपतः’, ‘न कर्मणा वर्धते नो कर्मा-
 न्-’, ‘स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः’, ‘न लिप्यते लोकदुःखेन वा
 इत्यादिश्रुतिस्मृतिभ्यः अनात्मवस्तुनश्च असत्त्वात् इति
 हेतुः । आत्मनश्च अद्वयत्वविषयाणि द्वयस्यासत्त्वात् यानि सर्व-
 उपनिषद्वाक्यानि विस्तरशः समीक्षितव्यानि समीक्षित-
 नीति ॥ ११६ ॥ इति श्रीमच्छंकरभगवत्पादकृतौ उपदेश-
 हरुपां गद्यप्रबन्धः समाप्तः ॥

उपदेशसाहस्री (पद्यप्रबन्धः) ॥ ३३ ॥

उपोदात्तप्रकरणम् ॥ १ ॥

चैतन्यं सर्वगं सर्वं सर्वभूतगुहाशयम् । यत्सर्वविषय-
 तस्यै सर्वविदे नमः ॥ १ ॥ समापय्य क्रियाः सर्वा दारान्
 धानपूर्विकाः । ब्रह्मविद्यामथेदानीं वक्तुं वेदः प्रचक्रमे ॥
 कर्माणि देहयोगार्थं देहयोगे प्रियाप्रिये । ध्रुवे स्यातां ततो
 द्वेपथैव ततः क्रियाः ॥ ३ ॥ धर्माधर्मो तजो ब्रह्म देहयोगल-

पुनः । एवं नित्यप्रवृत्तोऽयं संसारश्चक्रवद्भ्रमः ॥ ४ ॥ अज्ञानं
 तस्य मूलं स्यादिति तद्वानमिष्यते । ब्रह्मविद्यात आरब्धा ततो
 निःश्रेयसं भवेत् ॥ ५ ॥ विद्यैवाज्ञानहानाय न कर्माप्रतिकूल-
 लतः । नाज्ञानस्याग्रहाणे हि रागद्वेषक्षयो भवेत् ॥ ६ ॥ राग-
 द्वेषक्षयाभावे कर्म दोषोद्भवं ध्रुवम् । तस्मान्निःश्रेयसार्थाय विद्यै-
 वात्र विधीयते ॥ ७ ॥ ननु कर्म तथा नित्यं कर्तव्यं जीवने
 सति । विद्यायाः सहकारित्वं मोक्षं प्रति हि तद्व्रजेत् ॥ ८ ॥
 यथा विद्या तथा कर्म चोदितत्वाविशेषतः । प्रत्यवायस्मृतेऽथैव
 कार्यं कर्म मुमुक्षुभिः ॥ ९ ॥ ननु ध्रुवफला विद्या नान्यत्किंचिद-
 पेक्षते । नाग्निष्टोमो यथैवान्यद्भुवकार्योऽप्यपेक्षते ॥ १० ॥
 तथा ध्रुवफला विद्या कर्म नित्यमपेक्षते । इत्येवं केचिदिच्छ-
 न्ति न कर्म प्रतिकूलतः ॥ ११ ॥ विद्यायाः प्रतिकूलं हि कर्म
 स्यात्साभिमानतः । निर्विकारात्मबुद्धिश्च विद्येतीह प्रकीर्तिता
 ॥ १२ ॥ अहं कर्ता ममेदं स्यादिति कर्म प्रवर्तते । वस्त्वधीना
 भवेद्विद्या कर्त्रधीनो भवेद्विधिः ॥ १३ ॥ कारकाण्युपमृद्वाति
 विद्या बुद्धिमिवोपरे । इति तत्सत्यमादाय कर्म कर्तुं व्यव-
 स्यति ॥ १४ ॥ विरुद्धत्वादतः शक्यं कर्म कर्तुं न विद्यया ।
 सहैव विदुषा तस्मात्कर्म हेयं मुमुक्षुणा ॥ १५ ॥ देहाद्यैरवि-
 शेपेण देहिनो ग्रहणं निजम् । प्राणिनां तदविद्योत्थं तावत्क-
 र्मविधिर्भवेत् ॥ १६ ॥ नेतिनेतीति देहादीनपोह्यात्मावशेषितः ।
 अविशेषात्मबोधार्थं तेनाविद्या निवर्तिता ॥ १७ ॥ निवृत्ता
 सा कथं भूयः प्रमूयेत प्रमाणतः । असत्येवाविशेषेऽपि प्रत्यगा-
 त्मनि केवले ॥ १८ ॥ न चेद्भूयः प्रमूयेत कर्ता भोक्तेति धीः
 कथम् । सदस्तीति च विज्ञाने तस्माद्विद्याऽसहायिका ॥ १९ ॥

अत्यरेचयदित्युक्तो न्यासः श्रुत्यात एव हि । कर्मभ्यो मान-
न्तेभ्य एतावदिति वाजिनाम् ॥ २० ॥ अमृतत्वं श्रुतं क-
न्याज्यं कर्म मुमुक्षुभिः । अग्निष्टोमवदित्युक्तं तत्रेदमभिधी-
॥ २१ ॥ नैककारकसाध्यत्वात्फलान्यत्वाच्च कर्मणः । ति-
तद्विपरीतातो दृष्टान्तो विपमो भवेत् ॥ २२ ॥ कृष्यादिव-
लार्थत्वादन्यकर्मोपवृंहणम् । अग्निष्टोमस्त्वपेक्षेत विद्यान्यति-
पेक्षते ॥ २३ ॥ प्रत्यवायस्तु तस्यैव यस्याहंकार इष्यते ।
कारफलाधिक्ये विद्येते नात्मवेदिनः ॥ २४ ॥ तस्मादज्ञान-
नाय संसारविनिवृत्तये । ब्रह्मविद्याविधानाय प्रारब्धोप-
त्तियम् ॥ २५ ॥ सदेरुपनिर्वास्य किपि चोपनिषद्भवेत् । स-
करणभावाच्च गर्भादेः शातनात्तथा ॥ २६ ॥ इति प्रथम-
द्वातप्रकरणम् ॥ १ ॥

प्रतिषेधप्रकरणम् ॥ २ ॥

प्रतिषेद्धमशक्यत्वान्नेतिनेतीति शेषितम् । इदं नाहमिदं न-
मित्यद्वा प्रतिपद्यते ॥ १ ॥ अहंधीरिदमात्मोत्था वाचात्-
णगोचरा । निषिद्धात्मोद्भवत्वात्सा न पुनर्मानतां व्रजेत् ॥
पूर्वबुद्धिमवाधित्वा नोत्तरा जायते मतिः । दृशिरेकः स्वयं मि-
फलत्वात्स न बाध्यते ॥ ३ ॥ इदं वनमतिक्रम्य शोकमो-
दिदूषितम् । वनाद्गान्धारको यद्वत्स्वात्मानं प्रतिपद्यते ॥ ४ ॥
इति द्वितीयं आत्मज्ञानोत्पत्तिविधिप्रकरणम् ॥ २ ॥

ईश्वरात्मप्रकरणम् ॥ ३ ॥

ईश्वरश्चेदनात्मा स्यान्नासावसीति धारयेत् । आत्मा क-
श्चरोऽसीति विद्या सान्यनिवर्तिका ॥ १ ॥ आत्मनोऽज्ज-
०. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चेद्धर्मा अस्थूलत्वादयो मताः । अज्ञेयत्वेऽस्य किं तैः स्यादा-
त्मत्वे ह्यन्यधीहृतिः ॥ २ ॥ मिथ्याध्यासनिषेधार्थं ततोऽस्थू-
लादि गृह्यताम् । परत्र चेन्निषेधार्थं शून्यतावर्णनं हि तत्
॥ ३ ॥ बुभुत्सोर्यदि चान्यत्र प्रत्यगात्मन इष्यते । अप्राणो
ह्यमनाः शुभ्र इति चानर्थकं वचः ॥ ४ ॥ इति तृतीयं ईश्व-
रात्मप्रकरणम् ॥ ३ ॥

तत्त्वज्ञानस्वभावप्रकरणम् ॥ ४ ॥

अहंप्रत्ययबीजं यदहंप्रत्ययवत्स्थितम् । नाहंप्रत्ययवद्व्युष्टं
कथं कर्म प्ररोहति ॥ १ ॥ दृष्टवच्चेत्प्ररोहः स्यान्नान्यकर्मा स
इष्यते । तन्निरोधे कथं तत्स्यात्पृच्छामो वस्तदुच्यताम् ॥ २ ॥
देहाधारम्भसामर्थ्याज्ज्ञानं सद्विषयं त्वयि । अभिभूय फलं
कुर्यात्कर्मान्ते ज्ञानमुद्भवेत् ॥ ३ ॥ आरब्धस्य फले ह्येते भोगो
ज्ञानं च कर्मणः । अविरोधस्तयोर्युक्तो वैधर्म्यं चेतरेषु तु ॥ ४ ॥
देहात्मज्ञानवज्ज्ञानं देहात्मज्ञानबाधकम् । आत्मन्येव भवेद्यस्य
स नेच्छन्नपि मुच्यते । ततः सर्वमिदं सिद्धं प्रयोगोऽस्माभिरी-
रितः ॥ ५ ॥ इति चतुर्थं तत्त्वज्ञानस्वभावप्रकरणम् ॥ ४ ॥

बुद्ध्यपराधप्रकरणम् ॥ ५ ॥

मूत्राशङ्को यथोदङ्को नाग्रहीदमृतं यथा । कर्मनाशभयाज्ज-
न्तोरात्मज्ञानाग्रहस्तथा ॥ १ ॥ बुद्धिस्थश्चलतीवात्मा ध्यायतीव
च दृश्यते । नौगतस्य यथा वृक्षास्तद्वत्संसारविभ्रमः ॥ २ ॥
नौस्थस्य प्रातिलोभ्येन नगानां गमनं यथा । आत्मनः संसृति-
स्तद्वद्व्यायतीवेति हि श्रुतिः ॥ ३ ॥ चैतन्यप्रतिबिम्बेन व्याप्तो
बोधो हि जायते । बुद्धेः शब्दादिभिर्भासस्तेन मोक्षयते जगत् ।

॥ ४ ॥ चैतन्यभास्यताहमस्तादर्थ्यं च तदस्य यत् । इदं
प्रहाणेन परः सोऽनुभवो भवेत् ॥ ५ ॥ इति पंचमं बुद्ध्या
धप्रकरणम् ॥ ५ ॥

विशेषापोहप्रकरणम् ॥ ६ ॥

छित्त्वा त्यक्तेन हस्तेन स्वयं नात्मा विशिष्यते । त
शिष्टेन सर्वेण येन येन विशेष्यते ॥ १ ॥ तस्मान्न्यक्तेन हं
तुल्यं सर्वं विशेषणम् । अनात्मत्वेन तस्माज्ज्ञो मुक्तः सर्वैर्
पणैः ॥ २ ॥ विशेषणमिदं सर्वं साध्वलंकरणं यथा । अ
द्याध्यासतः सर्वं ज्ञात आत्मन्यसद्भवेत् ॥ ३ ॥ ज्ञातैवा
सदा ग्राह्यो ज्ञेयमुत्सृज्य केवलः । अहमित्यपि यद्वाह्यं व्यं
ज्जसमं हि तत् ॥ ४ ॥ यावान्स्यादिदमंशो यः स स्वतोऽ
विशेषणम् । विशेषप्रक्षयो यत्र सिद्धो ज्ञश्चित्रगुर्यथा ॥ ५ ॥
इदमंशोऽहमित्यत्र त्याज्यो नात्मेति पण्डितैः । अहंशो
शिष्टांशो भूतपूर्वगतेर्भवेत् ॥ ६ ॥ इति षष्ठं विशेषापोह
करणम् ॥ ६ ॥

बुद्ध्यारूढप्रकरणम् ॥ ७ ॥

बुद्ध्यारूढं सदा सर्वं दृश्यते यत्र तत्र वा । मया तस्मा
ब्रह्म सर्वज्ञश्चास्मि सर्वगः ॥ १ ॥ यथात्मबुद्धिचाराणां स
तद्वत्परेष्वपि । नैवापोढं न वा दातुं शक्यस्तस्मात्परो
॥ २ ॥ विकारित्वमशुद्धत्वं भौतिकत्वं न चात्मनः । अ
बुद्धिसाक्षित्वाद्बुद्धिवच्चाल्पवेदना ॥ ३ ॥ मणौ प्रकाश्यते
द्रक्ताद्याकारतातपे । मयि संदृश्यते सर्वमातपेनेव तन्मया
बुद्धौ दृश्यं भवेद्बुद्धौ सत्यां नास्ति विपर्यये । दृष्टा यस्मात्

द्रष्टा तस्माद्वैतं न विद्यते ॥ ५ ॥ अविवेकात्पराभावं यथा
 बुद्धिरवैतथा । विवेकात्तु परादन्यः स्वयं चापि न विद्यते
 ॥ ६ ॥ इति सप्तमं बुद्ध्यारूढप्रकरणम् ॥ ७ ॥

मतिविलापनप्रकरणम् ॥ ८ ॥

चित्तिस्वरूपे स्वत एव मे मते रसादियोगस्तव मोहकारितः ।
 अतो न किञ्चित्तव चेष्टितेन मे फलं भवेत्सर्वविशेषहानतः ॥ १ ॥
 विमुच्य मायामयकार्यतामिह प्रशान्तिमायाह्यसदीहितात्सदा ।
 अहं परंब्रह्म सदा विमुक्तवत्तथाजमेकं द्वयवर्जितं यतः ॥ २ ॥
 सदा च भूतेषु समोऽसि केवलो यथा च खं सर्वगमक्षरं शिवं ।
 निरंतरं निष्कलमक्रियं परंततो न मेऽस्तीह फलं तवेहितैः ॥ ३ ॥
 अहं ममैको न तदन्यदिष्यते तथा न कस्याप्यहमस्म्यसङ्गतः ।
 असङ्गरूपोऽहमतो न मे त्वया कृतेन कार्यं तव चाद्वयत्वतः
 ॥ ४ ॥ फले च हेतौ च जनो विपक्तवानिति प्रचिन्त्याहमतो
 विमोक्षणे । जनस्य संवादमिमं प्रकृतवान्स्वरूपतत्त्वार्थविबोध-
 कारणम् ॥ ५ ॥ संवादमेतं यदि चिन्तयन्नरो विमुच्यते ज्ञान-
 महाभयागमात् । विमुक्तकामश्च तथा जनः सदा चरत्य-
 शोकः सम आत्मवित्सुखी ॥ ६ ॥ इति अष्टमं मतिविला-
 पनप्रकरणम् ॥ ८ ॥

सूक्ष्मताव्यापिताप्रकरणम् ॥ ९ ॥

सूक्ष्मताव्यापिते ज्ञेये गन्धादेरुत्तरोत्तरम् । प्रत्यगात्मावसा-
 नेषु पूर्वपूर्वग्रहाणतः ॥ १ ॥ शरीरा पृथिवी तावद्यावद्वाह्या
 प्रमाणतः । अम्बवादीनि च तत्त्वानि तावज्ज्ञेयानि कृत्स्नशः
 ॥ २ ॥ वाय्वादीनां यथोत्पत्तेः पूर्वं खं सर्वगं तथा । अहमेकः

सदा सर्वश्चिन्मात्रः सर्वगोऽद्वयः ॥ ३ ॥ ब्रह्माद्याः स्थावरा
 ये प्राणिनो मम पूः स्मृताः । कामक्रोधादयो दोषा जायन्ते
 कुतोऽन्यतः ॥ ४ ॥ भूतदोषैः सदाऽस्पृष्टं सर्वभूतस्थमीयत
 नीलं व्योम यथा बालो दुष्टं मां वीक्षते जनः ॥ ५ ॥ सर्वं
 न्यावभास्यत्वात्सर्वप्राणिधियां सदा । पूर्वमप्राणिनः
 सर्वज्ञस्य विपाप्मनः ॥ ६ ॥ जनिमज्ज्ञानविज्ञेयं स्वमज्ञानं
 दिप्यते । नित्यं निर्विषयं ज्ञानं तस्माद्वैतं न विद्यते ॐ ॥ ७ ॥
 ज्ञातुर्ज्ञातिर्हि नित्योक्ता सुषुप्ते त्वन्यशून्यतः ॥ जाग्रज्ज्ञाति
 विद्यातस्तद्वाह्यं चासदिप्यताम् ॥ ८ ॥ रूपवच्चाद्यसत्त्वं
 दृष्ट्यादेः कर्मता यथा । एवं विज्ञानकर्मत्वं भूम्नो नास्ति
 गम्यते ॥ ९ ॥ इति नवमं सूक्ष्मताव्यापिताप्रकरणम् ॥ १० ॥

दृशिस्वरूपपरमार्थदर्शनप्रकरणम् ॥ १० ॥

दृशिस्वरूपं गगनोपमं परं सकृद्विभातं त्वजमेकमक्षरं
 अलेपकं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं सततं विमुक्त ॐ ॥ १ ॥
 दृशिस्तु शुद्धोऽहमविक्रियात्मको न मेऽस्ति कश्चिद्विषयः स
 ततः । पुरस्तिरश्चोर्ध्वमधश्च सर्वतः संपूर्णभूमा त्वज आत्म
 स्थितः ॥ २ ॥ अजोऽमरश्चैव तथाजरोऽमृतः स्वयंप्रभः सर्वगतः
 अहमद्वयम् । न कारणं कार्यमतीव निर्मलः सदैकतृप्तश्च ततो विमुक्त
 ॐ ॥ ३ ॥ सुषुप्तजाग्रत्स्वपतश्च दर्शनं न मेऽस्ति किञ्चित्स्वविषय
 मोहनम् । स्वतश्च तेषां परतोऽप्यसत्त्वतस्तुरीय एवासि सत्त्व
 गद्वयः ॥ ४ ॥ शरीरबुद्धीन्द्रियदुःखसंततेर्न मे न चाहं सत्त्व
 निर्विकारतः । असत्त्वहेतोश्च तथैव संततेरसत्त्वमस्याः स्वविषय
 हि दृश्यवत् ॥ ५ ॥ इदं तु सत्यं मम नास्ति विक्रियात्मकं
 रहेतुर्न हि मेऽद्वयत्वतः । न पुण्यपापे न च मोक्षबन्धनं

चास्ति वर्णाश्रमताऽशरीरतः ॥ ६ ॥ अनादितो निर्गुणतो न
 कर्म मे फलं च तस्मात्परमोऽहमद्वयः । यथा नभः सर्वगतं न
 लिप्यते तथा ह्यहं देहगतोऽपि सूक्ष्मतः ॥ ७ ॥ सदा च भूतेषु
 समोऽहमीश्वरः क्षराक्षराभ्यां परमो ह्यथोत्तमः । परात्मतत्त्वश्च
 तथाद्वयोऽपि सन्विपर्ययेणाभिमतस्तत्त्वविद्यया ॥ ८ ॥ अविद्यया
 भावनया च कर्मभिर्विविक्त आत्माऽव्यवधिः सुनिर्मलः । दृगा-
 दिशक्तिप्रचितोऽहमद्वयः स्थितः स्वरूपे गगनं यथा चलम्
 ॥ ९ ॥ अहं परं ब्रह्म विनिश्चयात्मदृङ् न जायते भूय इति
 श्रुतेर्वचः । न चैव बीजे त्वसति प्रजायते फलं न जन्मास्ति ततो
 ह्यमोहता ॥ १० ॥ ममेदमित्थं च तथेदमीदृशं तथाहमेवं न परो
 न वान्यथा । विमूढतैवं न जनस्य कल्पना सदा समे ब्रह्मणि
 चाद्वये शिवे ॥ ११ ॥ यदद्वयं ज्ञानमतीव निर्मलं महात्मनां
 तत्र न शोकमोहता । तयोरभावे न हि कर्म जन्म वा भवेदयं
 वेदविदां विनिश्चयः ॥ १२ ॥ सुषुप्तवज्राग्रति यो न पश्यति
 द्वयं तु पश्यन्नपि चाद्वयत्वतः । तथा च कुर्वन्नपि निष्क्रियश्च
 यः स आत्मविन्नान्य इतीह निश्चयः ॥ १३ ॥ इतीदमुक्तं पर-
 मार्थदर्शनं मया हि वेदान्तविनिश्चितं परम् । विमुच्यतेऽस्मि-
 न्यदि निश्चितो भवेन्न लिप्यते व्योम इवेह कर्मभिः ॥ १४ ॥
 इति दशमं दृशिस्वरूपपरमार्थदर्शनप्रकरणम् ॥ १० ॥

ईक्षितृत्वप्रकरणम् ॥ ११ ॥

ईक्षितृत्वं स्वतःसिद्धं जन्तूनां च ततोऽन्यता । अज्ञानादि-
 त्यतोऽन्यत्वं सदसीति निवर्त्यते ॥ १ ॥ एतावच्चामृतत्वं न
 किञ्चिदन्यत्सहायकम् । ज्ञानस्येति ब्रुवच्छास्त्रं सलिलं कर्म वा-
 धते ॥ २ ॥ सर्वेषां मनसो वृत्तमविशेषेण पश्यतः । तस्य मे

निर्विकारस्य विशेषः स्यात्कथंचन ॥ ३ ॥ मनोवृत्तं मतं
 स्वप्नवज्जाग्रतीक्षितुः । संप्रसादे द्रयासत्ताचिन्मात्रः सर्वगोऽ-
 यः ॥ ४ ॥ स्वप्नः सत्यो यथा बोधादेहात्मत्वं तथैव च
 प्रत्यक्षादेः प्रमाणत्वं जाग्रत्स्यादात्मवेदनात् ॥ ५ ॥ ज्यो-
 त्सर्वभूतस्थो भूतदोषैर्विवर्जितः । साक्षी चेताऽगुणः शुद्धो
 वासीति केवलः ॥ ६ ॥ नामरूपक्रियाभ्योऽन्यो नित्यः
 स्वरूपवान् । अहमात्मा परं ब्रह्म चिन्मात्रोऽहं सदाद्वयः ॥
 अहं ब्रह्मासि कर्ता च भोक्ता चासीति ये विदुः । ते
 ज्ञानकर्मभ्यां नास्तिकाः स्युर्न संशयः ॥ ८ ॥ धर्माधर्म-
 योग इष्टो दृष्टो यथात्मनः । शास्त्राद्ब्रह्मत्वमप्यस्य मोक्षो ज्ञ-
 तथेष्यताम् ॥ ९ ॥ या महारजनाद्यास्ता वासनाः स्वप्न-
 भिः । अनुभूयन्त एवेह ततोऽन्यः केवलो दृशिः ॥ १० ॥
 कोशादिव विनिष्कृष्टः कार्यकारणवर्जितः । यथासिर्दृश्यते
 तद्वद्वोद्वा स्वयंप्रभः ॥ ११ ॥ आपेपात्प्रतिबुद्धस्य ज्ञस्य स्वा-
 विकं पदम् । उक्तं नेत्यादिवाक्येन कल्पितस्यापनेदृणा ॥ १२ ॥
 महाराजादयो लोका मयि यद्वत्प्रकल्पिताः । स्वप्ने तद्व-
 विद्याद्रूपं वासनया सह ॥ १३ ॥ देहलिङ्गात्मना कार्या वि-
 नारूपिणा क्रियाः । नेतिनेत्यात्मरूपत्वान्न मे कार्या वि-
 कचित् ॥ १४ ॥ न ततोऽमृतताशास्ति कर्मणोऽज्ञानहेतु-
 मोक्षस्य ज्ञानहेतुत्वान्न तदन्यदपेक्षते ॥ १५ ॥ अमृतं क-
 नार्तं नेतीत्यात्मा प्रियो मम । विपरीतमतोऽन्यद्यत्पजेत-
 क्रियं ततः ॥ १६ ॥ इति एकादशमीक्षितृत्वप्रकरणम् ॥ ११ ॥

प्रकाशप्रकरणम् ॥ १२ ॥

प्रकाशस्यं यथा देहं सालोक्यमभिमन्यते । द्रष्टाभासं च

चित्तं द्रष्टाहमिति मन्यते ॥ १ ॥ यदेव दृश्यते लोके तेनाभि-
 न्नत्वमात्मनः । प्रपद्यते ततो मूढस्तेनात्मानं न विन्दति ॥२॥
 दशमस्य नवात्मत्वप्रतिपत्तिवदात्मनः । दृश्येषु तद्वदेवायं मूढो
 लोको न चान्यथा ॥ ३ ॥ त्वं कुरु त्वं तदेवेति प्रत्ययावेक-
 कालिकौ । एकनीडौ कथं स्यातां विरुद्धौ न्यायतो वद ॥ ४ ॥
 देहाभिमानिनो दुःखं नादेहस्य स्वभावतः । स्वापवत्तत्प्रहाणाय
 तच्चमित्युच्यते दृशेः ॥ ५ ॥ दृशेःश्लाया यदारूढा मुखच्छा-
 येव दर्शने । पश्यंस्तं प्रत्ययं योगी दृष्ट आत्मेति मन्यते ॥ ६ ॥
 तं च मूढं च यद्यन्यं प्रत्ययं वेत्ति नो दृशेः । स एव योगिनां
 प्रेष्ठो नेतरः स्यान्न संशयः ॥ ७ ॥ विज्ञातेर्यस्तु विज्ञाता स
 त्वमित्युच्यते यतः । स स्यादनुभवस्तस्य ततोऽन्योऽनुभवो मृषा
 ॥ ८ ॥ दृशिरूपे सदानित्ये दर्शनादर्शने मयि । कथं स्यातां
 ततो नान्य इष्यतेऽनुभवस्ततः ॥ ९ ॥ यत्स्थस्तापो रवेर्देहे दृशेः
 स विषयो यथा । सत्त्वस्थस्तद्वदेवेह दृशेः स विषयस्तथा ॥१०॥
 प्रतिपिद्धे दृगंशोऽङ्गः स्वमिवैकरसोऽद्वयः । नित्यमुक्तः सदाशुद्धः
 सोऽहं ब्रह्मास्मि केवलः ॥ ११ ॥ विज्ञातुर्नैव विज्ञाता परोऽन्यः
 संभवत्यतः । विज्ञाताहं परो मुक्तः सर्वभूतेषु सर्वदा ॥१२॥ यो
 वेदालुप्तदृष्टित्वमात्मनोऽकर्तृतां तथा । ब्रह्मवित्त्वं तथा मुक्त्वा स
 आत्मज्ञो न चेतः ॥१३॥ ज्ञातैवाहमविज्ञेयः शुद्धो मुक्तः सदे-
 त्यपि । विवेकी प्रत्ययो बुद्धेर्दृश्यत्वान्नाशवान्यतः ॥१४॥ अलुप्ता
 त्मात्मनो दृष्टिर्नोत्पाद्या कारकैर्यतः । दृश्यया चान्यया दृष्ट्या
 जन्यतास्याः प्रकल्पिता ॥१५॥ देहात्मबुद्ध्यपेक्षत्वादात्मनः कर्तृ-
 ता मृषा । नैव किंचित्करोमीति सत्या बुद्धिः प्रमाणजा ॥१६॥
 कर्तृत्वं कारकापेक्षमकर्तृत्वं स्वभावतः । कर्ता भोक्तेति विज्ञानं

मृपैवेति सुनिश्चितम् ॥ १७ ॥ एवं शास्त्रानुमानाभ्यां क
पेज्वगते सति । नियोज्योऽहमिति ह्येषा सत्या बुद्धिः क
भवेत् ॥ १८ ॥ यथा सर्वान्तरं व्योम व्योम्नोऽप्यमन
हहम् । निर्विकारोऽचलः शुद्धोऽजरो मुक्तः सदाद्वयः ॥ १९
इति द्वादशं प्रकाशप्रकरणम् ॥ १२ ॥

अचक्षुष्मप्रकरणम् ॥ १३ ॥

अचक्षुष्मान्न दृष्टिर्मे तथाऽश्रोत्रस्य का श्रुतिः । अवाक्
तु वक्तिः स्यादमनस्त्वान्मतिः कुतः ॥ १ ॥ अग्राणस
कर्मास्ति बुद्ध्यभावे न वेदिता । विद्याविद्ये ततो न स्तश्चि
त्रज्योतिषो मम ॥ २ ॥ नित्यमुक्तस्य शुद्धस्य कूटस्थस्यापि
लिनः । अमृतस्याक्षरस्यैवमशरीरस्य सर्वदा ॥ ३ ॥ जिव
वा पिपासा वा शोकमोहौ जरामृती । न विद्यन्तेऽशरीर
द्योमवद्यापिनो मम ॥ ४ ॥ अस्पर्शत्वान्न मे स्पृष्टिर्नाविज्ञ
द्रसज्ञता । नित्यविज्ञानरूपस्य ज्ञानाज्ञाने न मे सदा ॥ ५
या तु स्यान्मानसी वृत्तिश्चाक्षुष्का रूपरञ्जना । नित्यमेवात्मा
दृष्ट्वा नित्यया दृश्यते हि सा ॥ ६ ॥ तथान्येन्द्रिययुक्ता
वृत्तयो विषयाञ्जनाः । स्मृती रागादिरूपा च केवलान्त
स्यपि ॥ ७ ॥ मानसस्तद्वदन्यस्य दृश्यन्ते स्वप्नवृत्तयः । द्र
ष्टिस्ततो नित्या शुद्धानन्ता च केवला ॥ ८ ॥ अनित्या
ऽविशुद्धेति गृह्यतेऽत्राविवेकतः । सुखी दुःखी तथा चाहं इ
योपाधिभूतया ॥ ९ ॥ मूढया मूढ इत्येवं शुद्धया शुद्ध इत्य
मन्यते सर्वलोकोयं येन संसारमृच्छति ॥ १० ॥ अचक्षु
दिशास्त्रोक्तं सत्वाद्याभ्यन्तरं त्वजम् । नित्यमुक्तमिहात्मानं इ
क्षुब्धेत्सदा सरेत् ॥ ११ ॥ अचक्षुष्कादिशास्त्राच्च नेन्द्रिय

सदा मम । अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इति चार्थवर्णेर्वचः ॥ १२ ॥
 शब्दादीनामभावश्च श्रूयते मम काठके । अप्राणो ह्यमना यस्मा-
 दविकारी सदा ह्यहम् ॥ १३ ॥ विक्षेपो नास्ति तस्मान्मे न
 समाधिस्ततो मम । विक्षेपो वा समाधिर्वा मनसः स्याद्विका-
 रिणः ॥ १४ ॥ अमनस्कस्य शुद्धस्य कथं तत्स्याद्वयं मम ।
 अमनस्त्वाविकारित्वे विदेहव्यापिनो मम ॥ १५ ॥ इत्येतद्या-
 वदज्ञानं तावत्कार्यं ममाभवत् । नित्यमुक्तस्य शुद्धस्य बुद्धस्य
 च सदा मम ॥ १६ ॥ समाधिर्वाऽसमाधिर्वा कार्यं चान्यत्कुतो
 भवेत् । मां हि ध्यात्वा च बुद्ध्या च मन्यन्ते कृतकृत्यताम्
 ॥ १७ ॥ अहं ब्रह्मास्मि सर्वोऽस्मि शुद्धो बुद्धोऽस्म्यतः सदा ।
 अजः सर्वत एवाहमजरथाक्षयोऽमृतः ॥ १८ ॥ मदन्यः सर्व-
 भूतेषु बोद्धा कश्चिन्न विद्यते । कर्माध्यक्षश्च साक्षी च चेता
 नित्योऽगुणोऽद्वयः ॥ १९ ॥ न सचाहं न चासच्च नोभयं
 केवलः शिवः । न मे संध्या न रात्रिर्वा नाहर्वा सर्वदा दृशेः
 ॥ २० ॥ सर्वमूर्तिवियुक्तं यद्यथा खं सूक्ष्ममद्वयम् । तेनाप्यस्मि
 विनाभूतं ब्रह्मैवाहं तथाद्वयम् ॥ २१ ॥ ममात्मा स्वत आत्मेति
 भेदो व्योम्नो यथा भवेत् । एकस्य सुषिभेदेन तथा मम विक-
 ल्पितः ॥ २२ ॥ भेदोऽभेदस्तथा चैको नाना चेति विक-
 ल्पितः । ज्ञेयं ज्ञाता गतिर्गन्ता मय्येकस्मिन्कुतो भवेत् ॥ २३ ॥
 न मे हेयं न चादेयमविकारी यतो ह्यहम् । सदा मुक्तस्तथा
 शुद्धः सदा बुद्धोऽगुणोऽद्वयः ॥ २४ ॥ इत्येवं सर्वदात्मानं
 विद्यात्सर्वं समाहितः । विदित्वा मां स्वदेहस्थमृषिर्मुक्तो ध्रुवो
 भवेत् ॥ २५ ॥ कृतकृत्यश्च सिद्धश्च योगी ब्राह्मण एव च ।
 य एवं वेद तत्त्वार्थमन्यथा ह्यात्महा भवेत् ॥ २६ ॥ वेदार्थो

निश्चितो ह्येष समासेन मयोदितः । संन्यासिभ्यः प्रक-
शान्तेभ्यः शिष्टबुद्धिना ॥ २७ ॥ इति त्रयोदशप्र-
करणम् ॥ १३ ॥

स्वप्नस्मृतिप्रकरणम् ॥ १४ ॥

स्वप्नस्मृत्योर्धटादेर्हि रूपाभासः प्रदृश्यते । पुरा नूनं
कारा धीर्दृष्टेत्यनुमीयते ॥ १ ॥ भिक्षामटन्यथा स्वप्ने
देहो न स स्वयम् । जाग्रद्दृश्यात्तथा देहाद्रष्टृत्वादन्य एव
॥ २ ॥ मूपासित्तं यथा ताम्रं तन्निभं जायते तथा । रू-
पान्यामुवचित्तं तन्निभं दृश्यते ध्रुवम् ॥ ३ ॥ व्यञ्जको वा
लोको व्यञ्जस्याकारतामियात् । सर्वार्थव्यञ्जकत्वाद्दीर्यता
प्रदृश्यते ॥ ४ ॥ धीरेवार्थस्वरूपा हि पुंसा दृष्टा पुराणि
न चेत्स्वप्ने कथं पश्येत्सरतो वा कृतिः कुतः ॥ ५ ॥
कत्वं तदेवास्या रूपाद्याकारदृश्यता । द्रष्टृत्वं च दृशेस्तद्व-
स्याद्विय उद्भवे ॥ ६ ॥ चिन्मात्रज्योतिषा सर्वाः सर्व-
बुद्ध्यः । मया यस्मात्प्रकाशयन्ते सर्वस्यात्मा ततो ह्यहम्
करणं कर्म कर्ता च क्रिया स्वप्ने फलं च धीः । जाग्रत्वेन
दृष्टा द्रष्टा तस्मादतोऽन्यथा ॥ ८ ॥ बुद्ध्यादीनामनात्मत्वं हेयो-
यरूपतः । हानोपादानकर्तात्मा न त्याज्यो न च गृह्यते ।
सबाह्याभ्यन्तरे शुद्धे प्रज्ञानैकरसे घने । बाह्यमाभ्यन्तरं च
त्कथं हेयं प्रकल्प्यते ॥ १० ॥ य आत्मा नेतिनेतीति प-
हेन शेषितः । स चेद्ब्रह्मविदात्मेष्टो यतेतातः परं कथम् ॥
अशनायाद्यतिक्रान्तं ब्रह्मैवास्मि निरन्तरम् । कार्यवान्सां
चाहं विमृशेदेवमञ्जसा ॥ १२ ॥ पारगस्तु यथा नद्यान्त-
पारं यियासति । आत्मज्ञेयत्वात् कार्यं कर्तुमन्यदिह

॥ १३ ॥ आत्मज्ञस्यापि यस्य स्याद्धानोपादानता यदि । न
 मोक्षार्हः स विज्ञेयो वान्तोऽसौ ब्रह्मणा ध्रुवम् ॥ १४ ॥ सा-
 दित्यं हि जगत्प्राणस्तस्यान्नाहर्निशैव वा । प्राणज्ञस्यापि न
 स्यातां कुतो ब्रह्मविदोऽद्वये ॥ १५ ॥ न स्मरत्यात्मनो ह्यात्मा
 विस्मरेद्वाप्यलुप्तचित् । मनोऽपि स्मरतीत्येतज्ज्ञानमज्ञानहेतुजम्
 ॥ १६ ॥ ज्ञातुर्ज्ञेयः परो ह्यात्मा सोऽविद्याकल्पितः स्मृतः ।
 अपोढे विद्यया तस्मिन्नञ्ज्वां सर्प इवाद्वयः ॥ १७ ॥ कर्तृकर्म-
 फलाभावात्सवाह्याभ्यन्तरं ह्यजम् । ममाहं वेत्ति यो भावस्त-
 सिन्कस्य कुतो भवेत् ॥ १८ ॥ आत्मा ह्यात्मीय इत्येव भावोऽ-
 विद्याप्रकल्पितः । आत्मैकत्वे ह्यसौ नास्ति बीजाभावे कुतः
 फलम् ॥ १९ ॥ द्रष्टुं श्रोतुं तथा मन्तुं विज्ञात्रेव तदक्षरम् ।
 द्रष्ट्राद्यन्यन्न तद्यस्मात्तस्माद्द्रष्टाहमक्षरम् ॥ २० ॥ स्थावरं जंगमं
 चैव द्रष्टृत्वादिक्रियायुतम् । सर्वमक्षरमेवातः सर्वस्यात्माक्षरं
 त्वहम् ॥ २१ ॥ अकार्यशेषमात्मानमक्रियात्म क्रियाफलम् ।
 निर्ममं निरहंकारं यः पश्यति स पश्यति ॥ २२ ॥ ममाहंका-
 रयत्नेच्छाः शून्या एव स्वभावतः । आत्मनीति यदि ज्ञात-
 माध्वं स्वस्थाः किमीहितैः ॥ २३ ॥ योऽहंकर्तारमात्मानं तथा
 वेत्तारमेव च । वेत्ति नात्मज्ञ एवासौ योऽन्यथाज्ञः स आत्म-
 वित् ॥ २४ ॥ यथान्यत्वेऽपि तादात्म्यं देहादिष्वात्मनो
 मतम् । तथाकर्तुरविज्ञानात्फलकर्मात्मतात्मनः ॥ २५ ॥ दृष्टिः
 श्रुतिर्मतिर्ज्ञातिः स्वप्ने दृष्टा जनैः सदा । तासामात्मस्वरूपत्वा-
 दतः प्रत्यक्षतात्मनः ॥ २६ ॥ परलोकभयं यस्य नास्ति मृत्यु-
 भयं तथा । तस्यात्मज्ञस्य शोच्याः स्युः स ब्रह्मेन्द्रा अपीश्वराः
 ॥ २७ ॥ ईश्वरत्वेन किं तस्य ब्रह्मेन्द्रत्वेन वा पुनः । तृष्णा

चेत्सर्वतश्छिन्ना सर्वदैव्योद्भवाऽशुभा ॥ २८ ॥ अहमित्या-
 धीर्या च ममेत्यात्मीयधीरपि । अर्थशून्ये यदा यस्य स
 त्मज्ञो भवेत्तदा ॥ २९ ॥ बुद्ध्यादौ सत्युपाधौ च तथासत्ता-
 शेषता । यस्य चेदात्मनो ज्ञाता तस्य कार्यं कथं भवेत् ॥ ३० ॥
 प्रसन्ने विमले व्योम्नि प्रज्ञानैकरसेऽद्वये । उत्पन्नात्मविद्यो-
 किमन्यत्कार्यमिष्यते ॥ ३१ ॥ आत्मानं सर्वभूतस्य
 चात्मनोऽपि यः । पश्यन्निच्छत्यसौ नूनं शीतीकर्तुं वि-
 सुम् ॥ ३२ ॥ प्रज्ञाप्राणानुकार्यात्मा छायेवाक्षादिगोच-
 रध्यायतीवेति चोक्तो हि शुद्धो मुक्तः स्वतो हि सः ॥ ३३ ॥
 अग्राणस्यामनस्कस्य तथाऽसंसर्गिणो दृशेः । व्योमवद्वा-
 हस्य कथं कार्यं भवेन्मम ॥ ३४ ॥ असमाधिं न पश्य-
 निर्विकारस्य सर्वदा । ब्रह्मणो मे विशुद्धस्य शोध्यं नान्य-
 प्यनः ॥ ३५ ॥ गन्तव्यं च तथा नैव सर्वगस्याचलस्य
 नोर्ध्वं नाधस्तिरो वापि निष्कलस्यागुणत्वतः ॥ ३६ ॥ चि-
 त्रज्योतिषो नित्यं तमस्तस्मिन्न विद्यते । कथं कार्यं मयं
 नित्यमुक्तस्य शिष्यते ॥ ३७ ॥ अमनस्कस्य का चिन्ता वि-
 वानिन्द्रियस्य का । अग्राणो ह्यमनाः शुभ्र इति सत्यं श्रुते-
 ॥ ३८ ॥ अकालत्वाददेशत्वादिकत्वादनिमित्ततः । आत्म-
 नैव कालादेरपेक्षा ध्यायतः सदा ॥ ३९ ॥ यस्मिन्देवाद्य-
 पवित्रं कृत्स्नमेकताम् । ब्रजेत्तन्मानसं तीर्थं यस्मिन्त्वात्मा
 भवेत् ॥ ४० ॥ न चास्ति शब्दादिरनन्यवेदनः परस्पर-
 न चैव दृश्यते । परेण दृश्यास्तु यथा रसादयस्तथैव दृश्य-
 एव दैहिकाः ॥ ४१ ॥ अहंममेत्येव पण्यत्नविक्रियासुखाद-
 इदिह प्रदृश्यतः । दृश्यत्वयोगाच्च परस्परेण ते न दृश्य-

यान्ति ततः परो भवान् ॥ ४२ ॥ अहंक्रियाद्या हि समस्तवि-
क्रिया सकर्तृका कर्मफलेन संहता । चित्तिस्वरूपेण समन्ततो-
र्ज्वत्प्रकाश्यमानाऽसिततात्मनो ह्यतः ॥ ४३ ॥ दृशिस्वरूपेण
हि सर्वदेहिनां विद्यद्यथा व्याप्य मनांस्वस्थितः । अतो न
तस्मादपरोऽस्ति वेदिता परोऽपि तस्मादत एक ईश्वरः ॥ ४४ ॥
शरीरबुद्ध्योर्यदि चान्यदृश्यता निरात्मवादाः सुनिराकृता मया ।
परश्च शुद्धो ह्यविशुद्धिकर्मतः सुनिर्मलः सर्वगतोऽसितोऽद्वयः
॥ ४५ ॥ घटादिरूपं यदि तेन गृह्यते मनः प्रवृत्तं बहुधा स्ववृ-
त्तिभिः । अशुद्ध्याचिद्रूपविकारदोषता मतेर्यथा वारयितुं न-
पार्यते ॥ ४६ ॥ यथा विशुद्धं गगनं निरन्तरं न सज्जते नापि
च लिप्यते तथा । समस्तभूतेषु सदैव तेष्वयं समः सदात्मा
हजरोऽमरोऽभयः ॥ ४७ ॥ अमूर्तमूर्तानि च कर्मवासना दृशि-
स्वरूपस्य बहिः प्रकल्पिताः । अविद्यया ह्यात्मनि मूढदृष्टिभिर-
पोह्य नेतीत्यवशेषितो दृशि ॥ ४८ ॥ प्रबोधरूपं मनसोऽर्थयो-
गजं स्मृतौ च सुप्तस्य च दृश्यतोऽर्थवत् । तथैव देहप्रतिमानतः
पृथग्दृशेः शरीरं च मनश्च दृश्यतः ॥ ४९ ॥ स्वभावशुद्धे
गगने घनादिके मलेऽपयाते सति चाविशेषता । यथाच तद्व-
च्छ्रुतिवारितद्वये सदाऽविशेषो गगनोपमे दृशौ ॥ ५० ॥ इति
चतुर्दशं स्वप्नस्मृतिप्रकरणम् ॥ १४ ॥

नान्यदन्यत्प्रकरणम् ॥ १५ ॥

नान्यदन्यद्भवेद्यस्मान्नान्यत्किंचिद्विचिन्तयेत् । अन्यस्यान्य-
त्वभावे हि नाशस्तस्य ध्रुवो भवेत् ॥ १ ॥ स्मरतो दृश्यते दृष्टं
पटे चित्रमिवार्पितम् । यत्र येन च तौ ज्ञेयौ सत्त्वक्षेत्रज्ञसंज्ञकौ
॥ २ ॥ फलान्तं चानुभूतं यद्युतं कर्त्रादिकारकैः । सूर्यमाणं

हिं कर्मस्थं पूर्वं कर्मैव तच्चितः ॥ ३ ॥ द्रष्टुश्चान्यद्भवेदृश्यं स
 त्वाद्वत्सदा । दृश्याद्रष्टा सजातीयो न धीवत्साक्षितान् ॥ ४ ॥
 स्वात्मबुद्धिमपेक्ष्यासौ विधीनां स्यात्प्रयोजकः ।
 त्यादिः शववत्तेन तद्वन्नानात्मतान्यथा ॥ ५ ॥ न प्रिया
 इत्युक्तेर्नादेहत्वं क्रियाफलम् । देहयोगः क्रियाहेतुस्तस्मादि
 न्क्रियास्त्यजेत् ॥ ६ ॥ कर्मस्वात्मा स्वतन्त्रश्चेन्निवृत्तं च तं
 ताम् । अदेहत्वे फलेष्कार्ये ज्ञाते कुर्यात्कथं क्रियाः ॥ ७ ॥
 जात्यादीन्संपरित्यज्य निमित्तं कर्मणां बुधः । कर्म हेतुर्ना
 यत्स्वरूपं शास्त्रतः स्मरेत् ॥ ८ ॥ आत्मैकः सर्वभूतेषु
 तस्मिंश्च खे यथा । पर्यगान्मोमवत्सर्वं शुक्रं दीप्तिमदिष्यते ।
 व्रणस्त्राय्वोरभावेन स्थूलं देहं निवारयेत् । शुद्धापापत
 लिङ्गं चाकायमित्युत ॥ ९ ॥ वासुदेवो यथाश्चत्ये
 चात्रधीत्समम् । तद्वद्वेत्ति य आत्मानं समं स ब्रह्मवि
 ॥ ११ ॥ यथा ह्यन्यशरीरेषु ममाहन्ता न चेप्यते । अस्मिन्
 तथा देहे धीसाक्षित्वाविशेषतः ॥ १२ ॥ रूपसंस्कारतुल
 रागद्वेषा भयं च यत् । गृह्यते धीश्रयं तस्माज्ज्ञाता शुद्धो
 सदा ॥ १३ ॥ यन्मनास्तन्मयोजन्यत्वे नात्मत्वासौ क्रियात्मा
 आत्मत्वे चानपेक्षत्वात्सापेक्षं हि न तत्स्वयम् ॥ १४ ॥ स
 वैकरसा ज्ञप्तिरविभक्ताजराऽमला । चक्षुराद्युपधानात्सा
 रीता विभाव्यते ॥ १५ ॥ दृश्यत्वादहमित्येपो नात्मघर्षो
 दिवत् । तथान्ये प्रत्यया ज्ञेया दोषाश्चात्माऽमलो ह्यतः ॥
 सर्वप्रत्ययसाक्षित्वादविकारी च सर्वगः । विक्रियेत यदि
 बुद्ध्यादीवाल्पविद्भवेत् ॥ १७ ॥ न दृष्टिर्लुप्यते द्रष्टुश्च
 शैव तत् । नहि द्रष्टुरिति शुक्रं तस्माद्रष्टा सदैकदृक् ॥ १८ ॥

संघातो वासि भूतानां करणानां तथैव च । व्यस्तं वान्यतमो
 वासि को वासीति विचारयेत् ॥ १९ ॥ व्यस्तं नाहं समस्तं
 वा भूतमिन्द्रियमेव वा । ज्ञेयत्वात्करणत्वाच्च ज्ञातान्योऽस्माद्वटा-
 दिवत् ॥ २० ॥ आत्माग्रेरिन्धना बुद्धिरविद्याकामकर्मभिः ।
 दीपिता प्रज्वलत्येषां द्वारैः श्रोत्रादिभिः सदा ॥ २१ ॥ दक्षि-
 णाक्षिप्रधानेषु यदा बुद्धिर्विचेष्टते । विपर्ययैर्विषा दीप्ता
 ह्यात्माग्निः स्थूलभुक्तदा ॥ २२ ॥ ह्रूयन्ते तु हवींपीति
 रूपादिग्रहणे स्मरन् । अरागद्वेष आत्माग्नौ जाग्रदोषैर्न लिप्यते
 ॥ २३ ॥ मानसे तु गृहे व्यक्तः सोऽविद्याकर्मवासनाम् ।
 पश्यंस्तेजस आत्मोक्तः स्वयंज्योतिः प्रकाशिता ॥ २४ ॥ विषया
 वासना वापि चोद्यन्ते नैव कर्मभिः । यदा बुद्धौ तदा ज्ञेयः
 प्राज्ञ आत्मा ह्यनन्यदृक् ॥ २५ ॥ मनोबुद्धीन्द्रियाणां या अ-
 वस्थाः कर्मचोदिताः । चैतन्येनैव भास्यन्ते रविणेव घटादयः
 ॥ २६ ॥ तत्रैवंसति बुद्धीर्ज्ञ आत्मभासावभासयन् । कर्ता
 तासां यदर्थस्ता मूढैरेवाभिधीयते ॥ २७ ॥ सर्वज्ञोऽप्यतएव
 स्यात्स्वेन भासावभासयन् । सर्वं सर्वक्रियाहेतोः सर्वकृत्त्वं तथा-
 त्मनः ॥ २८ ॥ सोपाधिश्चैवमात्मोक्तो निरुपाख्योऽनुपाधि-
 कः । निष्कलो निर्गुणः शुद्धस्तं मनो वाक्क नाप्नुतः ॥ २९ ॥
 चेतनोऽचेतनो वापि कर्ताकर्ता गतोऽजातः । बद्धो मुक्तस्तथा
 चैकोऽनेकः शुद्धोऽन्यथेति वा ॥ ३० ॥ अप्राप्यैव निवर्तन्ते
 वचोधीभिः सहैव तु । निर्गुणत्वात्क्रियाभावाद्विशेषाणामभा-
 वतः ॥ ३१ ॥ व्यापकं सर्वतो व्योम मूर्तैः सर्वैर्वियोजितम् ।
 यथा तद्वदिहात्मानं विन्धाच्छुद्धं परं पदम् ॥ ३२ ॥ दृष्टं
 हित्वा स्मृतिं तस्मिन्सर्वग्रश्च तमस्त्यजेत् । सर्वदृग्ज्योतिषा युक्तो

दिनकृच्छावरं यथा ॥ ३३ ॥ रूपस्मृत्यन्धकारार्थाः प्र-
 यस्य गोचराः । स एवात्मा समो द्रष्टा सर्वभूतेषु सर्वगः ।
 आत्मबुद्धिमनश्चक्षुर्विषयालोकसंगमात् । विचित्रो जायते
 प्रत्ययोज्ञानलक्षणः ॥ ३५ ॥ विविच्यासात्स्वमात्मानं वि-
 च्छुद्धं परं पदम् । द्रष्टारं सर्वभूतस्थं समं सर्वभयातिगम् ।
 समस्तं सर्वगं शान्तं विमलं व्योमवत्स्थितम् । निष्कलं नि-
 सर्वं नित्यं द्वन्द्वैर्विवर्जितम् ॥ ३७ ॥ सर्वप्रत्ययसाक्षी ज्ञ-
 ज्ञेयो मयेत्युत । विमृश्यैवं विजानीयाज्ज्ञानकर्म न वेति
 ॥ ३८ ॥ अदृष्टं द्रष्टृविज्ञातं दृष्टमित्यादि शासनात् । नै-
 मयान्यैर्वा परं ब्रह्म कथंचन ॥ ३९ ॥ स्वरूपान्वयवधा-
 ज्ञानालोकस्वभावतः । अन्यज्ञानानपेक्षत्वाज्ज्ञातं चैव
 मया ॥ ४० ॥ नान्येन ज्योतिषा कार्यं रवेरात्मप्रका-
 स्वबोधान्नान्यबोधेच्छा बोधस्यात्मप्रकाशने ॥ ४१ ॥ न-
 वान्यतोपेक्षा स्वरूपं यस्य यद्भवेत् । प्रकाशान्तरदृश्यो न प्र-
 क्खस्ति कश्चन ॥ ४२ ॥ व्यक्तिः स्यादप्रकाशस्य प्रकाश-
 मागमात् । प्रकाशस्त्वंकार्यः स्यादिति मिथ्या वचो-
 ॥ ४३ ॥ यतोऽभूत्वा भवेद्यच्च तस्य तत्कार्यमिष्यते । त-
 त्वादभूत्वा न प्रकाशो जायते रवेः ॥ ४४ ॥ सत्तामात्रे-
 शस्य कर्तादित्यादिरिष्यते । घटादिव्यक्तितो यद्वत्तद्वद्भो-
 नीष्यताम् ॥ ४५ ॥ विलात्सर्पस्य निर्याणे सूर्यो यद्वत्
 शकः । प्रयत्नेन विना तद्वज्ज्ञातात्मा बोधरूपतः ॥ ४६ ॥
 दग्धैवमुष्णः सत्तायां तद्वद्भोद्वात्मनीष्यताम् । सत्येव यद्वत्
 तु ज्ञाते सर्प इवोत्थिते ॥ ४७ ॥ ज्ञाताऽप्यतोपि तद्वज्ज्ञ-
 आमकवद्भवेत् । स्वरूपेण स्वयं नाहम् ज्ञेयोऽज्ञेयोऽथवा

॥ ४८ ॥ विदिताविदिताभ्यां तदन्यदेवेति शासनात् । बन्ध-
मोक्षादयो भावास्तद्वदात्मनि कल्पिताः ॥ ४९ ॥ नाहोरात्रे
यथा सूर्ये प्रभारूपाविशेषतः । बोधरूपाविशेषान्न बोधाबोधौ
तथात्मनि ॥ ५० ॥ यथोक्तं ब्रह्म यो वेद हानोपादानवर्जि-
तम् । यथोक्तेन विधानेन स सत्यं नैव जायते ॥ ५१ ॥ जन्म-
मृत्युप्रवाहेषु पतितो नैव शक्नुयात् । इत उद्धर्तुमात्मानं ज्ञाना-
दन्येन केनचित् ॥ ५२ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व-
संशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्ट इति श्रुतेः ॥ ५३ ॥
ममाहमित्येतदपोह्य सर्वतो विमुक्तदेहं पदमम्बरोपमम् । सुद-
ृष्टशास्त्रानुमितिभ्य ईरितं विमुच्यतेऽस्मिन्यदि निश्चितो नरः
॥ ५४ ॥ इति पञ्चदशं नान्यदन्यत्प्रकरणम् ॥ १५ ॥

पार्थिवप्रकरणम् ॥ १६ ॥

पार्थिवः कठिनो धातुर्द्रवो देहे स्मृतोऽम्भयः । पक्तिश्चेष्टा-
वकाशाः स्युर्वह्निवाय्वम्बरोद्भवाः ॥ १ ॥ घ्राणादीनि तदर्थाश्च
पृथिव्यादिगुणाः क्रमात् । रूपालोकवदिष्टं हि सजातीयार्थ-
मिन्द्रियम् ॥ २ ॥ बुद्ध्यर्थान्याद्गुरेतानि वाक्पाण्यादीनि कर्म-
णे । तद्विकल्पार्थमन्तस्थं मन एकादशं भवेत् ॥ ३ ॥ निश्च-
यार्था भवेद्बुद्धिस्तां सर्वार्थानुभाविनीम् । ज्ञातात्मोक्तः स्वरू-
पेण ज्योतिषा व्यञ्जयन्सदा ॥ ४ ॥ व्यञ्जकस्तु यथालोको
व्यञ्ज्यस्याकारतां गतः । व्यतिकीर्णोऽप्यसंकीर्णस्तद्वज्जः प्रत्ययैः
सदा ॥ ५ ॥ स्थितो दीपो यथायत्नः प्राप्तं सर्वं प्रकाशयेत् ।
शब्दाद्याकारबुद्धीर्ज्ञः प्राप्तास्तद्वत्प्रपश्यति ॥ ६ ॥ शरीरेन्द्रि-
यसंघात आत्मत्वेन गतां धियम् । नित्यात्मज्योतिषा दीप्तां
विशिषन्ति सुखादयः ॥ ७ ॥ शिरोदुःखादिनात्मानं दुःख्य-

स्मीति हि पश्यति । द्रष्टान्यो दुःखिनो दृश्याद्रष्टृत्वाच्च न
 ख्यसौ ॥ ८ ॥ दुःखी स्यादुःख्यहंमानादुःखिनो दर्शन
 वा । संहतेऽङ्गादिभिर्द्रष्टा दुःखी दुःखस्य नैव सः ॥ ९ ॥
 चक्षुर्वत्कर्मकर्तृत्वं स्याच्चेन्नानेकमेव तत् । संहतं च ततो ना
 द्रष्टृत्वात्कर्मतां व्रजेत् ॥ १० ॥ ज्ञानयत्नाद्यनेकत्वमात्मनो
 मतं यदि । नैकज्ञानगुणत्वाच्च ज्योतिर्वत्तस्य कर्मता ॥ ११ ॥
 ज्योतिषो द्योतकत्वेऽपि यद्वन्नात्मप्रकाशनम् । भेदेऽप्येवं
 त्वाज्ज्ञ आत्मानं नैव पश्यति ॥ १२ ॥ यद्वर्मा यः पदा
 तस्यैवेयात्स कर्मताम् । न ह्यात्मानं दहत्यग्निस्तथा नैव प्र
 शयेत् ॥ १३ ॥ एतेनैवात्मनात्मानो ग्रहो बुद्धेर्निराकृत
 अंशोऽप्येवं समत्वाद्धि निर्भेदत्वाच्च युज्यते ॥ १४ ॥ शून्यत्वा
 न युक्तं वै बुद्धेरन्येन दृश्यता । युक्तातो घटवत्तस्याः प्राप्ति
 द्वेष्ट विकल्पतः ॥ १५ ॥ अविकल्पं तदस्त्येव यत्पूर्वं स्यात्
 कल्पतः । विकल्पोत्पत्तिहेतुत्वाद्यद्यस्यैव तु कारणम् ॥ १६ ॥
 अज्ञानं कल्पनामूलं संसारस्य नियामकम् । हित्वात्मानं परं
 विन्द्यान्मुक्तं सदाभयम् ॥ १७ ॥ जाग्रत्स्वप्नं तयोर्वीजं तु
 सार्व्यं तमोमयम् । अन्योन्यस्मिन्नसत्त्वाच्च नास्तीत्येतन्नयं तत्
 ॥ १८ ॥ आत्मबुद्धिमनश्चक्षुरालोकार्थादिसंकरात् । प्राप्ति
 स्यादात्मकमेति क्रियाणां संनिपाततः ॥ १९ ॥ निमीलित
 लने स्थाने वायव्ये तेन चक्षुषः । प्रकाशत्वान्मनस्येवं बुद्ध
 स्तः प्रकाशतः ॥ २० ॥ संकल्पाध्यवसायौ तु मनोबुद्धौ
 क्रमात् । नेतरेतरधर्मत्वं सर्वं चात्मनि कल्पितम् ॥ २१ ॥
 स्थानावच्छेददृष्टिः स्यादिन्द्रियाणां तदात्मताम् । गता ईदृ
 हि पश्यञ्छो देहमात्र इवेक्ष्यते ॥ २२ ॥ क्षणिकं हि तदस्ति

धर्ममात्रं निरन्तरम् । सादृश्यादीपवत्तद्वीस्तच्छान्तिः पुरुषा-
 र्थता ॥ २३ ॥ स्वाकारान्यावभासं च येषां रूपादि विद्यते ।
 येषां नास्ति ततश्चान्यत्पूर्वासंगतिरुच्यते ॥ २४ ॥ बाह्याकार-
 त्वतो ज्ञप्तेः स्मृत्यभावः सदा क्षणात् । क्षणिकत्वाच्च संस्कारं
 नैवाधत्ते कचित्तु धीः ॥ २५ ॥ आधारस्याप्यसत्त्वाच्च तुल्य-
 ता निर्निमित्ततः । स्थाने वा क्षणिकत्वस्य हानं स्यान्न तदिष्यते
 ॥ २६ ॥ शान्तेश्चायत्नसिद्धत्वात्साधनोक्तिरनर्थिका । एकैक-
 सिन्समाप्तत्वाच्छान्तेरन्यानपेक्षता ॥ २७ ॥ अपेक्षा यदि
 भिन्नेऽपि परसंतान इष्यताम् । सर्वार्थे क्षणिके कस्मिंस्तथाप्य-
 न्यानपेक्षता ॥ २८ ॥ तुल्यकालसमुद्भूतावितरेतरयोगिनौ ।
 योगाच्च संस्कृतो यस्तु सोऽन्यं हीक्षितुमर्हति ॥ २९ ॥ मृषा-
 ध्यासस्तु यत्र स्यात्तन्नाशस्तत्र नो मतः । सर्वनाशो भवेद्यस्य
 मोक्षः कस्य फलं वद ॥ ३० ॥ अस्ति तावत्स्वयं नाम ज्ञानं
 वात्मान्यदेव वा । भावाभावज्ञतस्तस्य नाभावस्त्वधिगम्यते
 ॥ ३१ ॥ येनाधिगम्यतेऽभावस्तत्सत्स्यात्तन्न चेद्भवेत् । भावा-
 भावानभिज्ञत्वं लोकस्य स्यान्न चेप्यते ॥ ३२ ॥ सदसत्सदस-
 चेति विकल्पात्प्राग्यदिष्यते । तदद्वैतं समत्वात्तु नित्यं चान्य-
 द्विकल्पितात् ॥ ३३ ॥ विकल्पोद्भवताऽसत्त्वं स्वप्नदृश्यवदि-
 प्यताम् । द्वैतस्य प्रागसत्त्वाच्च सदसत्त्वादिकल्पनात् ॥ ३४ ॥
 वाचारम्भणशास्त्राच्च विकाराणां ह्यभावता । मृत्योः स मृत्यु-
 मित्यादेर्मम मायेति च स्मृतेः ॥ ३५ ॥ विशुद्धिश्चात एवास्य
 विकल्पाच्च विलक्षणः । उपादेयो न हेयोऽत आत्मा नान्यैर-
 कल्पितः ॥ ३६ ॥ अप्रकाशो यथादित्ये नास्ति ज्योतिःस्वभा-
 वतः । नित्यबोधस्वरूपत्वान्नाज्ञानं तद्वदात्मनि ॥ ३७ ॥ तथा-

विक्रियरूपत्वान्नावस्थान्तरमात्मनः । अवस्थान्तरवत्त्वे
 नाशोऽस्य स्थान्न संशयः ॥ ३८ ॥ मोक्षोऽवस्थान्तरं क
 कृतकः स चलो ह्यतः । न संयोगो वियोगो वा मोक्षो यु
 कथंचन ॥ ३९ ॥ संयोगस्याप्यनित्यत्वाद्वियोगस्य तथैव च
 गमनागमने चैव स्वरूपं तु न हीयते ॥ ४० ॥ स्वरूपस्यानि
 मित्तत्वात्सनिमित्ता हि चापरे । अनुपात्तं स्वरूपं हि सेत
 त्यक्तं तथैव च ॥ ४१ ॥ स्वरूपत्वान्न सर्वस्य त्यक्तं शु
 द्धनन्यतः । गृहीतुं वा ततो नित्योऽविषयत्वात्पृथक्त्वतः ॥ ४२ ॥
 आत्मार्थत्वाच्च सर्वस्य नित्य आत्मैव केवलः । त्यजेत्त
 त्क्रियाः सर्वाः साधनैः सह मोक्षवित् ॥ ४३ ॥ आत्मला
 परो लाभ इति शास्त्रोपपत्तयः । अलाभोऽन्यात्मलाभस्तु त
 त्सादनात्मताम् ॥ ४४ ॥ गुणानां समभावस्य ग्रंथो
 ह्युपपद्यते । अविद्यादेः प्रसुप्तत्वान्न चान्यो हेतुरुच्यते ॥ ४५ ॥
 इतरेतरहेतुत्वे प्रवृत्तिः स्यात्सदा न वा । नियमो न प्रवृत्ति
 गुणेष्व्वात्मनि वा भवेत् ॥ ४६ ॥ विशेषो युक्तवद्वा
 तादर्थ्येन च युज्यते । अर्थार्थिनोस्त्वसंबन्धो नार्थी ज्ञो न
 रोऽपि वा ॥ ४७ ॥ प्रधानस्य च पारार्थ्ये पुरुषस्याविकारक
 न युक्तं सांख्यशास्त्रेऽपि विकारेऽपि न युज्यते ॥ ४८ ॥
 संबन्धानुपपत्तेश्च प्रकृतेः पुरुषस्य च । मिथो युक्तं तदर्थत्वं प्र
 नस्याचितित्वतः ॥ ४९ ॥ क्रियोत्पत्तौ विनाशित्वं ज्ञानक
 च पूर्ववत् । निर्निमित्ते त्वनिर्मोक्षः प्रधानस्य प्रसज्यते ॥ ५० ॥
 न प्रकाश्यं यथोष्णत्वं ज्ञानेनैवं सुखादयः । एकनीडत
 ग्राह्याः स्युः कणादादिवर्त्मनाम् ॥ ५१ ॥ युगपत्समं
 सुखविज्ञानयोरपि । मनोयोगैकहेतुत्वाद्ग्राह्यत्वं सुखस्य

॥ ५२ ॥ तथान्येषां च भिन्नत्वाद्युपपत्तिर्न नेष्यते । गुणानां
 समवेतत्वं ज्ञानं चेन्न विशेषणात् ॥ ५३ ॥ ज्ञानेनैव विशेष-
 त्वाज्ज्ञानाप्यत्वं स्मृतेस्तथा । सुखं ज्ञातं मयेत्येवं तवाज्ञानात्म-
 कत्वतः ॥ ५४ ॥ सुखादेर्नात्मधर्मत्वमात्मनस्तेऽविकारतः ।
 भेदादन्यस्य कस्मान्न मनसो वा विशेषतः ॥ ५५ ॥ स्यान्मा-
 लाऽपरिहार्या तु ज्ञानं चेज्ज्ञेयता व्रजेत् । युगपद्वापि चोत्पत्ति-
 रभ्युपेतात इष्यते ॥ ५६ ॥ अनवस्थान्तरत्वाच्च बन्धो नात्मनि
 विद्यते । नाशुद्धिश्चाप्यसङ्गत्वादसङ्गो हीति च श्रुतेः ॥ ५७ ॥
 सूक्ष्मैकागोचरेभ्यश्च न लिप्यत इति श्रुतेः ॥ ५८ ॥ एवं तर्हि
 न मोक्षोऽस्ति बन्धाभावात्कथंचन । शास्त्रानर्थक्यमेव स्यान्न
 बुद्धेर्भ्रान्तिरिष्यते । बन्धो मोक्षश्च तन्नाशः स यथोक्तो न
 चान्यथा ॥ ५९ ॥ बोधात्मज्योतिषा दीप्ता बोधमात्मनि
 मन्यते । बुद्धिर्नान्योऽस्ति बोद्धेति मेयं भ्रान्तिर्हि धीगता ॥ ६० ॥
 बोधस्यात्मस्वरूपत्वान्नित्यं तत्रोपचर्यते । अविवेकोऽप्यनाद्योऽयं
 संसारो नान्य इष्यते ॥ ६१ ॥ मोक्षस्तन्नाश एव स्यान्नान्यथानु-
 पपत्तितः । येषां वस्त्वन्तरापत्तिर्मोक्षो नाशस्तु तैर्मतः ॥ ६२ ॥
 अवस्थान्तरमप्येवमविकारान्न युज्यते । विकारोऽवयवित्वं स्यात्ततो
 नाशो घटादिवत् ॥ ६३ ॥ तस्माद्भ्रान्तिरतोऽन्या हि बन्धमोक्षा-
 दिकल्पनाः । सांख्यकाणादबौद्धानां मीमांसाहतकल्पनाः ॥ ६४ ॥
 शास्त्रयुक्तिविहीनत्वाद्भादर्थव्याः कदाचन । शक्यन्ते शतशो
 वक्तुंदोषास्तासां सहस्रशः ॥ ६५ ॥ अपि निन्दोपपत्तेश्च यान्यतो-
 ऽन्यानि चेत्यतः । त्यक्त्वातो ह्यन्यशास्त्रोक्तीर्मतिं कुर्याद्दृढां
 बुधः ॥ ६६ ॥ श्रद्धाभक्ती पुरस्कृत्य हित्वा सर्वमनार्जवम् ।
 वेदान्तस्यैव तत्त्वार्थे व्यासस्याभिमतौ तथा ॥ ६७ ॥ इति

प्रणुन्ना द्वयवादकल्पना निरात्मवादाश्च तथाहि युक्तिः
 व्यपेतशङ्काः परवादतः स्थिरा मुमुक्षवो ज्ञानपथे स्युरित्
 ॥ ६८ ॥ स्वसाक्षिकं ज्ञानमतीव निर्मलं विकल्पनाभ्यो वि
 रीतमद्वयम् । अवाप्य सम्यग्यदि निश्चितो भवेन्निरन्वयो वि
 तिमेति शाश्वतीम् ॥ ६९ ॥ इदं रहस्यं परमं परायणं व्यपेतदो
 रभिमानवर्जितैः । समीक्ष्य कार्या मतिरार्जवे सदा न तत्त
 वस्वान्यमतिर्हि कश्चन ॥ ७० ॥ अनेकजन्मान्तरसंचितै
 विमुच्यतेऽज्ञाननिमित्तपातकैः । इदं विदित्वा परमं हि पा
 न लिप्यते व्योम इवेह कर्मभिः ॥ ७१ ॥ प्रशान्तचित्ताय जिते
 याय च प्रहीणदोषाय यथोक्तकारिणे । गुणान्वितायानुगत
 सर्वदा प्रदेयमेतत्सततं मुमुक्षवे ॥ ७२ ॥ परस्य देहे न स
 भिमानिता परस्य तद्वत्परमार्थमीक्ष्य च । इदं हि विज्ञानम
 निर्मलं संग्राप्य मुक्तोऽथ भवेच्च सर्वतः ॥ ७३ ॥ नहीह लो
 ऽभ्यधिकोऽस्ति कश्चन स्वरूपलाभात्स इतो हि नान्यतः ।
 देयमैन्द्रादपि राज्यतोऽधिकं स्वरूपलाभं त्वपरीक्ष्य य
 ॥ ७४ ॥ इति षोडशं पार्थिवप्रकरणम् ॥ १६ ॥

सम्यग्मतिप्रकरणम् ॥ १७ ॥

आत्मा ज्ञेयः परो ह्यात्मा यस्मादन्यन्न विद्यते । सर्व
 सर्वदृक् शुद्धस्तस्मै ज्ञेयात्मने नमः ॥ १ ॥ पदवाक्यप्रमा
 दीपभूतैः प्रकाशितम् । ब्रह्म वेदरहस्यं यैस्तान्नित्यं प्रणतोऽस्म
 हम् ॥ २ ॥ यद्वाकमूर्याशुसंपातप्रनष्टध्वान्तकल्मषः । प्र
 तान्गुरुन्वक्ष्ये ब्रह्मविद्याविनिश्चयम् ॥ ३ ॥ आत्मलायात्
 नान्यो लाभः कश्चन विद्यते । यदर्था वेदवादाश्च स्मार्ता
 तु याः क्रियाः ॥ ४ ॥ आत्मा योऽस्ति हि यो लाभः

येष्टो विपर्ययः । आत्मलाभः परः प्रोक्तो नित्यत्वाद्ब्रह्मवेदिभिः
 ॥ ५ ॥ स्वयं लब्धस्वभावत्वाल्लाभस्तस्य नचान्यतः । अन्यापे-
 क्षस्तु यो लाभः सोऽन्यदृष्टिसमुद्भवः ॥ ६ ॥ अन्यदृष्टिस्तविद्या
 स्यात्तन्नाशो मोक्ष उच्यते । ज्ञानेनैव तु सोऽपि स्याद्विरोधि-
 त्वान्न कर्मणा ॥ ७ ॥ कर्मकार्यस्त्वनित्यः स्यादविद्याकामका-
 रणः । प्रमाणं वेद एवात्र ज्ञानस्याधिगमे स्मृतः ॥ ८ ॥ ज्ञानै-
 कार्थपरत्वात्तं वाक्यमेकं ततो विदुः । एकत्वं ह्यात्मनो ज्ञेयं
 वाक्यार्थप्रतिपत्तितः ॥ ९ ॥ वाच्यभेदात्तु तद्भेदः कल्प्यो
 वाच्यो हि तच्छ्रुतेः । त्रयं त्वेतत्ततः प्रोक्तं रूपं नाम च कर्म
 च ॥ १० ॥ असदेतत्रयं तस्मादन्योन्येन हि कल्पितम् । कृतो
 वर्णो यथाशब्दाच्छ्रुतोऽन्यत्र धिया बहिः ॥ ११ ॥ दृष्टं चापि
 यथारूपं बुद्धेः शब्दाय कल्पते । एवमेतज्जगत्सर्वं भ्रान्तिबुद्धि-
 विकल्पितम् ॥ १२ ॥ असदेतत्ततो युक्तं सचिन्मात्रं न कल्पि-
 तम् । वेदश्चापि स एवाद्यो वेद्यं चान्यत्तु कल्पितम् ॥ १३ ॥
 येन वेत्ति स वेदः स्यात्स्वप्ने सर्वं तु मायया । येन पश्यति
 तच्चक्षुः शृणोति श्रोत्रमुच्यते ॥ १४ ॥ येन स्वप्नगतो वक्ति
 सा वाग्घ्राणं तथैव च । रसनस्पर्शने चैव मनश्चान्यत्तथेन्द्रियम्
 ॥ १५ ॥ कल्प्योपाधिभिरेवैतद्भिन्नं ज्ञानमनेकधा । आधिमे-
 दाद्यथा भेदो मणरेकस्य जायते ॥ १६ ॥ जाग्रतश्च यथा भेदो
 ज्ञानस्यास्य विकल्पितः । बुद्धिस्थं व्याकरोत्यर्थं भ्रान्त्या तृष्णो-
 द्भवक्रियः ॥ १७ ॥ स्वप्ने तद्वत्प्रबोधे यो बहिश्चान्तस्तथैव च ।
 आलेख्याध्ययने यद्वत्तदन्योन्यधियोद्भवम् ॥ १८ ॥ यदायं
 कल्पयेद्भेदं तत्कामः सन्यथाक्रतुः । यत्कामस्तत्क्रतुर्भूत्वा कृतं
 यत्तत्प्रपद्यते ॥ १९ ॥ अविद्याप्रभवं सर्वमसत्तस्मादिदं जगत् ।

तद्वता दृश्यते यस्मात्सुपुप्ते न च गृह्यते ॥ २० ॥ विद्या
 श्रुतिप्रोक्ते एकत्वान्यधियौ हि नः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन
 विद्या विधीयते ॥ २१ ॥ चित्ते ह्यादर्शवद्यस्माच्छुद्धे
 प्रकाशते । यमैर्नित्यैश्च यज्ञैश्च तपोभिस्तस्य शोधनम् ॥ २२ ॥
 शरीरादितपः कुर्यात्तद्विशुद्ध्यर्थमुत्तमम् । मनआदिसमा
 तत्तद्देहविशोपणम् ॥ २३ ॥ मनसश्चेन्द्रियाणां च ह्येक
 परमं तपः । तज्ज्यायः सर्वधर्मेभ्यः स धर्मः पर उच्यते ॥ २४ ॥
 दृष्टं जागरितं विद्यात्स्मृतं स्वप्नं तदेव तु । सुपुप्तं तदभा
 स्वमात्मानं परं पदम् ॥ २५ ॥ सुपुप्त्याख्यं तमोज्ञानं
 स्वप्नप्रबोधयोः । स्वात्मबोधप्रदग्धं स्याद्वीजं दग्धं यथा
 ॥ २६ ॥ तदेवैकं त्रिधा ज्ञेयं मायावीजं पुनः क्रमात् । य
 व्यात्माविकारोऽपि बहुधैको जलार्कवत् ॥ २७ ॥ बीजं
 यथा भिन्नं प्राणस्वप्नादिभिस्तथा । स्वप्नजाग्रच्छरीरेषु तद्वत्
 जलेन्दुवत् ॥ २८ ॥ मायाहस्तिनमारुह्य मायाव्येको
 ब्रजेत् । आगच्छंस्तद्देवात्मा प्राणस्वप्नादिगोचरः ॥ २९ ॥
 न हस्ती न तदारूढो मायाव्यन्यो यथास्थितः । न प्राण
 न तद्गृष्टा तथा ज्ञोऽन्यः सदादृशिः ॥ ३० ॥ अवद्वच
 नास्ति माया मायाविनोऽपि वा । बद्धाक्षस्यैव सा मा
 मायाव्येव ततो भवेत् ॥ ३१ ॥ साक्षाद्देवः स विज्ञेयः सा
 दात्मेति च श्रुतेः । भिद्यते हृदयग्रन्थिर्न चेदित्यादितः
 ॥ ३२ ॥ अशब्दादिततो नास्य ग्रहणं चेन्द्रियैर्भवेत् । सु
 दिभ्यस्तथान्यत्वादुद्धा वापि कथं भवेत् ॥ ३३ ॥ अदृश्यो
 यथा राहुश्चन्द्रे विम्बं यथाम्भसि । सर्वगोऽपि तथैवात्मा पु
 वेव स गृह्यते ॥ ३४ ॥ भानोर्विम्बं यथा चोष्णं जलं दृ

चाम्भसः । बुद्धौ बोधो न तद्धर्मस्तथैव स्याद्विधर्मतः ॥ ३५ ॥
चक्षुर्युक्ता धिया वृत्तिर्या तां पश्यन्नलुप्तदृक् । दृष्टेर्द्रष्टा भवेदा-
त्मा श्रुतेः श्रोता तथा भवेत् ॥ ३६ ॥ केवलां मनसो वृत्तिं
पश्यन्मन्ता मतेरजः । विज्ञाताऽलुप्तशक्तितत्तथा शास्त्रं नही-
त्यतः ॥ ३७ ॥ ध्यायतीत्यविकारित्वं तथा लेलायतीत्यपि ।
अत्र स्तेनेति शुद्धत्वं तथानन्वागतं श्रुतेः ॥ ३८ ॥ शक्त्यलो-
पात्सुषुप्ते ज्ञस्तथा बोधेऽविकारतः । ज्ञेयस्यैव विशेषस्तु यत्र वेति
श्रुतेर्वचः ॥ ३९ ॥ व्यवधानाद्धि पारोक्ष्यं लोकदृष्टेरनात्मनः ।
दृष्टेरात्मस्वरूपत्वात्प्रत्यक्षं ब्रह्म तत्स्मृतम् ॥ ४० ॥ नहि दीपा-
न्तरापेक्षा यद्बद्धीपप्रकाशने । बोधस्यात्मस्वरूपत्वान्न बोधोऽन्य-
स्तथेप्यते ॥ ४१ ॥ विषयत्वं विकारित्वं नानात्वं वा नहीप्यते ।
न हेयो नाप्युपादेय आत्मा नान्येन वा ततः ॥ ४२ ॥ सवा-
ह्याभ्यन्तरो जीर्णो जन्ममृत्युजरातिगः । अहमात्मेति यो वेत्ति
कुतोऽन्वेव विभेति सः ॥ ४३ ॥ प्रागेवैतद्विधेः कर्म वर्णिता-
देरपोहनात् । तदस्थूलादिशास्त्रेभ्यस्तत्त्वमेवेति निश्चयात् ॥ ४४ ॥
पूर्वदेहपरित्यागे जात्यादीनां ग्रहाणतः । देहस्यैव तु जात्यादि-
स्तस्याप्येवं ह्यनात्मता ॥ ४५ ॥ ममाहं चेत्यतोऽविद्या शरीरा-
दिष्वनात्मसु । आत्मज्ञानेन हेया स्यादसुराणामिति श्रुतेः
॥ ४६ ॥ दशाहाशौचकार्याणां पारिव्राज्ये निवर्तनम् । यथा
ज्ञानस्य संप्राप्तौ तद्ब्रज्जात्यादिकर्मणाम् ॥ ४७ ॥ यत्कामस्तत्क्र-
तुर्भूत्वा कृतं त्वज्ञः प्रपद्यते । यदा स्वात्मदृशः कामाः प्रमुच्य-
न्तेऽमृतस्तदा ॥ ४८ ॥ आत्मरूपविधेः कार्यं क्रियादिभ्यो
निवर्तनम् । न साध्यं साधनं वात्मा नित्यतृप्तः स्मृतेर्मतः
॥ ४९ ॥ उत्पाद्याप्यविकार्याणि संस्कार्यं च क्रियाफलम् ।

नातोऽन्यत्कर्मणा कार्यं त्यजेत्तस्मात्ससाधनम् ॥ ५० ॥ त-
 न्तत्वादनित्यत्वादात्मार्थत्वाच्च या वहिः । संहत्यात्मनि
 ग्रीतिं सत्यार्थी गुरुमाश्रयेत् ॥ ५१ ॥ शान्तं प्रावं-
 मुक्तं निष्क्रियं ब्रह्मणि स्थितम् । श्रुतेराचार्यवान्वेद तद्वि-
 स्मृतेस्तथा ॥ ५२ ॥ स गुरुस्तारयेद्युक्तं शिष्यं शिष्यगुणान्वितं
 ब्रह्मविद्याप्लवेनाशु स्वान्तर्ध्वान्तमहोदधिम् ॥ ५३ ॥
 स्पृष्टिः श्रुतिर्घातिर्मतिर्विज्ञातिरेव च । शक्तयोऽन्याश्च कि-
 चिद्रूपत्वेऽप्युपाधिभिः ॥ ५४ ॥ अपायोद्भूतिहीनाभि-
 दीप्यनरविर्यथा । सर्वज्ञः सर्वदृक् शुद्धः सर्वं जानाति
 ॥ ५५ ॥ अन्यदृष्टिः शरीरस्थस्तावन्मात्रो ह्यविद्यया । जल-
 द्युपमाभिस्तु तद्धर्मा च विभाव्यते ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वा बाह्यं नि-
 ल्याथ स्मृत्वा तत्प्रविहाय च । अथोन्मील्यात्मनो दृष्टि-
 ग्रामोत्पन्नध्वगः ॥ ५७ ॥ प्राणाद्येवं त्रिकं हित्वा तीर्णोऽ-
 महोदधिम् स्वात्मस्थो निर्गुणः शुद्धो बुद्धो मुक्तः स्वतो हि
 ॥ ५८ ॥ अजोऽहं चामरोऽमृत्युरजरोऽभय एव च । स-
 सर्वदृक् शुद्ध इति बुद्धो न जायते ॥ ५९ ॥ पूर्वोक्तं शु-
 वीजं तन्नास्तीति विनिश्चयः । तदभावे कुतो जन्म ब्रह्म-
 विजानतः ॥ ६० ॥ क्षीरात्सर्पिर्यथोद्भूत्य क्षिप्तं तस्मिन्पू-
 बुद्ध्यादेर्ज्ञस्तथाऽसत्यान्न देही पूर्ववद्भवेत् ॥ ६१ ॥ सत्यं
 मनन्तं च रसादेः पञ्चकात्परम् । स्यामदृश्यादिशास्त्रो-
 ब्रह्मेति निर्भयः ॥ ६२ ॥ यस्माद्धीताः प्रवर्तन्ते वाङ्मन-
 कादयः । तदात्मानन्दतत्त्वज्ञो न विभेति कुतश्चन ॥ ६३ ॥
 नामादिभ्यः परे भूम्नि स्वाराज्ये चेत्स्थितोऽद्वये । प्रव-
 तदात्सज्ञो न कार्यं कर्मणा तदा ॥ ६४ ॥ चित्तवैधान्तो-

स्मरन्तः प्रजापतिः । प्रविलीने तु सर्वस्मिन्प्राज्ञोऽव्याकृतमु-
 च्यते ॥ ६५ ॥ वाचारम्भणमात्रत्वात्सुपुष्पादित्रिकं त्वसत् ।
 सत्यो ज्ञश्चाहमित्येवं सत्यसन्धो विमुच्यते ॥ ६६ ॥ भारूपत्वा-
 द्यथा भानोर्नाहोरात्रे तथैव च । ज्ञानाज्ञाने न मे स्यातां चिद्भू-
 पत्वाविशेषतः ॥ ६७ ॥ शास्त्रस्यानतिशङ्क्यत्वाद्ब्रह्मैव स्यामहं
 सदा । ब्रह्मणो मे न हेयं स्याद्ब्राह्मं वेति च संस्मरेत् ॥ ६८ ॥
 अहमेव च भूतेषु सर्वेष्वेको नभो यथा । मयि सर्वाणि भूतानि
 पश्यन्नेवं न जायते ॥ ६९ ॥ न ब्राह्मं मध्यतो वान्तर्विद्यते
 ऽन्यत्स्वतः क्वचित् । अवाह्यान्तःश्रुतेः किञ्चित्तस्माच्छुद्धः स्वयं-
 प्रभः ॥ ७० ॥ नेतिनेत्यादिशास्त्रेभ्यः प्रपञ्चोपशमोऽद्वयः ।
 अविज्ञातादिशास्त्राच्च नैव ज्ञेयो ह्यतोऽन्यथा ॥ ७१ ॥ सर्वस्या-
 त्माहमेवेति ब्रह्म चेद्विदितं परम् । स आत्मा सर्वभूतानामात्मा
 ह्येषामिति श्रुतेः ॥ ७२ ॥ जीवश्चेत्परमात्मानं स्वात्मानं देव-
 मञ्जसा । देवोपास्यः स देवानां पशुत्वाच्च निवर्तते ॥ ७३ ॥
 अहमेव सदात्मज्ञः शून्यस्त्वन्यैर्यथाम्बरम् । इत्येवं सत्यसंधत्वा-
 दसद्वाता न बध्यते ॥ ७४ ॥ कृपणास्तेऽन्यथैवातो विदुर्ब्रह्म
 परं हि ये । स्वराज्योऽनन्यदृक्स्वस्थस्तस्य देवा असन्वशे ॥ ७५ ॥
 हित्वा जात्यादिसंवन्धान्वाचोऽन्याः सह कर्मभिः । ओमित्येवं
 सदात्मानं सर्वं शुद्धं प्रपद्यथ ॥ ७६ ॥ सेतुं सर्वव्यवस्थानाम-
 होरात्रादिवर्जितम् । तिर्यगूर्ध्वमधः सर्वं सकृज्ज्योतिरनामयम्
 ॥ ७७ ॥ धर्माधर्मविनिर्मुक्तं भूतभव्यात्कृताकृतात् । स्वमा-
 त्मानं परं विद्याद्विमुक्तं सर्वबन्धनैः ॥ ७८ ॥ अकुर्वन्सर्वकृच्छु-
 द्धस्तिष्ठन्नत्येति धावतः । मायया सर्वशक्तित्वादजः सन्बहुधा
 मतः ॥ ७९ ॥ राजवत्साक्षिमात्रत्वात्सांनिध्याद्भामको यथा ।

आमयञ्जगदात्माहं निःक्रियोऽकारकोऽद्वयः ॥ ८० ॥ निः
 निष्क्रियं नित्यं निर्द्वन्द्वं यन्निरामयम् । शुद्धं बुद्धं तथा
 तद्ब्रह्मासीति धारयेत् ॥ ८१ ॥ बन्धं मोक्षं च सर्वं यत्
 भयं हेयमेकं द्वयं च ज्ञेयं ज्ञेयाभ्यतीतं परममधिगतं तत्
 विशुद्धम् । विज्ञायैतद्यथावच्छ्रुतिमुनिगदितं शोकमोहान्
 सर्वज्ञः सर्वकृत्स्याद्भवभयरहितो ब्राह्मणोऽवाप्तकृत्यः ॥ ८२ ॥
 न स्वयं स्वस्य नान्यश्च नान्यस्यात्मा च हेयगः । उपादेयं
 चाप्येवमिति सम्यग्भूतिः स्मृता ॥ ८३ ॥ आत्मप्रत्यक्षा
 ह्येषा सर्ववेदान्तगोचरा । ज्ञात्वैतां हि विमुच्यन्ते सर्वसं
 न्धनैः ॥ ८४ ॥ रहस्यं सर्ववेदानां देवानां चापि यत्
 पवित्रं परमं ह्येतत्तदेतत्संप्रकाशितम् ॥ ८५ ॥ नैतदेव
 न्ताय रहस्यं ज्ञानमुत्तमम् । विरक्ताय प्रदातव्यं शिष्याय
 ताय च ॥ ८६ ॥ ददतश्चात्मनो ज्ञानं निष्क्रियोऽन्यो न वि
 ते । ज्ञानमिच्छंस्तरैस्तस्माद्युक्तः शिष्यगुणैः सदा ॥ ८७ ॥
 ज्ञेयं तथा ज्ञाता यस्मादन्यो न विद्यते । सर्वज्ञः सर्वशक्तिः
 ज्ञानात्मने नमः ॥ ८८ ॥ विद्यया तारिताः स्तो यैर्जन्य
 महोदधिम् । सर्वज्ञेभ्यो नमस्तेभ्यो गुरुभ्योऽज्ञानसंकुलम् ॥ ८९ ॥
 इति सप्तदशं सम्यग्भूतिप्रकरणम् ॥ १७ ॥

तत्त्वमसिप्रकरणम् ॥ १८ ॥

येनात्मना विलीयन्ते उद्भवन्ति च वृत्तयः । नित्याव
 तस्यै नमो धीप्रत्ययात्मने ॥ १ ॥ प्रमथ्य वज्रोपमयुक्तिस्त
 श्रुतेररातीञ्शतशो वचोसिभिः । ररक्ष वेदार्थनिधिं विशाल
 नमो यतीन्द्राय गुरोर्गरीयसे ॥ २ ॥ नित्यमुक्तः सदैव
 त्येवं चेन्न भवेन्मतिः । किमर्थं श्रावयत्येव मातृवच्छ्रुति

रात् ॥ ३ ॥ सिद्धादेवाहमित्यस्माद्युष्मद्गर्भो निषिध्यते ।
 रज्ज्वामिवाहिधीर्युक्त्या तत्त्वमित्यादिशासनैः ॥ ४ ॥ शास्त्र-
 प्रामाण्यतो ज्ञेया धर्मादेरस्तिता यथा । विपापोहो यथा ध्यानाद्
 ह्युतिः स्यात्पाप्मनस्तथा ॥ ५ ॥ सद्ब्रह्माहं करोमीति प्रत्यया-
 वात्मसाक्षिकौ । तयोरज्ञानजस्यैव त्यागो युक्ततरो मतः ॥ ६ ॥
 सदस्मीति प्रमाणोत्था धीरन्या तन्निभोद्भवा । प्रत्यक्षादिनिभा
 वापि बाध्यते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ७ ॥ कुरु भोक्तेति यच्छास्त्रं
 लोकबुद्ध्यनुवादि तत् । सदस्मीति श्रुतेर्जाता बाध्यतेऽन्यैतयैव
 धीः ॥ ८ ॥ सदेव त्वमसीत्युक्ते नात्मनो मुक्तता स्थिरा ।
 प्रवर्तते प्रसंचक्षामतो युक्त्याऽनुचिन्तयेत् ॥ ९ ॥ सकृदुक्तं न
 गृह्णाति वाक्यार्थज्ञोऽपि यो भवेत् । अपेक्षते त एवान्यदवो-
 चाम द्वयं हि तत् ॥ १० ॥ नियोगोऽप्रतिपन्नत्वात्कर्मणां स
 यथा भवेत् । अविरुद्धो भवेत्तावद्यावत्संवेद्यताऽदृढा ॥ ११ ॥
 चेष्टितं च तथा मिथ्या स्वच्छन्दः प्रतिपद्यते । प्रसंख्यानमतः
 कार्यं यावदात्मानुभूयते ॥ १२ ॥ सदस्मीति च विज्ञानमक्षजो
 बाधते ध्रुवम् । शब्दोत्थं दृढसंस्कारो दोषैश्चाकृष्यते बहिः
 ॥ १३ ॥ श्रुतानुमानजन्मानौ सामान्यविषयौ यतः । प्रत्यया-
 चक्षजोऽवश्यं विशेषार्थो निवारयेत् ॥ १४ ॥ वाक्यार्थप्रत्ययी
 कश्चिन्निर्दुःखो नोपलभ्यते । यदि वा दृश्यते कश्चिद्वाक्यार्थ-
 श्रुतिमात्रतः ॥ १५ ॥ निर्दुःखोऽतीतदेहेषु कृतभावोऽनुमीयते ।
 चर्या नोऽशास्त्रसंवेद्या स्यादनिष्टं तथासति ॥ १६ ॥ सदस्मीति
 फलं चोक्त्वा विधेयं साधनं यतः । न तदन्यत्प्रसंख्यानात्प्र-
 सिद्धार्थमिहेष्यते ॥ १७ ॥ तस्मादनुभवार्थैव प्रसंचक्षीत यत्नतः ।
 त्यजन्साधनतत्साध्यविरुद्धं शममादिमान् ॥ १८ ॥ नैतदेवं

रहस्यानां नेतिनेत्यवसानतः । क्रियासाध्यं पुरा श्रान्
 मोक्षो नित्यसिद्धतः ॥ १९ ॥ पुत्रदुःखं यथाध्यस्तं पित्रा
 स्व आत्मनि । अहंकर्ता तथाध्यस्तो नित्यादुःखे स्व आ
 ॥ २० ॥ सोऽध्यासो नेतिनेतीति प्राप्तवत्प्रतिपिध्यते ।
 अध्यासविधिः कश्चित्कुतश्चिन्नोपपद्यते ॥ २१ ॥ आत्मा
 यथाध्यासः प्रतिपेधस्तथैव च । मलाध्यासनिपेधौ खे नि
 च यथाबुधैः ॥ २२ ॥ प्राप्तश्चेत्प्रतिपिध्येत मोक्षोऽनित्यो
 द्रुवम् । अतोऽप्राप्तनिपेधोऽयं दिव्यग्निचयनादिवत् ॥ २३ ॥
 संभाव्यो गोचरे शब्दः प्रत्ययो वा न चान्यथा । न सं
 तदात्मत्वादहं कर्तुस्तथैव च ॥ २४ ॥ अहंकर्त्रात्मनि
 चैतन्ये कर्तृतादि यत् । नेति नेतीति तत्सर्वं साहंकर्त्रा
 ध्यते ॥ २५ ॥ उपलब्धिः स्वयंज्योतिर्दृशिः प्रत्यक्सदनि
 साक्षात्सर्वान्तरः साक्षी चेता नित्योऽगुणोऽद्वयः ॥ २६ ॥
 संनिधौ सर्वदा तस्य स्यात्तदाभोऽभिमानकृत् । आत्मानं
 द्वयं चातः स्यादहंममगोचरः ॥ २७ ॥ जातिकर्मादिसं
 तस्मिञ्शब्दास्त्वहंकृति । न कश्चिद्वर्तते शब्दस्तदभावात्स
 त्मनि ॥ २८ ॥ आभासो यत्र तत्रैव शब्दाः प्रत्यगदृशि
 ताः । लक्षयेयुर्न साक्षात्तमभिदध्युः कथंचन ॥ २९ ॥
 जात्यादिमान्कश्चिदर्थः शब्दैर्निरूप्यते ॥ ३० ॥ आत्मानं
 यथाहंकृदात्मशब्दैस्तथोच्यते । उल्मुकादौ यथाग्न्यर्थाः
 तान्न चाञ्जसा ॥ ३१ ॥ मुखादन्यो मुखाभासो यथादन्त
 कारतः । आभासान्मुखमप्येवमादर्शानुवर्तनात् ॥ ३२ ॥
 अहंकृत्यात्मनिर्भासो मुखाभासवदिष्यते । मुखवत्स्मृत
 न्योऽविविक्तौ तौ तथैव च ॥ ३३ ॥ संसारी च स

आभासो यस्त्वहंकृतिः । वस्तुच्छाया स्मृतेरन्यन्माधुर्यादि च
कारणम् ॥ ३४ ॥ जैकदेशो विकारो वा तदाभासाश्रयः परे ।
अहंकर्तैव संसारी स्वतन्त्र इति केचन ॥ ३५ ॥ अहंकारादिसं-
तानः संसारी नान्वयी कश्चित् । इत्येवं सौगता आहुस्तत्र
न्यायो विचार्यताम् ॥ ३६ ॥ संसारिणां कथा त्वास्तां प्रकृतं
त्वधुनोच्यते । मुखाभासो य आदर्शे धर्मो नान्यतरस्य सः ।
द्वयोरेकस्य चेद्धर्मो वियुक्तेऽन्यतरे भवेत् ॥ ३७ ॥ मुखेन व्यप-
देशात्स मुखस्यैवेति चेन्मतम् । नादर्शानुविधानाच्च मुखे सत्य-
विभावतः ॥ ३८ ॥ द्वयोरेवेति चेत्तत्र द्वयोरेवाप्यदर्शनात् ।
अदृश्यस्य सतो दृष्टिः स्याद्राहोश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ ३९ ॥ राहोः
प्रागेव वस्तुत्वं सिद्धं शास्त्रप्रमाणतः । छायापक्षे त्ववस्तुत्वं तस्य
स्यात्पूर्वयुक्तितः ॥ ४० ॥ छायाक्रान्तेर्निपेधोज्यं नतु वस्तुत्व-
साधकः । न ह्यर्थान्तरनिष्ठं सद्वाक्यमर्थान्तरं वदेत् ॥ ४१ ॥
माधुर्यादि च यत्कार्यमुष्णद्रव्याद्यसेवनात् । छायाया न त्वद-
ष्टत्वादपामेव च दर्शनात् ॥ ४२ ॥ आत्माभासाश्रयाश्चैवं
मुखाभासाश्रया यथा । गम्यन्ते शास्त्रयुक्तिभ्यामाभासासत्त्व-
मेव च ॥ ४३ ॥ न दृशेरविकारित्वादाभासस्याप्यवस्तुतः ।
नाचितित्वादहंकर्तुः कस्य संसारिता भवेत् ॥ ४४ ॥ अविद्या-
मात्र एवातः संसारोऽस्त्वविवेकतः । कूटस्थेनात्मना नित्यमा-
त्मवानात्मनीव सः ॥ ४५ ॥ रज्जुसर्पो यथा रज्ज्वा सात्मकः
ग्राग्विवेकतः । अवस्तुसन्नापि ह्येष कूटस्थेनात्मना तथा ॥ ४६ ॥
आत्माभासाश्रयश्चात्मा प्रत्ययैः स्वैर्विकारवान् । सुखी दुःखी च
संसारी नित्य एवेति केचन ॥ ४७ ॥ आत्माभासापरिज्ञानाद्या-
थात्म्येन विमोहिताः । अहंकर्तारमात्मेति मन्यन्ते ते निरागमाः

॥४८॥ संसारो वस्तुसंस्तेषां कर्तृभोक्तृत्वलक्षणः । आत्मा
 श्रयाज्ञानात्संसरन्त्यविवेकतः ॥४९॥ चैतन्याभासता बुद्धेर-
 नस्तत्स्वरूपता । स्याच्चेत्तं ज्ञानशब्दैश्च वेदः शास्तीति युज्यते ।
 प्रकृतिप्रत्ययार्थौ यौ भिन्नावेकाश्रयौ यथा । करोति गच्छ-
 त्यादौ दृष्टौ लोकप्रसिद्धितः ॥ ५१ ॥ नानयोर्द्व्याश्रयत्वं च त-
 दृष्टं स्मृतौ तथा । जानात्यर्थेषु को हेतुर्द्व्याश्रयत्वे निगद्यते
 ॥५२॥ आत्माभासस्तु तिङ्वाच्यो धात्वर्थश्च धियः क्रिया । त-
 चाविवेकेन जानातीत्युच्यते मृषा ॥ ५३ ॥ न बुद्धेरविवेक-
 ऽस्ति नात्मनो विद्यते क्रिया । अतो नान्यतरस्यापि जाना-
 च युज्यते ॥ ५४ ॥ नाप्यतो भावशब्देन ज्ञप्तिरित्यपि युज्य-
 न ह्यात्मा विक्रियामात्रो नित्य आत्मेति शासनात् ॥ ५५ ॥
 न बुद्धेर्बुद्धिवाच्यत्वं करणं न ह्यकर्तृकम् । नापि ज्ञायत-
 कर्मशब्दैर्निरूप्यते ॥ ५६ ॥ न येषामेक एवात्मा निर्दु-
 ऽविक्रियः सदा । तेषां स्याच्छब्दवाच्यत्वं ज्ञेयत्वं चात्मनः
 ॥ ५७ ॥ यदाहं कर्तुरात्मत्वं तदा शब्दार्थमुख्यता । नस्त-
 यादिमत्वात् शुतौ तस्यात्मतेष्यते ॥ ५८ ॥ हन्त तर्हि
 मुख्यार्थो नापि गौणः कथंचन । जानातीत्यादिशब्दस्य
 वाच्यता तथापि तु ॥ ५९ ॥ शब्दानामयथार्थत्वे वेदस्यापि
 माणता । सा च नेष्टा ततो ग्राह्या गतिरस्य प्रसिद्धितः ॥ ६० ॥
 प्रसिद्धिर्मूढलोकस्य यदि ग्राह्या निरात्मता । लोकायति-
 द्धान्तः सा चानिष्टा प्रसज्यते ॥ ६१ ॥ अभियुक्तप्रसिद्धिवे-
 बहुर्विवेकता । गतिशून्यं न वेदोऽयं प्रमाणं संवदत्युत ॥ ६२ ॥
 आदर्शे मुखसामान्यं मुखस्येष्टं हि मानवैः । मुखस्य प्रति-
 हि मुखाकारेण दृश्यते ॥ ६३ ॥ यत्र यस्यात्र भासस्तु

वाविवेकतः । जानातीति क्रियां सर्वो लोको वक्ति स्वभावतः
 ॥ ६४ ॥ बुद्धेः कर्तृत्वमध्यस्य जानातीति ज्ञ उच्यते । तथा
 चैतन्यमध्यस्य ज्ञत्वं बुद्धेरिहोच्यते ॥ ६५ ॥ स्वरूपं चात्मनो
 ज्ञानं नित्यं ज्योतिःश्रुतेर्यतः । न बुद्ध्या क्रियते तस्मान्नात्मना-
 न्येन वा सदा ॥ ६६ ॥ देहेऽहं प्रत्ययो यद्वज्जानातीति च
 लौकिकाः । वदन्ति ज्ञानकर्तृत्वं तद्वद्बुद्धेस्तथात्मनः ॥ ६७ ॥
 बौद्धैस्तु प्रत्ययैरेवं क्रियमाणैश्च चिन्मैः । मोहिताः क्रियते
 ज्ञानमित्याहुस्ताकिंका जनाः ॥ ६८ ॥ तस्माज्ज्ञाभासबुद्धीना-
 मविवेकात्प्रवर्तिताः । जानातीत्यादिशब्दश्च प्रत्ययो या च
 तत्स्मृतिः ॥ ६९ ॥ आदर्शानुविधायित्वं छायाया अस्यते
 मुखम् । बुद्धिधर्मानुकारित्वं ज्ञाभासस्य तथेच्यते ॥ ७० ॥
 बुद्धेस्तु प्रत्ययास्तस्मादात्माभासेन दीपिताः । ग्राहिका इव
 भासन्ते दहन्तीबोल्मुकादयः ॥ ७१ ॥ स्वयमेवावभासन्ते
 ग्राहकाः स्वयमेव च । इत्येवं ग्राहकास्तित्वं प्रतिपिच्छन्ति
 सौगताः ॥ ७२ ॥ यद्येवं नान्यद्व्याप्ते किं तद्वारणमुच्यता-
 म् । भावाभावौ हि तेषां यौ नान्यग्राह्यौ सता यदि ॥ ७३ ॥
 अन्वयी ग्राहकस्तेषामित्येतदपि तत्समम् । अचितित्वस्य तुल्य-
 त्वादन्यस्मिन्ग्राहके सति ॥ ७४ ॥ अध्यक्षस्य समीपे तु सिद्धिः
 स्यादिति चेन्मतम् । नाध्यक्षेऽनुपकारित्वादन्यत्रापि प्रसङ्गतः
 ॥ ७५ ॥ अर्थी दुःखी च यः श्रोता सत्त्वध्यक्षोऽथवेतरः ।
 अध्यक्षस्य च दुःखित्वमर्थित्वं च न ते मतम् ॥ ७६ ॥ कर्ताध्यक्षः
 सदसीति नैव सद्ब्रह्मर्हति । सदेवासीति मिथ्योक्तिः श्रुतेरपि न
 युज्यते ॥ ७७ ॥ अविविच्योभयं वक्ति श्रुतिश्चेत्स्याद्ब्रह्मस्तथा ।
 अस्मदस्तु विविच्यैव त्वमेवेति वदेद्यदि । प्रत्ययान्वयिनिष्ठत्व-

मुक्तदोषः प्रसज्यते ॥ ७८ ॥ त्वमित्यध्यक्षनिष्ठशेदहमध्यक्ष
 कथम् । संबन्धो वाच्य एवात्र येन त्वमिति लक्षयेत् ॥ ७९ ॥
 द्रष्टृदृश्यत्वसंबन्धो यद्यध्यक्षे क्रियेत्कथम् ॥ ८० ॥ अत्रि
 ऽपि तादात्म्यमध्यक्षस्य भवेद्यदि । आत्माध्यक्षो ममान्
 संबन्धाग्रहणेन धीः ॥ ८१ ॥ संबन्धग्रहणं शास्त्रादिति चेन्न
 नहि । पूर्वोक्ताः स्युस्त्रिधा दोषा ग्रहो वा स्यान्ममेति च ।
 अदृशिर्दृशिरूपेण भाति बुद्धिर्यदा तदा । प्रत्यया अपि न
 स्युस्तप्तायोविस्फुलिङ्गवत् ॥ ८३ ॥ आभासस्तदभावश्च
 सीम्नो न चान्यथा । लोकस्य युक्तिः स्यातां तद्ग्रहणं
 सति ॥ ८४ ॥ नन्वेवं दृशिसंक्रान्तिरयः पिण्डेऽप्रिवृत्त
 मुखाभासवदित्येतदादर्शं तन्निराकृतम् ॥ ८५ ॥ कृष्ण
 हिताभासमित्येतद्दृष्टमुच्यते । दृष्टदार्ष्टान्ततुल्यत्वं न तु
 त्मना क्वचित् ॥ ८६ ॥ तथैव चेतनाभासं चित्तं चैतन्य
 वेत् । मुखाभासो यथादर्शं आभासश्चोदितो मृषा ॥ ८७ ॥
 चित्तं चेतनमित्येतच्छास्त्रयुक्तिविवर्जितम् । देहस्यापि
 स्याच्चक्षुरादेस्तथैव च ॥ ८८ ॥ तदप्यस्त्विति चेत्तत्र लोक
 तिकसंगतेः । न च धीर्दृशिरसीति यद्याभासो न चेतसि ।
 सदसीति धियोऽभावे व्यर्थं स्यात्तत्त्वमस्यपि । युष्मदस्य
 गङ्गे स्यादर्थवदिदं वचः ॥ ९० ॥ ममेदं प्रत्ययौ ज्ञेयौ बुद्ध
 न संशयः । अहमित्यसदीष्टः स्यादयमसीति चोभयोः ॥ ९१ ॥
 अन्योन्यापेक्षया तेषां प्रधानगुणतेष्यते । विशेषणविशेष्य
 तथा ग्राह्यं हि युक्तिः ॥ ९२ ॥ ममेदं द्वयमप्येतन्मन्त्र
 विशेषणम् । धनी गोमान्यथा तद्देहोऽहंकर्तुरेव च ॥ ९३ ॥
 बुद्ध्याकृतं सदा सर्वं साहंकर्ता च साक्षिणः । तस्मात्सर्वं

सो ज्ञः किञ्चिदप्यस्पृशन्सदा ॥ ९४ ॥ प्रतिलोममिदं सर्वं
यथोक्तं लोकबुद्धितः । अविवेकधियामस्ति नास्ति सर्वं
विवेकिनाम् ॥ ९५ ॥ अन्वयव्यतिरेकौ हि पदार्थस्य पदस्य
च । स्यादेतदहमित्यत्र युक्तिरेवावधारणे ॥ ९६ ॥ नाद्राक्षम-
हमित्यस्मिन्सुप्तेऽन्यन्मनागपि । न वारयति दृष्टिं स्वां प्रत्ययं
तु निषेधति ॥ ९७ ॥ स्वयंज्योतिर्न हि द्रष्टुरित्येवं संविदो-
ऽस्तिताम् । कौटस्थ्यं च तथा तस्याः प्रत्ययस्य तु लुप्तताम् ॥
स्वयमेवात्रवीच्छास्त्रं प्रत्ययावगती पृथक् ॥ ९८ ॥ एवं विज्ञा-
तवाक्यार्थे श्रुतिलोकप्रसिद्धितः । श्रुतिस्तच्चमसीत्याह श्रोतुर्मो-
हापनुत्तये ॥ ९९ ॥ ब्रह्मा दाशरथेर्यद्वदुक्त्यैवापानुदत्तमः ।
तस्य विष्णुत्वसंबोधे न यत्नान्तरमूचिवान् ॥ १०० ॥ अहं-
शब्दस्य निष्ठा या ज्योतिषि प्रत्यगात्मनि । संबोक्ता सदसीत्येवं
फलं तत्र विमुक्तता ॥ १०१ ॥ श्रुतमात्रेण चेन्न स्यात्कार्यं
तत्र भवेद्बुधम् । व्यवहारात्पुरापीष्टः सद्भावः स्वयमात्मनः
॥ १०२ ॥ अशनायादिनिर्मुक्त्यै तत्काला जायते प्रमा । तच्च-
मस्यादिवाक्यार्थे त्रिषु कालेऽप्यसंशयः ॥ १०३ ॥ प्रतिबन्ध-
विहीनत्वात्स्वयं चानुभवात्मनः । जायेतैव प्रमा तत्र स्वात्म-
न्येव न संशयः ॥ १०४ ॥ किं सदेवाहमस्मीति किंवान्यत्प्र-
तिपद्यते । सदेव चेदहंशब्दः सता मुख्यार्थ इष्यताम् ॥ १०५ ॥
अन्यचेत्सदहंग्राहप्रतिपत्तिर्मृपैव सा । तस्मान्मुख्यग्रहे नास्ति
वारणावगतेरिह ॥ १०६ ॥ प्रत्ययी प्रत्ययश्चैव यदाभासौ तद-
र्थता । तयोरचितिमच्चाच्च चैतन्ये कल्प्यते फलम् ॥ १०७ ॥
कूटस्थेऽपि फलं योग्यं राजनीव जयादिकम् । तदनात्मत्वहे-
तुभ्यां क्रियायाः प्रत्ययस्य च ॥ १०८ ॥ आदर्शस्तु यदाभा-

सो मुखाकारः स एव सः । यथैवं प्रत्ययादर्शो यदाभास-
 ह्यहम् ॥ १०९ ॥ इत्येवं प्रतिपत्तिः स्यात्सदस्मीति च नान्त-
 तत्त्वमित्युपदेशोऽपि द्वाराभावादन्वर्थकः ॥ ११० ॥
 स्यादुपदेशश्चेदर्थवत्त्वं तथा भवेत् । अध्यक्षस्य न चे-
 श्रोतृत्वं कस्य तद्भवेत् ॥ १११ ॥ अध्यक्षस्य समीपे स्यादु-
 वेति चेन्मतम् । न तत्कृतोपकारोऽस्ति काष्ठाद्यद्वय क-
 ॥ ११२ ॥ बुद्धौ चेत्तत्कृतः कश्चिन्नन्वेवं परिणामिता ।
 भासेऽपि च को दोषः सति श्रुत्याद्यनुग्रहे ॥ ११३ ॥ अ-
 परिणामश्चेन्न रज्ज्वादिनिभत्ववत् । सर्पादेश्च तथावोचमा-
 मुखत्ववत् ॥ ११४ ॥ नात्माभासत्वसिद्धिश्चेदात्मनो ग्रह-
 थक् । मुखादेश्च पृथक्सिद्धिरिह तन्न्योन्यसंश्रयः ॥ ११५ ॥
 अध्यक्षस्य पृथक्सिद्धावाभासस्य तदीयता । आभासस्य
 यत्ने ह्यध्यक्षव्यतिरिक्तता ॥ ११६ ॥ नैवं स्वप्ने पृथक्
 प्रत्ययस्य दृशेस्तथा । रथादेस्तत्र शून्यत्वात्प्रत्ययस्यात्मना
 ॥ ११७ ॥ अवगत्या हि संव्याप्तः प्रत्ययो विपयाङ्गो
 जायते स यदाकारः स बाह्यो विपयो मतः ॥ ११८ ॥
 प्सिततमत्वात्स तद्वान्कार्ये नियुज्यते । आकारो यत्र चा-
 करणं तदिहोच्यते ॥ ११९ ॥ यदाभासेन संव्याप्तः सं-
 निगद्यते । त्रयमेतद्विविच्यात्र यो जानाति स आत्मवित् ॥ १२० ॥
 सम्यक्संशयमिथ्योक्ताः प्रत्यया व्यभिचारिणः । एकैवा-
 स्तेषु भेदस्तु प्रत्ययार्पितः ॥ १२१ ॥ आधिभेदाद्यथा
 मणेरवगतेस्तथा । अशुद्धिः परिणामश्च सर्वं प्रत्ययतन्त्र-
 ॥ १२२ ॥ ग्रथनं ग्रहणं सिद्धिः प्रत्ययानामिहान्यतः ।
 रोक्ष्यात्तदेवोक्तमनुमानं प्रदीपवत् ॥ १२३ ॥ किमन्य-

त्कश्चित्प्रमाणेन तु केनचित् । विनैव तु प्रमाणेन निवृत्त्यान्य-
 स्य शेषतः ॥ १२४ ॥ शब्देनैव प्रमाणेन निवृत्तिश्चेदिहोच्यते ।
 अध्यक्षस्याप्रसिद्धित्वाच्छून्यतैव प्रसज्यते ॥ १२५ ॥ चेतनस्त्वं
 कथं देह इति चेन्नाप्रसिद्धितः । चेतनस्यान्यतः सिद्धावेवं
 स्यादन्यहानतः ॥ १२६ ॥ अध्यक्षः स्वयमस्त्येव चेतनस्याप-
 रोक्षतः । तुल्य एवं प्रबोधः स्यादन्यस्यासत्त्ववादिना ॥ १२७ ॥
 अहमज्ञासिपं चेदमिति लोकस्मृतेरिह । करणं कर्म कर्ता च
 सिद्धास्त्वेकक्षणे किल ॥ १२८ ॥ ग्रामाण्येऽपि स्मृतेः शैद्या-
 द्यौगपद्यं विभाव्यते । क्रमेण ग्रहणं पूर्वं स्मृतेः पश्चात्तथैव च
 ॥ १२९ ॥ अज्ञासिपमिदं मां चेत्यपेक्षा जायते ध्रुवम् । विशे-
 योऽपेक्ष्यते यत्र तत्र नैवैककालता ॥ १३० ॥ आत्मनो ग्रहणे
 चापि त्रयाणामिह संभवात् । आत्मन्यासक्तकर्तृत्वं न स्यात्क-
 रणकर्मणोः ॥ १३१ ॥ व्याप्तुमिष्टं च यत्कर्तुः क्रियया कर्म
 तत्स्मृतम् । अतो हि कर्तृतन्त्रत्वं तस्येष्टं नान्यतन्त्रता ॥ १३२ ॥
 शब्दाद्बानुमितेर्वापि प्रमाणाद्वा ततोऽन्यतः । सिद्धिः सर्वपदा-
 र्थानां स्यादज्ञप्रति नान्यथा ॥ १३३ ॥ अध्यक्षस्यापि सिद्धिः
 स्यात्प्रमाणेन विनैव वा । विना स्वस्य प्रसिद्धिस्तु नाज्ञं प्रत्युप-
 युज्यते ॥ १३४ ॥ तस्यैवाज्ञत्वमिष्टं चेज्ज्ञानलेन्या मतिर्भवेत् ।
 अन्यस्यैवाज्ञतायां च तद्विज्ञाने ध्रुवा भवेत् ॥ १३५ ॥ ज्ञातता
 स्वात्मलाभो वा सिद्धिः स्यादन्यदेव वा । ज्ञातत्वेऽनन्तरोक्तौ
 त्वं पक्षौ संस्मर्तुमर्हसि ॥ १३६ ॥ सिद्धिः स्यात्स्वात्मलाभश्चे-
 द्यत्तत्र निरर्थकः । सर्वलोकप्रसिद्धत्वात्स्वहेतुभ्यस्तु वस्तुतः
 ॥ १३७ ॥ ज्ञानज्ञेयादिवादेऽतः सिद्धिर्ज्ञातत्वमुच्यते । अध्यक्षा-
 ध्यक्षयोः सिद्धिर्ज्ञेयत्वं नात्मलाभता ॥ १३८ ॥ स्पष्टत्वं कर्म-

कर्त्रादेः सिद्धिता यदि कल्प्यते । स्पष्टताऽस्पष्टते स्यातामन्
 न चात्मनः ॥१३९॥ अद्रष्टुर्नैव चान्धस्य स्पष्टीभावो घटस्य
 कर्त्रादेः स्पष्टतेष्टा चेद्रष्टृताऽध्यक्षकर्तृका ॥ १४० ॥ अनु-
 किमन्यस्मिन्स्यात्तवापेक्षया वद । अनुभवितरीष्टा स्यात्सोऽ-
 भूतिरेव नः ॥ १४१ ॥ अभिन्नोऽपि हि बुद्ध्यात्मा विपरि-
 तदर्शनैः । ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ॥ १४२ ॥
 भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते । सत्त्वं नाशित-
 स्यात्तत्सकृत्त्वं तथेष्ट्यताम् ॥ १४३ ॥ न कश्चिच्चेष्ट्यते य-
 चेत्पक्षहानता । नन्वस्तित्वादयो धर्मा नास्तित्वादिनिवृत्ता-
 न भूतेस्तर्हि नाशित्वं स्वालक्षण्यं मतं हि ते ॥ १४४ ॥
 क्षणावधिर्नाशोऽनाशोनाशनिवृत्तिता । अगोरसत्त्वं गो-
 नतु तद्गोत्वलक्षणम् ॥१४५॥ क्षणवाच्योऽपि योऽर्थः स-
 ऽप्यन्याभाव एव ते ॥ १४६ ॥ भेदाभावेऽप्यभावस्य
 नामभिरिष्यते । नामभेदैरनेकत्वमेकस्य स्यात्कथं तव ॥१४७॥
 अपोहो यदि भिन्नानां वृत्तिस्तस्य कथं गवि । नाभावा भेद-
 सर्वे विशेषा वा कथंचन ॥ १४८ ॥ नामजात्यादयो वा-
 विदस्तेऽविशेषतः ॥ १४९ ॥ प्रत्यक्षमनुमानं वा व्यवहारो-
 च्छसि । क्रियाकारकभेदैस्तदभ्युपेयं ध्रुवं भवेत् ॥ १५० ॥
 तस्मान्नीलं तथा पीतं घटादिर्वा विशेषणम् । संविदस्त-
 स्याद्येन चाप्यनुभूयते ॥ १५१ ॥ रूपादीनां यथान्यः स-
 ह्यत्वाद्ग्राहकस्तथा । प्रत्ययस्तत्तथान्यः स्याच्चञ्जकत्वात्प्रदी-
 ॥ १५२ ॥ अध्यक्षस्य दृशेः कीदृक्संवन्धः संभविष्यति
 अध्यक्षेण तु दृश्येन मुक्त्वान्यो द्रष्टृदृश्यताम् ॥१५३॥ अ-
 कृता दृष्टिर्दृश्यं व्याप्नोत्यथापि वा । नित्याध्यक्षकृतः कश्चिदुप-

भवेद्वियाम् ॥ १५४ ॥ स चोक्तस्तन्निभत्वं प्राक्संन्यासिश्च
घटादिषु । यथालोकादिसंन्यासिर्व्यञ्जकत्वाद्वियस्तथा ॥ १५५ ॥
आलोकस्थो घटो यद्बहुध्वारुढो भवेत्तथा । धीव्यासिः स्याद्घटा-
रोहो धियो व्याप्तौ क्रमो भवेत् ॥ १५६ ॥ पूर्वं स्यात्प्रत्यय-
व्याप्तिस्ततोऽनुग्रह आत्मनः । कृत्स्नाध्यक्षस्य नो युक्तः काला-
काशादिवत्क्रमः ॥ १५७ ॥ विषयग्रहणं यस्य कारणापेक्षया
भवेत् । सत्येव ग्राह्यशेषे च परिणामी स चित्तवत् ॥ १५८ ॥
अध्यक्षोऽहमिति ज्ञानं बुद्धेरेव विनिश्चयः । नाध्यक्षस्याविशेष-
त्वान्न तस्यास्ति परो यतः ॥ १५९ ॥ कर्त्रा चेदहमित्येवमनु-
भूयेत मुक्तता । सुखदुःखविनिर्माणो नाहंकर्तरि युज्यते ॥ १६० ॥
वाध्यते प्रत्ययेनेह विवेकेनाविवेकवान् । देहादावभिमानोत्थो
दुःखीति प्रत्ययो ध्रुवम् । कुण्डलीप्रत्ययो यद्वत्प्रत्यगात्माभि-
मानिना ॥ १६१ ॥ विपर्यासे सदन्तं स्यात्प्रमाणस्याप्रमाणतः
॥ १६२ ॥ दाहच्छेदविनाशेषु दुःखित्वं नान्यथात्मनः । नैव
ह्यन्यस्य दाहादावन्यो दुःखी भवेत्कचित् ॥ १६३ ॥ अस्पर्शत्वा-
ददेहत्वान्नाहं दाहो यतः सदा । तस्मान्मिथ्याभिमानोत्थं मृते
पुत्रे मृतिर्यथा ॥ १६४ ॥ कुण्डल्यहमिति ह्येतद्वाध्येतैव
विवेकिना । दुःखीति प्रत्ययस्तद्वत्केवलमहंधिया सह ॥ १६५ ॥
सिद्धे दुःखित्व इष्टं स्यात्तच्छक्तिश्छन्दसात्मनः । मि-
थ्याभिमानतो दुःखी तेनार्थापादनक्षमः ॥ १६६ ॥
अस्पर्शोऽपि यथा स्पर्शमचलश्चलनादि च । अविवेकात्तथा
दुःखं मानसं चात्मनीक्षते ॥ १६७ ॥ विवेकात्मधिया दुःखं
नुद्यते चलनादिवत् । अविवेकस्वभावेन मनो गच्छत्यनिच्छतः
॥ १६८ ॥ तदानुद्ध्यते दुःखं नैश्चल्येनैव तस्य तत् । प्रत्य-

गात्मनि तस्मात्तदुःखं नैवोपपद्यते ॥ १६९ ॥ त्वंसतोस्त-
 नीडत्वानीलाश्वदिदं भवेत् ॥ १७० ॥ निर्दुःखवाचिना
 गात्वंशब्दस्य तदर्थता । प्रत्यगात्माभिधानेन तच्छब्दस्य
 स्तथा ॥ १७१ ॥ दशमस्त्वमसीत्येवं वाक्यं स्यात्प्रत्यगात्मा
 ॥ १७२ ॥ स्वार्थस्य ह्यप्रहाणेन विशिष्टार्थसमर्पकौ । प्रत्य-
 त्मावगत्यन्तौ नान्योऽर्थोऽर्थद्विरोध्यतः ॥ १७३ ॥ नवबुद्ध-
 हाराद्धि स्वात्मानं दशपूरणम् । अपश्यञ्ज्ञातुमेवेच्छेत्स्वमात्मा
 जनस्तथा ॥ १७४ ॥ अविद्यावद्ब्रह्मद्रष्टात्कामापहतधीः त-
 विविक्तं दशमात्मानं नेक्षते दशमं यथा ॥ १७५ ॥ द-
 स्वमसीत्येवं तत्त्वमस्यादिवाक्यतः । स्वमात्मानं विजा-
 कृत्स्नान्तःकरणे क्षणम् ॥ १७६ ॥ इदं पूर्वमिदं पश्च-
 वाक्यं भवेदिति । अन्वयव्यतिरेकाभ्यां ततो वाक्यार्थो-
 ॥ १७७ ॥ वाक्ये हि श्रूयमाणानां पदानामर्थसंस्मृतिः । नि-
 नैव वेदेऽस्ति पदसांगत्यमर्थतः ॥ १७८ ॥ यदा नित्येषु वाक्य-
 पदार्थस्तु विविच्यते । वाक्यार्थज्ञानसंक्रान्त्यै तदा प्रज्ञो-
 युज्यते ॥ १७९ ॥ अन्वयव्यतिरेकोक्तिः पदार्थस्मरणाय
 स्मृत्यभावे न वाक्यार्थो ज्ञातुं शक्यो हि केनचित् ॥ १८० ॥
 तत्त्वमस्यादिवाक्येषु त्वंपदार्थाविवेकतः । व्यज्यते नैव वाक्य-
 नित्यमुक्तोऽहमित्यतः ॥ १८१ ॥ अन्वयव्यतिरेकोक्तिस्तद्वि-
 काय नान्यथा । त्वंपदार्थाविवेके हि पाणावर्षितविला-
 ॥ १८२ ॥ वाक्यार्थो व्यज्यते चैवं केवलोऽहं पदार्थ-
 दुःखीत्येतदपोहेन प्रत्यगात्मविनिश्चयात् ॥ १८३ ॥ त-
 संभवत्यर्थे श्रुतहानाश्रुतार्थधीः । नैव कल्पयितुं युक्ता पद-
 क्यार्थकोविदैः ॥ १८४ ॥ प्रत्यक्षादीनि बाधेरन्वयान्तरा-

पाकवत् । अक्षजादिनिर्भरैः कथं स्याद्वाक्यबाधनम् ॥ १८५ ॥
 दुःख्यसीति सति ज्ञाने निर्दुःखीति न जायते । प्रत्यक्षादिनि-
 भत्वेऽपि वाक्यान् व्यभिचारतः ॥ १८६ ॥ स्वप्ने दुःख्यहम-
 ध्यासं दाहच्छेदादिहेतुतः । तत्कालभाविभिर्वाक्यैर्न बाधः
 क्रियते यदि ॥ १८७ ॥ समाप्तेस्तर्हि दुःखस्य प्राक् तद्बाध
 इष्यताम् । न हि दुःखस्य संतानो भ्रान्तेर्वा दृश्यते कचित्
 ॥ १८८ ॥ प्रत्यगात्मन आत्मत्वं दुःख्यसीत्यस्य बाधया ।
 दशमं नवमस्येव वेद चेदविरुद्धता ॥ १८९ ॥ नित्यमुक्तत्ववि-
 ज्ञानं वाक्याद्भवति नान्यतः । वाक्यार्थस्यापि विज्ञानं पदार्थ-
 स्मृतिपूर्वकम् ॥ १९० ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां पदार्थः स्मर्यते
 ध्रुवम् । एवं निर्दुःखमात्मानमक्रियं प्रतिपद्यते ॥ १९१ ॥
 सदेवेत्यादिवाक्येभ्यः प्रमा स्फुटतरा भवेत् । दशमस्त्वमसी-
 त्यसाद्यर्थेन प्रत्यगात्मनि ॥ १९२ ॥ प्रबोधेन यथा स्वाप्नं
 सर्वदुःखं निवर्तते । प्रत्यगात्मधिया तद्बहुःखित्वं सर्वदात्मनः
 ॥ १९३ ॥ कृष्णालादौ प्रमाजन्म तदन्यार्थाऽस्मदुत्ततः । तत्त्व-
 मस्यादिवाक्येषु न त्वेवमविरोधतः ॥ १९४ ॥ वाक्ये तत्त्वमसी-
 त्यसिन्धातार्थं तदसिद्धयम् । त्वमर्थे सत्यसाहाय्याद्वाक्यं नोत्पा-
 दयेत्प्रमाम् ॥ १९५ ॥ तत्त्वमोस्तुल्यनीडार्थमसीत्येतत्पदं भवेत्
 ॥ १९६ ॥ तच्छब्दः प्रत्यगात्मार्थस्तच्छब्दार्थस्त्वमस्तथा ।
 दुःखित्वाप्रत्यगात्मत्वं वारयेतामुभापि ॥ १९७ ॥ एवं च
 नेतिनेत्यर्थं गमयेतां परस्परम् ॥ १९८ ॥ एवं तत्त्वमसीत्यस्य
 गम्यमाने फले कथम् । अग्रमाणत्वमस्योक्त्वा क्रियापेक्षत्वमुच्यते
 ॥ १९९ ॥ तस्मादाद्यन्तमध्येषु कुर्वित्येतद्विरोध्यतः । न कल्पा-
 मोऽश्रुतत्वाच्च श्रुतत्यागोऽप्यनर्थकः ॥ २०० ॥ यथानुभूयते

तृप्तिर्भुजेर्वाक्यान् गम्यते । वाक्यस्य विधृतिस्तद्द्रोशकृत्ता
 सीक्रिया ॥२०१॥ सत्यमेवमनात्मार्थवाक्यात्पारोक्ष्यबोधनम्
 प्रत्यगात्मनि न त्वेवं संख्याप्राप्तिवदधुवम् ॥ २०२ ॥ सर्व
 दत्तपर्यायः स्वप्रमाणक इष्यताम् । निवृत्तावगमः सिद्धः
 त्मनोऽनुभवश्च नः ॥ २०३ ॥ बुद्धीनां विषयो दुःखं नो
 विषया मताः । कुतोऽस्य दुःखसंवन्धो दृशेः स्यात्प्रत्यगात्म
 ॥ २०४ ॥ दृशिरेवानुभूयेत स्वेनैवानुभवात्मना । तदा
 तथा जन्म धियोऽस्यानुभवः स्मृतः ॥ २०५ ॥ अज्ञानायां
 निर्मुक्तः सिद्धो मोक्षस्तमेव सः । श्रोतव्यादि त्वेत्येतद्वि
 कथमुच्यते ॥ २०६ ॥ सेत्स्यतीत्येव चेत्तत्स्याच्छ्रवणादि
 भवेत् । मोक्षस्यानित्यतैवं स्याद्विरोधे नान्यथा वचः ॥ २०७ ॥
 श्रोतृश्रोतव्ययोर्भेदो यदीष्टः स्याद्भवेदिदम् । इष्टार्थ
 एवं स्यान्न युक्तं सर्वथा वचः ॥ २०८ ॥ सिद्धो मोक्षोऽज्ञे
 त्येव ज्ञातात्मानं भवेद्यदि । चिकीर्षुर्यः स मूढात्मा शान्तं
 द्वाटयत्यपि ॥ २०९ ॥ नहि सिद्धस्य कर्तव्यं सकार्यत्वं
 सिद्धता । उभयालम्बनं कुर्वन्नात्मानं वञ्चयत्यपि ॥ २१० ॥
 सिद्धो मोक्षस्तमित्येतद्वस्तुमात्रं प्रदर्श्यते । श्रोतुस्तथात्ववि
 प्रवृत्तिः स्यात्कथं त्विति ॥ २११ ॥ कर्ता दुःख्यहमस्मीति प्र
 क्षेणानुभूयते । कर्ता दुःखी च माभूवमिति यत्नो भवेत्
 ॥ २१२ ॥ तद्विज्ञानाय युक्त्यादि कर्तव्यं श्रुतिरब्रवीत् । क
 लाघनुवादेन सिद्धत्वानुभवाय तु ॥ २१३ ॥ निर्दुःखो निर्वि
 योऽकामः सिद्धो मोक्षोऽहमित्यपि । गृहीत्वैव विरुद्धार्थमा
 ध्यात्कथमेव सः ॥ २१४ ॥ सकामः सक्रियः सिद्ध इति
 अनुभवः कथम् । अतो मे विपरीतस्य तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ २१५ ॥

इहैव घटते प्रश्नो न मुक्तत्वानुभूतये । प्रमाणेन विरोधी यः
 सोऽत्रार्थः प्रश्नमर्हति ॥ २१६ ॥ अहं निर्मुक्त इत्येव सदसी-
 त्यन्यमानजः । प्रत्यक्षाभासजन्यत्वाद्दुःखित्वं प्रश्नमर्हति ॥ २१७ ॥
 पृष्टमाकाङ्क्षितं वाच्यं दुःखाभावमभीप्सितम् ॥ २१८ ॥ कथं
 हीदं निवर्तेत दुःखं सर्वात्मना मम । इति प्रश्नानुरूपं यद्वाच्यं
 दुःखनिवर्तकम् ॥ २१९ ॥ श्रुतेः स्वात्मनि नाशङ्का प्रामाण्ये
 सति विद्यते । तस्मादात्मविमुक्तत्वं प्रत्याययति तद्वचः । वक्त-
 व्यं तत्तथार्थं स्याद्विरोधेऽसति केनचित् ॥ २२० ॥ इतोऽन्यो-
 ऽनुभवः कश्चिदात्मनो नोपपद्यते । अविज्ञातं विज्ञानतां विज्ञा-
 तारमिति श्रुतेः ॥ २२१ ॥ त्वंपदार्थविवेकाय संन्यासः सर्व-
 कर्मणाम् । साधनत्वं ब्रजत्येव शान्तोदान्तानुशासनात् ॥ २२२ ॥
 त्वमर्थं प्रत्यगात्मानं पश्येदात्मानमात्मनि । वाक्यार्थं तत्
 आत्मानं सर्वं पश्यति केवलम् ॥ २२३ ॥ सर्वमात्मेति वाक्यार्थे
 विज्ञातेऽस्य प्रमाणतः । असत्त्वे ह्यन्यमानस्य विधिस्तं योजये-
 त्कथम् ॥ २२४ ॥ तस्माद्वाक्यार्थविज्ञानान्नोर्ध्वं कर्मविधिर्भ-
 वेत् । नहि ब्रह्मास्मि कर्तेति विरुद्धे भवतो धियो ॥ २२५ ॥
 ब्रह्मास्मीति च विद्येयं नैव कर्तेति बाध्यते । सकामो बद्ध इत्येवं
 प्रमाणाभासजा तया ॥ २२६ ॥ शास्त्राद्ब्रह्मास्मि नान्योऽहमिति
 बुद्धिर्भवेद्बुद्धा । यदा युक्ता तदैवं धीर्यथा देहात्मधीरिति ॥ २२७ ॥
 सभयादभयं प्राप्तस्तदर्थं यतते च यः । स पुनः सभयं गन्तुं
 स्वतन्त्रश्चेन्न गच्छति ॥ २२८ ॥ यथेष्टाचरणप्राप्तिः संन्यासादिविधौ
 कुतः । पदार्थाज्ञानबुद्धस्य वाक्यार्थानुभवार्थिनः ॥ २२९ ॥
 अतः सर्वमिदं सिद्धं यत्प्रागस्माभिरीरितम् ॥ २३० ॥ यो हि
 यस्माद्विरक्तः स्यान्नासां तस्मै प्रवर्तते । लोकत्रयाद्विरक्तत्वान्मु-

मुक्षुः किमितीहते ॥ २३१ ॥ क्षुधया पीड्यमानोऽपि न ति
 ह्यनुमिच्छति । मृष्टान्नध्वस्तवृद्धं जानन्नामूढस्तज्जिघत्सुः
 ॥ २३२ ॥ वेदान्तवाक्यपुष्पेभ्यो ज्ञानामृतमधूत्तमम् । उज्ज्व
 रालिवद्यो नस्तस्मै सद्गुरवे नमः ॥ २३३ ॥ इत्यष्टादशं तत्त
 मसिप्रकरणम् ॥ १८ ॥

अथात्ममनःसंवादप्रकरणम् ॥ १९ ॥

प्रयुज्य तृष्णाज्वरनाशकारणं चिकित्सितं ज्ञानविरागसं
 जम् । न याति कामज्वरसन्निपातजां शरीरमालां शतयोगपु
 खिताम् ॥ १ ॥ अहं ममेति त्वमनर्थमीहसे परार्थमिच्छन्
 तवान्य ईहितम् । न तेऽर्थबोधो न हि मेऽस्ति चार्थिता तत्त
 युक्तः शम एव ते मनः ॥ २ ॥ यतो न चान्यः परमात्म
 तनात्सदैव तृप्तोऽहमतो न मेऽर्थिता । सदैव तृप्तश्च न कश्चि
 हितं यतस्व चेतः प्रशमाय ते हितम् ॥ ३ ॥ पट्टमिमालाभ्यति
 वृत्त एव यः स एव चात्मा जगतश्च नः श्रुतेः । प्रमाणतया
 मया प्रवेद्यते मुधैव तस्माच्च मनस्तवेहितम् ॥ ४ ॥ त्वयि प्रश
 न्ते नहि चास्ति भेदधीर्यतो जगन्मोहमुपैति मायया । ग्रहो
 मायाप्रभवस्य कारणं ग्रहादिमोके नहि सास्ति कस्यचित् ॥ ५ ॥
 न मेऽस्ति मोहस्तव चेष्टितेन हि प्रयुद्धतत्त्वस्त्वसितो ह्यविधि
 यः । न पूर्वतत्त्वोत्तरभेदता हि नो वृथैव तस्माच्च मनस्तवेहि
 तम् ॥ ६ ॥ यतश्च नित्योऽहमतो न चान्यथा विकारयोगे
 भवेदनित्यता । सदा प्रभातोऽहमतो हि चाद्वयो विकलि
 चाप्यसदित्यवस्थितम् ॥ ७ ॥ अभावरूपं त्वमसीह हे सत्त
 निरीक्ष्यमाणे न हि युक्तितोऽस्तिता । सतो ह्यनाशादसतोऽज
 जन्मतो द्वयं च चेतस्तव नास्तितेप्यते ॥ ८ ॥ द्रष्टा च इति

च तथा च दर्शनं भ्रमस्तु सर्वस्तव कल्पितो हि सः । दृशेच्च
 भिन्नं न हि दृश्यमीक्ष्यते स्वप्नप्रबोधेन तथा न विद्यते ॥९॥
 विकल्पना चापि तथाद्वया भवेदवस्तुयोगात्तदलातचक्रवत् ।
 न शक्तिभेदोऽस्ति यतो न चात्मनां ततोऽद्वयत्वं श्रुतितोऽव-
 सीयते ॥ १० ॥ मिथश्च भिन्ना यदि ते हि चेतनाः क्षयस्तु
 तेषां परिमाणयोगतः । ध्रुवो भवेद्भेदवतां हि दृष्टो जगत्क्षय-
 चापि समस्तमोक्षतः ॥ ११ ॥ न मेऽस्ति कश्चिन्न च सोऽस्मि
 कस्यचिद्यतोऽद्वयोऽहं न हि चास्ति कल्पितम् । अकल्पितश्चास्मि
 पुरा प्रसिद्धितो विकल्पनाया द्वयमेव कल्पितम् ॥ १२ ॥ विक-
 ल्पना चाप्यभवे न विद्यते सदन्यदित्येवमतो न नास्तिता ।
 यतः प्रवृत्ता तव चापि कल्पना पुरा प्रसिद्धेर्न च तद्विकल्पि-
 तम् ॥ १३ ॥ असद्वयं तेऽपि हि यद्यदीक्ष्यते न दृष्टमित्येव न
 चैव नास्तिता । यतः प्रवृत्ता सदसद्विकल्पना विचारवद्वापि
 तथाद्वयं च सत् ॥ १४ ॥ सदभ्युपेतं भवतोपकल्पितं विचा-
 रहेतोर्यदि तस्य नास्तिता । विचारहानाच्च तथैव संस्थितं न
 चेत्तदिष्टं नितरां सदप्यते ॥ १५ ॥ असत्समं चैव सदित्य-
 पीति चेदनर्थवत्त्वान्नरशृङ्गतुल्यतः । अनर्थवत्त्वं त्वसति ह्यका-
 रणं न चैव तस्मान्न विपर्ययेऽन्यथा ॥ १६ ॥ असिद्धतश्चापि
 विचारकारणाद्वयं च तस्मात्प्रसृतिं च मायया । श्रुतेः स्मृते-
 चापि तथा हि युक्तितः प्रसिद्धतीत्यं न तु युज्यतेऽन्यथा
 ॥ १७ ॥ विकल्पनाच्चापि विधर्मकं श्रुतेः पुरा प्रसिद्धेच्च विक-
 ल्पतोऽद्वयः । न चेति नेतीति यथा विकल्पितं निषिध्यतेऽत्रा-
 प्यवशेषसिद्धये ॥ १८ ॥ अकल्पितेऽप्येवमजेऽद्वयेऽक्षरे विक-
 ल्पयन्तः सदसच्च जन्मभिः । स्वचित्तमायाप्रभवं च ते भवं

जरां च मृत्युं च नियान्ति संततम् ॥ १९ ॥ भवाभवत्वं तु
चेदवस्थितिर्न चास्य चान्यस्थितिजन्म नान्यथा । सतो ह्य
त्वादसतश्च सत्त्वतो न च क्रियाकारकमित्यतोऽप्यजम् ॥ २० ॥
अकुर्वदिष्टं यदि वास्य कारकं न किञ्चिदन्यन्ननु नास्त्य
कम् । सतो विशेषादसतश्च सञ्च्युतौ तुलां तयोर्यद्वदनिश्च
हि ॥ २१ ॥ न चेत्स इष्टः सदसद्विपर्ययः कथं भवः स्यात्
सद्व्यवस्थितौ । विभक्तमेतद्वयमप्यवस्थितं न जन्म तस्माच्च न
हि कस्यचित् ॥ २२ ॥ अथाभ्युपेत्यापि भवं तवेच्छतो ब्रह्म
नार्थस्तव चेष्टितेन मे । न हानवृद्धी न यतः स्वतोऽसतो
ऽन्यतो वा यदि वास्तिता तयोः ॥ २३ ॥ ध्रुवा ह्यनित्याव
चान्ययोगिनो मिथश्च कार्यं न च तेषु युज्यते । अतो न कस्त
हि किञ्चिदिष्यते स्वयं च तत्त्वं न निरुक्तिगोचरम् ॥ २४ ॥
समं तु तस्मात्सततं विभातवद्भयादिमुक्तं सदसद्विकल्पित
निरीक्ष्य युक्त्या श्रुतितस्तु बुद्धिमानशेषनिर्वाणमुपैति दीप
॥ २५ ॥ अवेद्यमेकं यदनन्यवेदिनां कुतार्किकाणां च सुवे
दन्यथा । निरीक्ष्य चेत्थं त्वगुणग्रहोऽगुणं न याति मोहं
दोषमुक्तिः ॥ २६ ॥ अतोऽन्यथा न ग्रहनाश इष्यते वि
हवुद्धेर्ग्रह एव कारणम् । ग्रहोऽप्यहेतुस्त्वनलस्त्वनिन्धनो
प्रशान्तिं परमां तथा व्रजेत् ॥ २७ ॥ विमध्य वेदोदधि
समुद्धृतं सुरैर्महाब्धेस्तु यथा महात्मभिः ॥ तथाऽमृतं ज्ञान
मिदं हि यैः पुरा नमो गुरुभ्यः परमीक्षितं च यैः ॥ २८ ॥
इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीगोविन्दभगवत्पूज्यनि
प्यस्य श्रीशंकरभगवतः कृतिः सकलवेदोपनिषत्सारोपदेश
हस्ती समाप्ता ॥

तोडकाचार्यविरचितं

श्रुतिसारसमुद्धरणम् ॥ ३४ ॥

ॐ परमात्मने नमः । त्रैलोक्यनाथहरिमीड्यमुदारसत्त्वं
 शक्तेस्तनूजतनयं परमेष्ठिकल्पम् । जीमूतमुक्तविमलाम्बरचारुवर्णं
 वासिष्ठमुग्रतपसं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥ १ ॥ सकलं मनसा
 क्रियया जनितं समवेक्ष्य विनाशितया तु जगत् । निरविद्यत
 कश्चिदतो निखिलादविनाशिकृतेन न लभ्यमिति ॥ २ ॥
 प्रतिपित्सुरसावविनाशिपदं यतिधर्मरतो यतिमेव गुरुम् ।
 विदितात्मसतत्वमुपेत्य कविं प्रणिपत्य निवेदितवान्स्वमतम्
 ॥ ३ ॥ भगवद्बुद्धौ मृतिजन्मजले सुखदुःखझपे पतितं
 व्यथितम् । कृपया शरणागतमुद्धर मामनुशाध्युपसन्नमनन्य-
 गतिम् ॥ ४ ॥ विनिवर्त्य रतिं विषये विपमां परिमुच्य
 शरीरनिबद्धमतिम् । परमात्मपदे भव नित्यरतो जहि मोहमयं
 भ्रममात्ममतेः ॥ ५ ॥ विसृजान्नमयादिषु पञ्चसु तामहमस्मि
 ममेति मतिं सततम् । दृशिरूपमनन्तमृतं विगुणं हृदयस्थम-
 वेहि सदाहमिति ॥ ६ ॥ जलभेदकृता बहुतेव रवेर्घटिकादि-
 कृता नभसोऽपि यथा । मतिभेदकृता तु तथा बहुता तव बु-
 द्धिदृशोऽविकृतस्य सदा ॥ ७ ॥ दिनकृत्प्रभया सदृशेन सदा
 जनचित्तरतं सकलं स्वचिता । विदितं भवताऽविकृतेन सदा
 यत एवमतोऽसि स एव सदा ॥ ८ ॥ उपरागमपेक्ष्य मतिर्वि-
 पयैर्विषयावधृतिं कुरुते तु यतः । तत एव मतेर्विदिता विदिता
 विषयास्तु ततः परिणामवती ॥ ९ ॥ मतिवृत्तय आत्मचिता
 विदिताः सततं हि यतोऽविकृतस्तु ततः । यदि चात्मचित्तिः
 परिणामवती मतयो विदिता विदिताः स्युरिमाः ॥ १० ॥

चरितं तु धियः सकलं सततं विदितं भवता परिशुद्धचित्त
 मतिभेदगुणो नहि तेऽस्ति ततो यत एवमतोऽसदृशस्तु वि
 ॥ ११ ॥ विदितत्वमविप्रतिपन्नतया मतिषु प्रगतं विप
 यथा । यत एवमतः परसंविदिता विदितत्वत एव यथा वि
 याः ॥ १२ ॥ परसंविदिताः सततं हि यतो न विदुः स्व
 विपयास्तु ततः । मतयोऽपि तथा परसंविदिता न विदुः स्व
 मूर्तिविपयास्तु यथा ॥ १३ ॥ विपयाकृतिसंस्थितिरेकविधा
 सस्तु सदा व्यवहारविधौ । अहमित्यपि तद्विपया त्वज्जरा
 वृत्तिरवज्जलितात्मचिता ॥ १४ ॥ पुरुषस्य तु धर्मवदुक्त
 स्वरसेन मतेः स्वगुणोपि यतः । अत आत्मगुणं प्रतिप
 जना मतिवृत्तिमिमामहमित्यनुधाः ॥ १५ ॥ यदि सा
 भवेजनमोहकरी व्यवहारमिमं न जनोनुभवेत् । विफलम
 विपयानुभवो ज्ञगुणो नहि सेति यदा विदिता ॥ १६ ॥ ज
 लभ्य घटादिनिर्भवे भवेन्मनसो यदि संस्थितिरेकविधा । पु
 पस्य चित्तिश्च न विक्रियते मतिवृत्तिमपेक्ष्य घटादिनिर्भ
 ॥ १७ ॥ अवगन्त्रवगम्यचिदात्मधियोरहमित्यभिमानवि
 नतया । स्थितयोरभिमानपुरःसरकं व्यवहारपथं न जनोनु
 रेत् ॥ १८ ॥ अहमीक्ष इति प्रथमं हि धिया सुविचि
 ततो विपयाभिमुखम् । नयनं ग्रहिणोति तथान्यदपि भव
 दिधियत्प्रमुखस्य गुणे ॥ १९ ॥ अपहाय न कश्चिदहंक
 व्यवहारमुपैति कदाचिदपि । उपपन्नतरा हि मतेस्तु
 व्यवहारपथं प्रति कारणता ॥ २० ॥ चित्तिशक्तिगुणः किम
 करणं किमु बुद्धिगुणोऽथ भवेदुभयोः । इति चिन्त्यमिदं मन
 नलसैरुपपत्तिभिरात्महितं यतिभिः ॥ २१ ॥ उपलभ्यमानं

रणं न भवेत्पुरुषस्य गुणो यदि तर्हि भवेत् । गुणिरूपमथा-
वयवं गुणिनो न विहाय गुणः पृथगस्ति यतः ॥ २२ ॥ न
गुणो गुणिनि स्थितवान् गुणिना विपयी क्रियते न च तस्य
गुणैः । नहि देशकृता नच वस्तुकृता गुणिनोस्ति गुणस्य भिदा
तु यतः ॥ २३ ॥ न परस्परमग्निगुणोऽग्निगतो विपयत्वमुपैति
कदाचिदपि । नहि वह्निरपि स्वगुणं स्वगतं विपयीकुरुते स्वगु-
णेन भुवि ॥ २४ ॥ कणभृग्यमचीकृपदात्मगुणं गुणपूगमनि-
त्यमनात्मगुणम् । अनयैव दिशा स निराक्रियतां न हि नित्य-
मनित्यगुणेन गुणिं ॥ २५ ॥ वियतः प्रभवं प्रवदन्ति यतः
श्रुतयो बहुशः खमनित्यमतः । उपमानमनित्यगुणं वियतो न
हि नित्यमिहास्ति कणादकृते ॥ २६ ॥ मनसा पुरुषः पुरुषेण
मनो नभसा मुसलं मुसलेन नभः । नहि योगवियोगमुपैति
कुतोऽयवित्वनिराकरणादमुतः ॥ २७ ॥ इह रज्जुघटादि हि
सावयवं समुपैति युजामितरेतरतः । इति दृष्टमतोन्यददृष्टमपि
स्वयमूह्यमिदं न परित्यजता ॥ २८ ॥ न हि सावयवं विगता-
वयवैर्विगतावयवं च न सावयवैः । उपयाति युजामिति दृष्ट-
मिदं यत एवमतः स्थितमुक्तमदः ॥ २९ ॥ न हि कल्पित-
भागसमागमनं विगतावयवस्य घटेत कुतः । वितथत्वमतिः
सुदृढा तु यतः परिकल्पितवस्तुषु नित्यमतः ॥ ३० ॥ इह
वेदशिरस्सु तदर्थविदः प्रवदन्ति समस्तजगत्प्रकृतिम् । परमा-
त्मपदं दृशि मात्रवपुर्ध्रुवमेकमतोन्यदनित्यमिति ॥ ३१ ॥ अत
एव न किञ्चिदुदाहरणं ध्रुवमस्ति परस्य विनाशिगुणम् । यत
एवमतः स्थितमुक्तमदो न हि नित्यमनित्यगुणेन गुणि ॥ ३२ ॥
उपलभ्यमहं करणं भवितुं क्षमते दृशिरूपगुणो न यतः । विप-

याकृतिरंजितधीगुणवद्विषयत्वमहं करणस्य ततः ॥ ३३ ॥
 विषयप्रकृतिं प्रतिपन्नवर्ती मतिवृत्तिमहंकरणं च मतेः । ३४ ॥
 परिपश्यति योऽविकृतः परमात्मसदुक्तिरसौ पुरुषः ॥ ३५ ॥
 ननु देहभृदेऽपि कथं भवताऽभिहितः परमात्मसदुक्तिरिति
 न विरुद्धमवादिष्येतेतमहं श्रुतिरप्यमुमर्थमुवाच यतः ॥ ३६ ॥
 अमृतं न मतेरमतस्तदिदं यदऽमुत्र तदेव तु कश्चिदिति । ३७ ॥
 प्रतिपादितमस्य दृशेः परमात्मपदत्वममूषु भृशम् ॥ ३८ ॥
 नभ्युदितं वदनेन सदा नयने नच पश्यति यन्न सदा । ३९ ॥
 णेन च यन्न शृणोति सदा मनसापि च यन्मनुते न ॥ ४० ॥
 ॥ ३७ ॥ वदनं नयनं च तथा श्रवणं मन एव च येन
 सततम् । अवगच्छ तदेव पदं परमं त्वमिति श्रुतिरीक्षितु
 वती ॥ ३९ ॥ परमात्मपदत्वं इयं च मया श्रुतिरल्पकणे
 रिहाभिहिता । अणिमादिगुणं सदिति प्रकृतं तदसि त्व
 श्रुतिरभ्यवदत् ॥ ३९ ॥ नभसोवयवो विकृतिश्च यथा
 कादि नभो न भवेत्तु तथा । परमात्मन एव न चावयवो
 तिश्च शरीरभृदित्यमृषा ॥ ४० ॥ करकादिनिमित्तकमेव
 करकाम्बरनाम भवेद्वियतः । परमात्मदृशेरपि नाम तथा
 हेतुकमेव तु जीव इति ॥ ४१ ॥ जनितं वियदग्रणि येन
 त्परमात्मसदक्षरनामभृता । प्रविवेश स एव जगत्स्वकृतं त्व
 वेह घटं घटसृष्टिमनु ॥ ४२ ॥ उदपद्यत खग्रमुखं हि
 त्परमात्मन इत्यपि याः श्रुतयः । अवधार्यत आभिरभेद
 परमात्मसतत्वसमर्पणतः ॥ ४३ ॥ यदि सृष्टिविधानपरं व
 फलशून्यमनर्थकमेव भवेत् । जगदित्यमजायत धातुरिति त
 पुरुषस्य फलाय नहि ॥ ४४ ॥ अनुत्तलमवाचसकृद्विज्ञे

रधारि सदेव तु सत्यमिति । श्रुतिभिर्वहुधैतदतोवगतं जगतो
 नहि जन्मविधेयमिति ॥ ४५ ॥ न च तत्त्वमसीत्यसकृद्वचनं
 जगतो जनिमात्रविधौ घटते । परमात्मपदानुमतिं तु यदा
 जनयेत्पुरुषस्य तदा घटते ॥ ४६ ॥ स्थिरजंगमदेहधियां चरितं
 परिपश्यति योऽविकृतः पुरुषः । परमात्मसदुक्तिरसाविति यत्फ-
 णितं तदधिष्ठितमित्थमहम् ॥ ४७ ॥ पृथगेव यदाक्षरतो
 मतिविन्नकरोदकवन्न घटाम्बरवत् । निवरोत्स्यति तत्त्वमसीति
 तदा वचनं कथमेव त इत्यपि च ॥ ४८ ॥ नतु वस्तु सतत्व-
 विबोधनकृद्भिनिवर्तयदप्रतिबोधमिदम् । सदुपासनकर्मविधा-
 नपरं यत एव मतो न विरोत्स्यति मे ॥ ४९ ॥ मनआदिषु
 कारणदृष्टिविधिः प्रतिमासु च देवधियां करणम् । स्वमतिमन-
 पोह्य यथा तु तथा त्वमसीह सदात्ममतिर्वचनात् ॥ ५० ॥
 अथवा त्वमिति ध्वनिवाच्यमिदं सदसीति वदेद्वचनं गुणतः ।
 विभयं पुरुषं प्रवदन्ति यथा मृगराडयमीश्वरगुप्त इति ॥ ५१ ॥
 यदि वा स्तुतये सदसीति वदेन्मघवानसि विष्णुरसीति यथा ।
 त्वमिति श्रुतिवाच्यसतत्वकृतामथवा सत एव वदेद्वचनम् ॥ ५२ ॥
 यदि तत्त्वमिति ध्वनिनाभिहितः परमात्मसतत्वक एव सदा ।
 किमिति स्वकमेव न रूपमवेत्प्रतिबोध्यत एव यतो वचनैः
 ॥ ५३ ॥ अतएव हि जीवसदात्मकतां नहि तत्त्वमसीति
 वदेद्वचनम् । यदपीदृशमन्यदतो वचनं तदपि प्रथयेदनयैव
 दिशा ॥ ५४ ॥ तदुदाहृतवाक्यविलक्षणता वचनस्य हि तत्त्व-
 मसीति यतः । अतएव न दृष्टिविधानपरं सत एव सदात्मक-
 तागमकम् ॥ ५५ ॥ इति शब्दशिरस्कपदोक्तमतिविहिता म-
 नआदिषु तैर्वचनैः । न विधानमिहास्ति तथा वचने सुविलक्ष-

णमेतदतो वचनात् ॥ ५६ ॥ मनसो वियतः सविद्यः
 प्रवदन्ति यतोऽक्षरदृष्टियुतम् ॥ ५७ ॥ करको न मृदः
 गस्ति यथा मनआदिसतोस्ति तथा न पृथक् । इति वस्तु-
 लकता तु यदा विधिशब्द इतिश्च तदा तु वृथा ॥ ५८ ॥
 मनआदिसमानविभक्तितया विधिशब्दमिति च विहाय
 जनकेन सता सहयोगमियादनृतं तदिति स्फुटमुक्तमभूत् ॥
 ननु जीवसतोरपि तत्त्वमिति स्फुटमेकविभक्त्यभिधानमिति
 कथमस्य शरीरभृतोऽनृतता न भवेदविभक्तविभक्तियुज-
 प्रकृतेरभिधानपदेन यथा विकृतेरभिधानमुपैति युजाम् ।
 तत्त्वमतिस्तु तदा विकृतौ मृदयं घट इत्यभिधासु यथा ॥
 विकृतित्वमवादि मनःप्रभृतेर्बहुशः श्रुतिषु प्रकृतेस्तु सतः ।
 एव समानविभक्तितया मनआदि सुवेद्यमसत्यमिति ॥
 जनितत्वमवादि नहि श्रुतिभिर्जनकेन सतास्य शरीर-
 मनआदिविकारविलक्षणतां प्रतियन्ति शरीरभृतस्तु
 ॥ ६३ ॥ यदजीजनदम्बरपूर्वमिदं जगदक्षरमीक्षणविग्रह-
 प्रविवेश तदेव जगत्स्वकृतं स च जीवसमाख्य इति
 ॥ ६४ ॥ परमात्मविकारविभक्तमतिर्न भवत्यत एव
 भृतः । यत एव विकारविभिन्नमतिर्न भवत्यत एव मृपात्-
 ॥ ६५ ॥ अविभक्तविभक्त्यभिधानकृता परमात्मपदेन
 भृतः । न भवेदिह तत्त्वमसिप्रभृतौ लवणं जलमित्यभि-
 यथा ॥ ६६ ॥ परमात्मविकारनिराकरणं कृतमस्य शरी-
 तस्तु यतः । परमेश्वररूपविलक्षणता न मनागपि देहवृत्त-
 ततः ॥ ६७ ॥ ननु जीवसतोरणुमात्रमपि स्वगतं न वि-
 मस्ति यदा । वद तत्त्वमसीति तदा वचनं किमु वक्ति तदा

इत्यपि च ॥ ६८ ॥ स्वगतं यदि भेदकमिष्टमभूदणुमात्रमपी-
 श्वरदेहभृतोः । अपनेतुमशक्यमदोवचनैरमुनास्य पृथक्त्वनिपे-
 धपरैः ॥ ६९ ॥ इह यस्य च यो गुण आत्मगतः स्वत एव न
 जातु भवेत्परतः । वचनेन न तस्य निराकरणं क्रियते स गुणः
 सहजस्तु यतः ॥ ७० ॥ वचनं त्ववबोधकमेव यतस्तत एव न
 वस्तुविपर्ययकृत् । न हि वस्तुपि शब्दवशात्प्रकृतिं प्रजहात्य-
 नवस्थितिदोषभयात् ॥ ७१ ॥ यत एवमतो विषयस्य गुणं
 विषयेण सहात्मनि मूढधिया । अधिरोपितमप्स्विव भूमिगुणं
 प्रतिपेधति तत्त्वमसीति वचः ॥ ७२ ॥ अत एव न दृष्टिवि-
 धानपरं गुणवादपरं च न तद्वचनम् । स्तुतिवाद्यपि नैतदुपास्य-
 तया विधिरत्र न देहभृतोस्ति यतः ॥ ७३ ॥ सत एव हि
 नाम जगत्प्रकृतेरुपधानवशादिह जीव इति । अतएव न जीव-
 सतत्वकतां प्रकृतस्य सतः प्रतिपादयति ॥ ७४ ॥ यदि जीव-
 सतत्वकतां गमयेदणिमादिगुणस्य जगत्प्रकृतेः । अणिमादिगु-
 णोक्तिरतोऽस्य मृषा यदि वास्य शरीरभृदात्मकता ॥ ७५ ॥ न
 च संसृतिहेतुनिराकरणं कृतमस्य शरीरभृतोभिमतम् । परमे-
 श्वरमात्मतया ब्रुवता वचनेन च तत्त्वमसीत्यमुना ॥ ७६ ॥
 त्वमसीति पदद्वयमेति युजां तदिति ध्वनिना सह तत्त्वमिति ।
 क्रियया सह नाम पदं समियान्निरपेक्ष्यमुपैत्यनया हि युजाम्
 ॥ ७७ ॥ न हि नामसहस्रमपि क्रियया रहितं किमपि प्रति-
 पादयति । प्रतिपादकमेषु लिङ्गादि भवेद्विहितादिमतेर्जनकं हि
 यतः ॥ ७८ ॥ भगवानपि मध्यममेव यतो विनियच्छति
 शुष्मदि नित्यमतः । प्रथमं त्वमसीति पदे समितश्चरमं त्वसि-
 ना समियात्तदिति ॥ ७९ ॥ पुरुषोभिहितस्त्वमसीति यदा कि-

मसानि वदेति तदाभिमुखः । श्रवणाय भवेदणिमादि-
 सदिति प्रकृतं तदसीति वदेत् ॥ ८० ॥ त्वमिति ध्वनिवा-
 हितस्य यतस्तदिति श्रुतिवाच्यसदात्मकताम् । अवदद्वचनं
 एव सतो नहि जीवसतत्वकतां वदति ॥ ८१ ॥ विपर्या-
 खानि शरीरभृतः स्वरसेन सदा करणानि यतः । स्वकर्म-
 रूपमवैति ततः प्रतिबोध्यत एव ततो वचनैः ॥ ८२ ॥
 च परां चि पुरःसरकं बहुवैदिकमत्र तथा स्मरणम् । किं
 च नावमिवांभसि यन्मनसंद्रियरश्मिविनिग्रहवत् ॥ ८३ ॥
 हि न देहभृतोस्ति भिदा परमात्मदृशेरिति वाच्यमिदम् ।
 तिकाल इहापि च सृष्टिमुखे सदनन्यतया श्रुत एव यतः ॥
 द्वयमप्यविरोधि शरीरभृतो वचनीयमिदं रघुनंदनवत् ।
 शमपेक्ष्य सदात्ममतिः परमात्मसतत्वकता च सदा ॥ ८४ ॥
 सदुपासनमस्य विधेयतया वचनस्य मम प्रतिभाति यतः ।
 एव न जीवसदात्मकतां प्रतिबोधयतीत्यवदत्तदसत् ॥ ८५ ॥
 सदुपास्य इति श्रुतिरत्र न ते तदसि त्वमिति श्रुतिरेवमिति
 यत एव सतो न विधित्सितता सदुपासनकर्मण इत्यमृषा ॥
 यदि तस्य कृतश्चिदिहानयनं क्रियते तदनर्थकमेव भवेत् ।
 पेण कृतस्य यतः श्रुतिता न भवेदिति वेदविदां स्मरणम् ॥
 किमरे पुरुषं प्रतिबोधयितुं स्वकर्ममशक्तमिदं वचनम् ।
 तोन्यत आनयनं क्रियते भवता श्रवणेन विनापि विधेः ॥
 श्रुतहानिरिहाश्रुतकृत्स्निरपि श्रुतिवित्समयो न भवेत् ।
 श्रुतिभक्तिमता श्रुतिवक्त्रगतं ग्रहणीयमतो न तु बुद्धि-
 ॥ ९० ॥ पुरुषस्य शरीरगतात्ममतिं मृतिसंभवहेतुना
 करीम् । अपनीय सदात्ममतिं दधती महते पुरुषस्य

भवेत् ॥ ९१ ॥ विनिवर्त्तत एव शरीरगता विपरीतमतिः
 पुरुषस्य तदा । वचनेन तु तत्त्वमसीति यदा प्रतिबोध्यत एष
 त इत्यपि च ॥ ९२ ॥ यदि नापनयेच्छ्रुतिरात्ममतिं पुरुषस्य
 शरीरगतामनृताम् । तदहंमतिहेतुककर्मगतिं सुखदुःखफलाम-
 वशोनुभवेत् ॥ ९३ ॥ यदि तत्त्वमसीति वदेद्वचनं सदुपास-
 नकर्म न तत्त्वमिति । पुरुषस्य फलं सदुपासनतो विमृशामि
 भविष्यति कीदृगिति ॥ ९४ ॥ पुरुषस्य तु मर्त्यगुणस्य भवेत्स-
 दुपासनया न सदात्मकता । न कथंचिदपि प्रजहाति यतः
 प्रकृतिं सहजामिह कश्चिदपि ॥ ९५ ॥ यदि देहभृदेप सदा-
 त्मकतां प्रगमिष्यति वै सदुपासनया । न जहास्यति रूपमसौ
 हि निजं यत ऐक्यमतिर्न भवत्युभयोः ॥ ९६ ॥ रसविद्धमयः
 प्रकृतिं सहजां प्रविहाय यथा कनकत्वमियात् । पुरुषोपि तथा
 सदुपासनया प्रतिपत्स्यत एव सदात्मकताम् ॥ ९७ ॥ अयसो-
 वयवानभिभूय रसः स्थितवाननलानुगृहीतिमनु । कनकत्वमतिं
 जनयत्ययसि प्रतिपन्नमयो न तु कांचनताम् ॥ ९८ ॥ उदका-
 वयवानभिभूय पयो रजतावयवांश्च यथा कनकम् । विपरीत-
 मतिं जनयत्युदके रजते च तथायसि हेममतिम् ॥ ९९ ॥ रस-
 वीर्यविपाकविनाशमनु प्रविनश्यति कांचनताप्ययसः । कृतकं
 हि न नित्यमिति प्रगतं समवेतमवश्यमपैति यतः ॥ १०० ॥
 अमृतत्वमसत्पुरुषस्य यदि क्रियते सदुपासनया यजिवत् ।
 यजिकार्यवदन्तवदेव भवेत्कृतकस्य यतो विदिताऽध्रुवता ॥ १ ॥
 पुरुषस्य सतश्च विधर्मकयोः सदुपासनया न भवेत्समितिः ।
 यदि संगतिरिष्यत एव तयोरवियुक्ततया न चिरं वसतः ॥ २ ॥
 फलमीदृगिदं सदुपासनतः पुरुषस्य भविष्यति नान्यदतः । न

च तन्निरवद्यतयाभिमतं विदुषां बहुदोषसमीक्षणतः ॥ ३ ॥
 सदुपासनकर्मविधानपरं न भवेदत एव हि तद्वचनम् । अहम्
 शरीरमिदं च ममेत्यविवेकमतिं विनिवर्त्तयति ॥ ४ ॥ सत्त्व
 पनिपत्सु शरीरभृतः परमात्मपदैकविभक्तितया । उपदेशवत्
 स्वनयैव दिशा गमयेन्मतिमानभियुक्ततया ॥ ५ ॥ द्रविणं
 च तत्त्वमसीति वचो विनिवर्त्तकमेव निरूपितवान् । शब्दं
 विवर्द्धितराजशिशोर्निजजन्मविदुक्तिनिदर्शनतः ॥ ६ ॥
 एवमतः स्वशरीरगतामहमित्यविवेकमतिं सुदृढाम् । प्रविष्टा
 यदक्षरमद्वयकं त्वमेवेहि तदक्षरमात्मतया ॥ ७ ॥ न मत्वे
 मतिः करणानि च नो न रजो न तमो न च सत्त्वमपि ।
 मही न जलं न च वह्निरपि श्वसनो न नभश्च पदं पद्मं
 ॥ ८ ॥ अमनस्कमधीकमनिन्द्रियकं विरजस्कमसत्त्वतमस्कम
 अमहीजलवह्न्यनिलाम्बरकं परमक्षरमात्मतया श्रय भोः ॥ ९ ॥
 करणानि हि यद्विषयाभिमुखं प्रगमय्य मतिर्विषयेषु चेत
 तदु जागरितं प्रवदन्ति बुधा न तदास्ति ममेत्यवगच्छ
 ॥ १० ॥ करणानि यदोपरतानि तदा विषयानुभवाहितवत्
 नया । विषयेण विना विषयप्रतिमं स्फुरणं स्वपनं प्रवदन्ति
 बुधाः ॥ ११ ॥ करणस्य धियः स्फुरणेन विना विषयाद्वि
 केन तु या स्थितता । प्रवदन्ति सुषुप्तिमग्नं हि बुधा विनिवृ
 त्तपः श्रुतितत्त्वविदः ॥ १२ ॥ इति जागरितं स्वपनं च वि
 क्रमतोऽक्रमतश्च सुषुप्तिरपि । न कदाचिदपि त्रयमस्ति ममेत
 वगच्छ सदास्ति तुरीयमिति ॥ १३ ॥ यदुजागरितप्रभृतिवि
 तयं परिकल्पितमात्मनि मूढधिया । अभिधानमिदं तदपेक्ष
 भवेत्परमात्मपदस्य तुरीयमिति ॥ १४ ॥ तदसत्यमसत्यगुणवत्

परिनिर्मितवारणचेष्टितवत् ॥ १५ ॥ गगनप्रमुखं पृथिवीचरमं
 विषयेन्द्रियबुद्धिमनःसहितम् । जनिमज्जगदेतदभूतमिति श्रु-
 तयः प्रवदंत्युपमानशतैः ॥ १६ ॥ कफपित्तसमीरणधातुधृतं
 कुशरीरमिदं सततं हि यथा । प्रभवप्रभृतिप्रलयान्तमिदं जगद-
 ग्निरवीन्दुधृतं हि तथा ॥ १७ ॥ जगतः स्थितिकारणमित्थमिदं
 प्रथितं रविवह्निशशित्रितयम् । स्मृतिवेदजनेषु भृशं प्रथितं
 श्रुतिरीरितवत्यनृतं तदिति ॥ १८ ॥ यदु रोहितशुक्रसुकृष्ण-
 मिदं ज्वलनादिषु रूपमवैति जनः । तदु तैजसमाप्यमथान्न-
 मिति ब्रुवती त्रयमेव तु सत्यमिति ॥ १९ ॥ रुचकप्रमुखं क-
 नकादिमयं रुचकाद्यभिधाननिमित्तमपि । असदित्यवगम्यत
 एव यतो व्यभिचारवती रुचकादिमतिः ॥ २० ॥ न कदा-
 चिदपि व्यभिचारवती कनकादिमतिः पुरुषस्य यतः । तत
 एव हि सत्यतयाभिमतं कनकादिविपर्यय एषु नहि ॥ २१ ॥
 रुचकादिसमं ज्वलनादि भवेदनृतत्वगुणे न तु सत्यतया ।
 अरुणप्रमुखं ज्वलनप्रभृति प्रकृतित्रितयं कनकादिसमम् ॥ २२ ॥
 अनयोपमयानृततामवदच्छ्रुतिरग्निदिवाकरचन्द्रमसाम् । अमृषा
 त्वमपि श्रुतिरुक्तवती त्रितयस्य तु रक्तपुरस्सरिणः ॥ २३ ॥
 अनृतत्वमिदं ज्वलनप्रभृतेर्यदवादि भवेत्तदुदाहरणम् । वितथा
 विकृतिः सततं सकला न तथा प्रकृतिः श्रुतिनिश्चयतः ॥ २४ ॥
 अदिदर्शयिषुर्वसनस्य यथा वितथत्वमपास्यति तन्तुगुणम् । अ-
 पकृष्य तु तन्तुसमं त्रितयं ज्वलनप्रमुखस्य तथोक्तवती ॥ २५ ॥
 अवनिप्रमुखं वियदंतमिदं विकृतिस्तु परस्य भवत्यपरम् । अनृतं
 त्वपरं विकृतिस्तु यतोऽवितथं तु परं प्रकृतिस्तु यतः ॥ २६ ॥
 अत एतदसेधि सदुक्तिपरं न मृषेति मृषा तु ततोऽन्यदिति । इति

सिद्धमतो यदवादि मया जनिमज्जगदेतदभूतमिति ॥ २७ ॥
 मनसोप्यनृतत्वमसेध्यमुतः प्रतिपादितहेतुत एव भवेत् । चीति
 च तदीयमसत्यमतः परिनिर्मितवारणचेष्टितवत् ॥ २८ ॥ इ
 नाभ्यवदच्छुतिरुद्भवनं मनसस्तु सतो न च खप्रमुखा
 कथमस्य भवेदनृतत्वगतिर्मनसो भगवन्वद निश्चयतः ॥ २९ ॥
 ननु सप्तम आत्मन उद्भवनं मनसोभिदधावसुनापि सह
 कथमस्य भवेदमृपालगतिर्मनसोविकृतित्वगुणस्य वद ॥ ३० ॥
 असुना करणैर्गगनप्रमुखैः सह मुण्डक उद्भवनं मनसः । पु
 पात्परमात्मन उक्तमतो वितथं मन इत्यवधारय भोः ॥ ३१ ॥
 मनसोन्नमयत्वमवादि यतस्तत एव हि भूतमयत्वगतिः । कु
 रीरवदेव ततोपि भृशं वितथं मन इत्यवधारय भोः ॥ ३२ ॥
 कुरु पक्षमिमं गगनप्रमुखं जनिमत्सकलं न हि सत्यमिति ।
 प्रथमं चरमं च न चास्ति यतो रुचकादिवदित्युपमां च वद
 ॥ ३३ ॥ कनके रुचकादि न पूर्वमभूच्चरमं च न विद्यत इत्
 नृतम् । अधुनापि तथैव समस्तमिदं जनिमद्वियदादि भवेद
 तत् ॥ ३४ ॥ कनकादिषु यद्युपजातमभूद्बुचकप्रमुखं पृथगेव
 ततः । अधिकं परिमाणममीषु कुतो न भवेदिति वाच्यमवस्त
 मिदम् ॥ ३५ ॥ कनकप्रभृतेर्व्यतिरिक्तमतो रुचकादि न विद्यत
 एव कुतः । पृथगग्रहणात्कनकप्रभृतेरिति कारणमेव सदन्वद
 सत् ॥ ३६ ॥ ननु नाम पृथग्विकृतेः प्रकृतेरथ रूपमथापि च
 कार्यमतः । कथमव्यतिरिक्ततयावगमः प्रकृतेर्विकृतेरिति वा
 च्यमिदम् ॥ ३७ ॥ इह वीरणतन्तुसुवर्णमृदः कटशाटकहार
 घटाकृतयः । उपलब्धजनैरुपलब्धमतो न भिदास्ति ततः प्रकृ
 तेर्विकृतेः ॥ ३८ ॥ विकृतिर्यदि नास्ति पृथक्प्रकृतेर्न घट

भिदाप्यभिदा प्रकृतेः । इति धीर्विफला तव येन जनैर्विविदे न
यनेन मृदाद्यभिदा ॥ ३९ ॥ ननु रूपमथो अपि कार्यमथो
अभिधापि नटस्य पृथग्विदिता । न पृथक्त्वमुपैति नटः किमिति
प्रतिवाच्यमवश्यमिदं कुशलैः ॥ ४० ॥ असतो न कथंचन
जन्म भवेत्तदसत्त्वत एव खपुष्पमिव । न सतोऽस्ति भवः पुर-
तोपि भवाद्यत आत्मवदेव सद्विष्टमिति ॥ ४१ ॥ कपिलासुरिपं-
चशिखादिमतं परिगृह्य वदेद्यदि कश्चिदिदम् । न कदाचन
जन्म वदामि सतः प्रवदामि तु यच्छृणु तत्त्वमपि ॥ ४२ ॥
प्रकृताववशिष्टतया यदभूदधुना तु तदेव विशेषयुतम् । निरव-
द्यमिदं प्रतिभाति मम प्रवदात्र विरोधमवैपि यदि ॥ ४३ ॥
सदयुज्यत येन गुणेन पुरा प्रकृतौ स इहास्ति न वेति वद ।
यदि विद्यत एव पुरा प्रकृतावधुनापि विशेषयुतत्वमसत् ॥ ४४ ॥
यदि नास्ति पुरा स गुणः प्रकृतावसदुद्भवः भवतोभिमतम् ।
जननेन च सत्त्वमुपात्तवतो जनिमत्त्वत एव विनष्टिरपि ॥ ४५ ॥
भवतोभिमतं परिहर्तुमिदं न कथंचन शक्यत इत्यमुतः । क-
णभक्ष्यमतेन समत्वमिदं भवतोभिमतं शनकैरगमत् ॥ ४६ ॥
असतो भवनं नशनं च सतः कणभोजिमतं विदितं कविभिः ।
उपपत्तिविरुद्धतया सुभृशं तदभाणि मयापि विरुद्धतया ॥ ४७ ॥
प्रतिपिद्धमिदं कणभोजिमतं हरिणापि समस्तगुरोर्गुण्णा ।
वचनेन तु नासत् इत्यमुना श्रुता च पृथातनयाय हितम् ॥ ४८ ॥
असत्तश्च सत्तश्च न जन्म भवेदिति पूर्वमवाद्युपपत्तियुतम् । सदसच्च
न जायत एव कुतो न हि वस्तु तथाविधमस्ति यतः ॥ ४९ ॥
सदसत्त्वमतीत्य मनःप्रभृतेर्न कथंचन वृत्तिरिहास्ति यतः ।
तत एव मनःप्रमुखस्य भवो न भवेदिति सर्वसुवेद्यमिति ।

॥ ५० ॥ यदि नाम कथंचिदमुष्य भवः सदसत्त्वमेष
 भविष्यति वः । अमृपात्मममुष्य तथापि न तु श्रुतिरस्य मृ
 तमुवाच यतः ॥ ५१ ॥ मनसोनृततैवमवादि यतस्तत् ए
 हि तस्य मृषा चरितम् । यत एव मृषा मनसश्चरितं तत् ए
 पुरोदितसिद्धिरभूत् ॥ ५२ ॥ यदपेक्ष्य तु नाम भवेन्नित्यं
 मात्मपदस्य तुरीयमिति । तदसत्यमसत्यगुणस्तु यतः परि
 मितसर्पविसर्पणवत् ॥ ५३ ॥ निखिलस्य मनःप्रमुखस्य
 वितथत्वमवादि पुरा तु मया । श्रुतियुक्तिबलेन ततोऽस्त
 परमक्षरमेव सदन्यदसत् ॥ ५४ ॥ यदपूर्वमवाह्यमनन्तरकं
 च किंचन तस्य भवत्यपरम् । इति वेदवचोनुशशास यतो हि
 तथं परतोऽन्यदतः प्रगतम् ॥ ५५ ॥ प्रतिपिध्य यतो बहिरन्
 रापि स्वविलक्षणमात्मन उक्तवती । अवबोधघनत्वमतोऽन्यदस
 वणैकरसत्वनिदर्शनतः ॥ ५६ ॥ लवणैकरसत्वसमं फणि
 स्वविलक्षणवस्तुनिषेधनतः । अवबोधघनं परमात्मपदं तमव
 तदस्मि सदाहमिति ॥ ५७ ॥ अणुनो न च तद्विपरीतगुणो
 च ह्रस्वमतो न च दीर्घमपि । प्रतिपिद्धसमस्तविशेषणकं पर
 क्षरमात्मतयाश्रय भोः ॥ ५८ ॥ असुबुद्धिशरीरगुणान् प
 मानविवेकिजनैर्दृशि धर्मतया । प्रतिपन्नतमान्प्रविहाय जनैर्दृशि
 मात्रमवेहि सदाहमिति ॥ ५९ ॥ अहिनिर्व्वयनीमहिरात्मतया
 जगृहे परिमोक्षणतस्तु पुरा । परिमुच्य तु तामुरगः स्वविले
 पुनः समवेक्षत आत्मतया ॥ ६० ॥ अविवेकत आत्मतया
 विदितं कुशरीरमिदं भवताप्यहिवत् । अहिवच्यज देहविवे
 तमपि प्रतिपद्य चिदात्मकमात्मतया ॥ ६१ ॥ रजनीदिवसो
 न रवेर्भवतः प्रभया सततं युत एष यतः । अविवेकविवेकगुणाव

तौ भवतो न रवेरिव नित्यदृशेः ॥ ६२ ॥ परिशुद्धविबुद्धविमु-
क्तदृशेरविवेकविवेकविवर्जनतः । मम बन्धविमोक्षगुणौ भवतो
न कदाचिदपीत्यवगच्छ भृशम् ॥ ६३ ॥ न मम ग्रहणोज्झनमस्ति
मेया न परेण दृशेरिति निश्चिनु भोः । न हि कस्यचिदात्मनि
कर्म भवेन्न च कश्चिदिहास्ति मदन्य इति ॥ ६४ ॥ अहमस्मि
चरस्थिरदेहधियां चरितस्य सदेक्षक एक इति । न भवेदत एव
मदन्य इति त्वमेवेहि सुमेध इदं सुदृढम् ॥ ६५ ॥ गगने विमले
जलदादिमले सति वाऽसति वा न भिदास्ति यथा । त्वयि सर्व-
गते परिशुद्धदृशौ न भिदास्ति तथा द्वयभेदकृता ॥ ६६ ॥
अनृतं द्वयमित्यवदाम पुरा व्यवहारमपेक्ष्य तु गीतमिदम् ।
अनृतेन न सत्यमुपैति युजां न मरीचिजलेन नदी हृदिनी
॥ ६७ ॥ बहुनाभिहितेन किमु क्रियते शुणु संग्रहमत्र वदामि
तव । त्वयि जागरितप्रभृतित्रितयं परिकल्पितमित्यसदेव सदा
॥ ६८ ॥ परिकल्पितमित्यसदित्युदितं मन इत्यभिश्चित्तमा-
गमतः । उपपत्तिभिरेव च सिद्धमतो भवतोऽन्यदशेषमभूतमिति
॥ ६९ ॥ यदबाह्यमनन्तरमेकरसं यदकार्यमकारणमद्वयकम् ।
यदशेषविशेषविहीनतरं दृशिरूपमनन्तमृतं तदसि ॥ ७० ॥
इयदेव मयोपनिपत्सु पदं परमं विदितं न ततोऽस्त्यधिकम् ।
इति पिप्पलभक्ष इवाभ्यवददवशिष्टमतिं विनिवारयितुम् ॥ ७१ ॥
इतरोपि गुरुं प्रणिपत्य जगौ भगवन्निति तारितवानसि माम् ।
अवबोधतरेण समुद्रमिमं मृतिजन्मजलं सुखदुःखक्षपम् ॥ ७२ ॥
अधुनास्मि सुनिर्वृत आत्मरतिः कृतकृत्य उपेक्षक एकमनाः ।
ग्रहसन्निपयान्मृगतोयसमान्विचरामि महीं भवता सहितः
॥ ७३ ॥ तव दास्यमहं भृशमामरणात्प्रतिपद्यशरीरधृतिं भग-

चन् । करवाणि मया शकनीयमिदं तव कर्तुमतोन्यदशक्यमि
 ति ॥ ७४ ॥ गुरुशिष्यकथाश्रवणेन मया श्रुतिवञ्छुतिसात्
 सुद्धरणम् । कृतमित्थमवैति य एतदसौ न पतत्युदधौ मृतिर
 न्मजले ॥ ७५ ॥ भगवद्भिरिदं गुरुभक्तियुतैः पठितव्यमपाठ
 मतोन्यजनैः । गुरुभक्तिमतः श्रुति भाति यतो गुरुणोक्तमन्यो
 न्यो न भजेन्न पठेत् ॥ ७६ ॥ निगमोपि च यस्य इति प्रसूतं
 गुरुभक्तिमतः कथितं गुरुणा । प्रतिभाति महात्मन इत्यन्य
 त्पठितव्यमतो गुरुभक्तियुतैः ॥ ७७ ॥ येषां धीर्मुख्यदीप्त
 प्रतिहतमगमन्नाशमेकान्ततो मे ध्वान्तं स्वान्तस्य हेतुर्जननमात्र
 संतानदोलाधिरूढेः । येषां पादौ प्रपन्नाः श्रुतिशमविनयैर्भूति
 ताः शिष्यसंधाः सद्यो मुक्ताः स्थितास्तान्यतिवरमहितान्वात
 दायुर्नमामि ॥ ७८ ॥ भूः पादौ यस्य खं चोदरमसुरनिल
 न्द्रसूयौ च नेत्रे कर्णावाशाः शिरो द्यौर्मुखमपि दहनो बल
 वास्तव्यमब्धिः । अन्तःस्थं यस्य विश्वं सुरनरखगगोभोषिणं
 धर्वदैत्यैः चित्रं रंरम्यते तं त्रिभुवनवपुषं विष्णुमीशं नमामि
 ॥ ७९ ॥ इति श्रीतोडकाचार्यविरचितं श्रुतिसारसमुद्धरणं
 समाप्तम् ॥ ३४ ॥

योगतारावली ॥ ३५ ॥

वन्दे गुरुणां चरणारविन्दे सन्दर्शितस्वात्मसुखावबोधे ।
 निःश्रेयसे जाङ्गलिकायमाने संसारहालाहलमोहशान्त्यै ॥ १ ॥
 सदाशिवोक्तानि सपादलक्षलयावधानानि वसन्ति लोके ।
 नादानुसन्धानसमाधिमेकं मन्यामहे अन्यतमं लयानाम् ॥ २ ॥
 सरे च पूरैरनिलस्य कुम्भे सर्वासु नाडीषु विशोधितासु । अ-

नाहतादम्युरुहादुदेति स्वात्मावगम्यः स्वयमेव बोधः ॥ ३ ॥
 नादानुसन्धान नमोऽस्तु तुभ्यं त्वां मन्महे तत्त्वपदं लयानाम् ।
 भवत्प्रसादात् पवनेन साकं विलीयते विष्णुपदे मनो मे ॥४॥
 जालन्धरोद्गीयनमूलबन्धान् जल्पन्ति कण्ठोदरपायुमूले । बन्ध-
 त्रयेऽस्मिन् परिचीयमाने बन्धः कुतो दारुणकालपाशैः ॥ ५ ॥
 उड्याणजालन्धरमूलबन्धैरुन्निद्रितायामुरगाङ्गनायाम् ॥ प्रत्य-
 ङ्मुखत्वात् प्रविशन् सुपुष्पां गमागमौ मुञ्चति गन्धवाहः ॥ ६ ॥
 उत्थापिताधारहुताशनोल्कैराकुञ्चनैः शश्वदपानवायौ । सम्प्रा-
 पिते चन्द्रमसः स्रवन्तीं पीयूषधारां पिबतीह धन्यः ॥ ७ ॥
 बन्धत्रयाभ्यासविपाकजातां विवर्जितां रेचकपूरकाभ्याम् ।
 विशोधयन्तीं विषयप्रवाहां विद्यां भजे केवलकुम्भरूपाम् ॥८॥
 अनाहते चेतसि सावधानैरभ्यासमूरैरनुभूयमानाः । संस्तम्भि-
 तश्वासमनःप्रचारा सा जुम्भते केवलकुम्भकश्रीः ॥ ९ ॥
 सहस्रशः सन्ति दृष्टेषु कुम्भाः सम्भाव्यते केवलकुम्भ एव ।
 कुम्भोत्तमे यत्र तु रेचपूरैः प्राणस्य न प्राकृतवैकृताख्यैः ॥१०॥
 त्रिकूटनाम्नि तिमिरेऽन्तरे खे स्तम्भिते केवलकुम्भ एव ।
 प्राणानिलो भानुशशाङ्गनाड्यौ विहाय सद्यो विलयं प्रयाति
 ॥ ११ ॥ प्रत्याहृतः केवलकुम्भकेन प्रभुक्तकुण्डल्युपभुक्तशेषः ।
 प्राणः प्रतीचीनपथेषु मन्दं विलीयते विष्णुपदे मनो मे
 ॥ १२ ॥ निरङ्कुशानां श्वसनोद्गमानां निरोधनैः केवलकुम्भ-
 काख्यैः । उदेति सर्वेन्द्रियवृत्तिशून्यो मरुल्लयः कोऽपि महाम-
 तीनाम् ॥ १३ ॥ न दृष्टिलक्ष्याणि न चित्तबन्धो न देशकालौ
 न च वायुरोधः । न धारणाध्यानपरिश्रमो वा समेधमाने
 सति राजयोगे ॥ १४ ॥ अशेषदृश्योर्जितद्वग्जयानामवस्थि-

तानामिह राजयोगे । न जागरो नास्ति सुषुप्तिभावो न ज-
 वितं नो मरणं न चित्तम् ॥ १५ ॥ अहं ममत्वादि विहा-
 सर्वं श्रीराजयोगे स्थिरमानसानाम् । न दृष्टिता नास्ति
 दृश्यभावः सा जृम्भते केवलसंविदेव ॥ १६ ॥ नेत्रे यन्मे-
 न्मेपनिमेपशून्ये वायुर्यथा वर्जितरेचपूरः । मनश्च सङ्कल्पवि-
 ल्पशून्यं मनोन्मनी सा मयि सन्निधत्ताम् ॥ १७ ॥ चित्तेन्द्रि-
 याणां चिरनिग्रहेण श्वासप्रवाहे शमिते समस्ते । निवातदीप-
 यितनिश्चलाङ्गो मनोन्मनीषा मयि सन्निधत्ताम् ॥ १८ ॥
 उन्मन्यवस्थाधिगमाय विद्वद्भुपायमेकं तव निर्दिशामः । प-
 क्षुदासीनदृशा प्रपञ्चं संकल्पमून्मूलय सावधानः ॥ १९ ॥
 प्रसह्य संकल्पपरम्पराणां संछेदने सन्ततसावधानः । आलम्ब-
 नादावपचीयमाने शनैः शनैः शान्तिमुपैति चेतः ॥ २० ॥
 निश्वासलोपैर्विधृतैः शरीरैर्नेत्राश्चलैर्वद्वनिमीलितैश्च । अवि-
 वन्तीह मनस्कमुद्रामालोकयामि मुनिपुङ्गवानाम् ॥ २१ ॥
 अमी हि चेन्द्रा सहजा मनस्कादहं ममत्वं शिथिलायमानं
 मनोगतिं मारुतवृत्तिशून्यं गच्छन्त्यगम्यां गमनावशेष-
 ॥ २२ ॥ निवर्त्तयन्तीं निभृतेन्द्रियाणां प्रवर्त्तयन्तीं परमात्म-
 योगम् । सच्चिन्मयीं तां सहजामवस्थां कदा गमिष्यामि गत-
 न्यभागः ॥ २३ ॥ प्रत्यग्विमर्शातिशयेन पुंसां प्राचीनगन्धो-
 पलायितेषु । प्रादुर्भवेत् कापि न जाड्यनिद्रा प्रपञ्च एव
 विलयं प्रयाति ॥ २४ ॥ विच्छिन्नसंकल्पविकल्पमूले नि-
 पनिर्मूलितकर्मजाले । निरन्तराभ्यासिनि नित्यमद्रे वि-
 जते योगिनि योगनिद्राः ॥ २५ ॥ विश्रान्तिमासाद्य तुरी-
 तत्त्वे विश्वाद्यवस्थात्रितयं परस्ये । सच्चिन्मयीं कामपि सर्व-

कालं निद्रां भजन्निर्विपनिर्विकल्पाम् ॥ २६ ॥ प्रकाशमाने
परमात्मभानौ नश्यत्यविद्यातिमिरे समस्ते । अहो बुधा नि-
र्मलदृष्टयोऽपि किञ्चिन्न पश्यन्ति जगत् समग्रम् ॥ २७ ॥
सिद्धिं तथाविधमनोविलयां समर्था श्रीशैलशृङ्गकुहरेषु कदो-
पलभ्ये । गात्रं यथा सरलताः परिवेष्टयन्ति कार्णे यथा वि-
रचयन्ति खगाश्च नीडम् ॥ २८ ॥ ब्रह्मरन्ध्रगते वायौ
गिरेः प्रस्रवणं भवेत् । शृणोति श्रवणातीतं नादं मुक्तिर्न
संशयः ॥ २९ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरित्राजकाचार्यगो-
विन्दभगवत्पादपूज्यशिष्यश्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता योगता-
रावली संपूर्णा ।

सौन्दर्यलहरी ॥ ३६ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति
शक्तः प्रभयितुं न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि ।
अतस्त्वामाराध्यां हरिहरविरिञ्चादिभिरपि प्रणन्तुं स्तोतुं वा
कथमकृतपुण्यः प्रभवति ॥ १ ॥ तनीयांसं पांसुं तव चरणपङ्केरु-
हभवं विरिञ्चिः संचिन्वन्विरचयति लोकानविकलम् । वहत्येनं
शौरिः कथमपि सहस्रेण शिरसां हरः संक्षुभ्येनं भजति भसितो-
द्भूलनविधिम् ॥ २ ॥ अविद्यानामन्तस्तिमिरमिहिरोदीपनकरी
जडानां चैतन्यस्तवकमकरन्दस्रुतिशिराः । दरिद्राणां चिन्ताम-
णिगुणनिका जन्मजलधौ निमग्नानां दृष्ट्वा मुररिपुवराहस्य भवति
॥ ३ ॥ तदन्यः पाणिभ्यामभयवरदो दैवतगणस्त्वमेका नैवासि
प्रकटितवरा भीत्यभिनया । भयात्रातुं दातुं फलमपि च वाञ्छा
समधिकं शरण्ये लोकानां तव हि चरणावेव निपुणौ ॥ ४ ॥

हरिस्त्वामाराध्य प्रणतजनसौभाग्यजननीं पुरा नारीभूता पु-
 रिषुमपि क्षोभमनयत् । सरोपि त्वां नत्वा रतिनयनलंके
 वपुषा मुनीनामप्यन्तः प्रभवति हि मोहाय महताम् ॥ ५ ॥
 धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पञ्च विशिखा वसन्तः सायन्-
 मलयमरुदायोधनरथः । तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कर्म-
 कृपामपाङ्गात्ते लब्ध्वा जगदिदमनङ्गो विजयते ॥ ६ ॥ इ-
 त्काञ्चीदामा करिकलभकुम्भस्तनभरा परिक्षीणा मध्ये पारि-
 तशरचन्द्रवदना । धनुर्वाणान्पाशं सृणिमपि दधाना कर-
 पुरस्तादास्तां नः पुरमथितुराहोपुरुषिका ॥ ७ ॥ सुधासिन्धो-
 र्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्ता-
 मणिगृहे । शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलया भजनि-
 धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥ ८ ॥ महीं मूलशालि-
 कमपि मणिपूरे हुतवहं स्थितिं स्वाधिष्ठाने हृदि मरुतमाक-
 मुपरि । मनोपि भ्रूमध्ये सकलमपि जित्वा कुलपथं सह-
 पद्मे सह रहसि पत्या विहरसे ॥ ९ ॥ सुधाधारासारैश्चर-
 गलान्तर्चिगलितैः प्रपञ्चं सिञ्चन्ती पुनरपि रसाम्नायमह-
 अवाप्य स्वां भूमिं भुजगनिभमध्युष्टवलयं स्वमात्मानं क-
 स्वपिपि कुलकुण्डे कुहरिणि ॥ १० ॥ चतुर्भिः श्रीकण्ठैः वि-
 युवतिभिः पञ्चभिरधः प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरिति मूल-
 कृतिभिः । त्रयश्चत्वारिंशदसुदलकलाब्जत्रिवलयत्रिरत्ना-
 सार्धं तव चरणकोणाः परिणताः ॥ ११ ॥ त्वदीयं सौन्द-
 तुहिनगिरिकन्ये तुलयितुं कवीन्द्राः कल्पन्ते कथमपि वि-
 श्विप्रभृतयः । यदालोक्यौत्सुक्यादमरललना यान्ति मन्-
 वपोभिर्दुःप्रापामपि गिरिदसायुज्यपदवीम् ॥ १२ ॥

वर्षीयांसं नयनविरसं नर्मसु जडं तवापाङ्गाल्लोके पतितमनुधाव-
 न्ति शतशः । गलद्रेणीवन्धाः कुचकलशविस्रस्तसिचया हटा-
 श्रुत्यत्काञ्च्यो विगलितदुकूला युवतयः ॥ १३ ॥ क्षितौ पट्टप-
 ञ्चाशद्विसमधिकपञ्चाशदुदके हुताशे द्वापष्टितुरधिकपञ्चाश-
 दनिले । दिवि द्वौः पट्टत्रिंशन्मनसि च चतुःपष्टिरिति ये मयू-
 खास्तेषामप्युपरि तव पादाम्बुजयुगम् ॥ १४ ॥ शरङ्गयोत्खा-
 शुभ्रां शशियुतजटाजूटमुकुटां वरत्रासत्राणस्फटिकघुटिकापुस्त-
 ककराम् । सकृन्नत्वा न त्वां कथमिव सतां संनिदधते मधुक्षी-
 रद्राक्षामधुरिमधुरीणा भणितयः ॥ १५ ॥ कवीन्द्राणां चेतः
 कमलवनवालातपरुचिं भजन्ते ये सन्तः कतिचिदरुणामेव
 भवतीम् । विरिञ्चिप्रेयस्यास्तरलतरश्चंगारलहरीगभीराभिर्वाग्भि-
 विंदधति सतां रञ्जनमसी ॥ १६ ॥ तनुच्छायाभिस्ते तरुणत-
 रणिश्रीसरणिभिर्दिवं सर्वांमुर्वामरुणिमनिमग्नां स्मरति यः ।
 भवन्त्यस्य त्रस्यद्वनहरिणशालीननयनाः सहोर्वश्या वश्याः
 कतिकति न गीर्वाणगणिकाः ॥ १७ ॥ मुखं चिन्दुं कृत्वा कुच-
 युगमधस्तस्य तदधो हरार्थं ध्यायेद्यो हरमहिपि ते मन्मथक-
 लाम् । स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यतिलघुत्रिलोकीम-
 प्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥ १८ ॥ किरन्तामङ्गेभ्यः
 किरणनिकुरम्बामृतरसं हृदि तामाधत्ते हिमकरशिलामूर्तिमिव
 यः । स सर्पाणां दर्पं शमयति शकुन्ताधिप इव ज्वरप्लुष्टं दृष्ट्वा
 सुखयति सुधासारसितया ॥ १९ ॥ तडिल्लेखा तन्वी तपनश-
 शिवैश्वानरमयीं निपण्णां पण्णामप्युपरि कमलानां तव कलाम् ।
 महापद्माटव्यां मृदितमलमायेन मनसा महान्तः पश्यन्तो
 दधति परमाह्लादलहरीम् ॥ २० ॥ सवित्रीभिर्वाचां शशिम-

णिशिलाभङ्गरुचिभिर्वशिन्याद्याभिस्त्वां सह जननि संचिन्-
 यति यः । स कर्त्ता काव्यानां भवति वचसां भङ्गिसुमर्गवचो-
 भिवर्गदेवीवदनकमलामोदमधुरैः ॥ २१ ॥ भवानि तदामं
 मयि वितर दृष्टिं स करुणामिति स्तोतुं वाञ्छन्कथयति मन्-
 नि त्वमिति यः । तदैव त्वं तस्मै दिशसि निजसायुज्यपदनं
 मुकुन्दब्रह्मेत्यस्फुटमुकुटनीराजितपदाम् ॥ २२ ॥ त्वया हत-
 वामं वपुरपरितृप्तेन मनसा शरीरार्धं शंभोरपरमपि शङ्के हत-
 भूत् । तथा हि तद्रूपं सकलमरुणाभं त्रिनयनं कुचाभ्यामाक-
 कुटिलशशिचूडालमुकुटम् ॥ २३ ॥ जगत्सूते धाता हरिस्त-
 रुद्रः क्षपयते तिरस्कुर्वन्नेतत्स्वमपि वपुरीशस्तिरयति । सदा
 सर्वं तदिदमनुगृह्णाति च शिवस्तवाज्ञामालम्ब्य क्षणचलितयो-
 लतिकयोः ॥ २४ ॥ त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां त-
 शिवे भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता । तथा हि
 तत्पादोद्ग्रहनमणिपीठस्य निकटे स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितको-
 तंसमुकुटाः ॥ २५ ॥ विरिञ्चिः पञ्चत्वं व्रजति हरिराशो-
 विरतिं विनाशं कीनाशो भजति धनदो याति निधनम् । वि-
 न्द्रा माहेन्द्री विततिरपि संमीलति दृशां महासंहारेस्मिन्नि-
 सति सति तत्पतिरसौ ॥ २६ ॥ जपो जल्पः शिल्पं सकल-
 मपि मुद्राविरचनं गतिः प्रादक्षिण्यक्रमणमशनाद्याहुतिविधि-
 ग्रणामः संवेशः सुखमखिलमात्मार्पणदृशा सपर्यापर्यायत्वं
 भवतु यन्मे विलसितम् ॥ २७ ॥ ददाने दीनेभ्यः श्रियमस्ति
 शमाशानुसदृशीममन्दं सौन्दर्यप्रकरमकरन्दं विकिरति । त-
 स्मिन्मन्दारस्तवकमुभगे यातु चरणे निमज्जन्मञ्जीवः करणचरण-
 पट्टचरणताम् ॥ २८ ॥ सुधामप्यास्वाद्य प्रतिभयजरासृज-

रणीं विपद्यन्ते विश्वे विधिशतमखाद्या दिविपदः । करालं
यत्क्ष्वेडं कवलितवतः कालकलना न शंभोस्तन्मूलं जननि तव
ताटङ्कमहिमा ॥ २९ ॥ किरीटं वैरिञ्चं परिहर पुरः कैटभ-
भिदः कठोरे कोटीरे स्खलसि जहि जम्भारिमुकुटम् । प्रणम्रे-
ष्वेतेषु प्रसभमभियातस्य भवनं हरस्याभ्युत्थाने तव परिजनो-
क्तिर्विजयते ॥ ३० ॥ चतुःपथ्या तत्रैः सकलमभिसंधाय भुवनं
स्थितस्तत्तत्सिद्धिप्रसभपरतत्रैः पशुपतिः । पुनस्तन्निर्वन्धादखि-
लपुरुषार्थैकघटनात्स्वतन्त्रं ते तन्त्रं क्षितितलमवातीतरदिदम्
॥ ३१ ॥ शिवः शक्तिः कामः क्षितिस्थ रविः शीतकिरणः
सरो हंसः शक्रस्तदनु च परामारहरयः । अमी हृल्लेखाभिस्ति-
सृभिरवसानेषु घटिता भजन्ते वर्णाते स्तव जननि नामावयव-
ताम् ॥ ३२ ॥ स्वरं योनिं लक्ष्मीं त्रितयमिदमादौ तव मनो
निधायैके नित्ये निरवधिमहाभोगरसिकाः । जपन्ति त्वां चि-
न्तामणिगुणनिबद्धाक्षवल्याः शिवाग्रौ जुहन्तः सुरभिघृतधा-
राहुतिशतैः ॥ ३३ ॥ शरीरं त्वं शंभोः शशिमिहिरवक्षोरुह-
युगं तवात्मानं मन्ये भगवति भवात्मानमनघम् । अतः शेषः
शेषीत्ययमुभयसाधारणतया स्थितः संबन्धो वां समरसपदा-
नन्दपरयोः ॥ ३४ ॥ मनस्त्वं व्योम त्वं मरुदसि मरुत्सारथि-
रसि त्वमापस्त्वं भूमिस्त्वयि परिणतायां नहि परम् । त्वमेव
स्वात्मानं परिणमयितुं विश्ववपुषा चिदानन्दाकारं हरमहिषि-
भावेन विभृषे ॥ ३५ ॥ तवाज्ञाचक्रस्थं तपनशशिकोटिश्रुति-
धरं परं शंभुं वन्दे परिमलितपार्श्वं परिचितम् । यमाराध्यन्म-
त्त्या रविशशिशुचीनामविषये निरालोके लोको निवसति नि-
जालोकभवने ॥ ३६ ॥ विशुद्धौ ते शुद्धस्फटिकसदृशं व्योम-

जनकं शिवं सेवे देवीमपि शिवसमानव्यसनिनीम् । योः
 कान्त्या यांत्या शशिकिरणसारूप्यसरणिर्विधूतान्तर्धान्ता वि-
 लसति चकोरीव जगती ॥ ३७ ॥ समुन्मीलत्संवित्कमलमक-
 रन्दैकरसिकं भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचराम् । यदा
 लापादष्टादशगुणितविद्यापरिणतिर्यदादत्ते दोषाद्गुणमखिल-
 द्भयः पय इव ॥ ३८ ॥ तव स्वाधिष्ठाने हुतवहमधिष्ठाय नितं
 तमीडे संवर्तं जननि महतीं तां च समयाम् । यदा लोकं
 लोकान्दहति महति क्रोधकलिले दयार्द्रा या दृष्टिः शिशिर-
 पचारं रचयति ॥ ३९ ॥ तडित्चन्तं शक्त्या तिमिरपरिपन्नि-
 स्फुरणया स्फुरन्नानारत्नाभरणपरिणद्धेन्द्रधनुपम् । तव श्यामं
 मेघं कमपि मणिपूरैकशरणं निषेवे वर्षन्तं हरमिहिरतप्तं विड-
 वनम् ॥ ४० ॥ तवाधारे मूले सहसमयया लास्यपरया ता-
 त्मानं मन्ये नवरसमहाताण्डवनटम् । उभाभ्यामेताभ्यामुदर-
 विधिमुद्दिश्य दयया सनाथाभ्यां जज्ञे जनकजननीमज्जगदिदम्
 ॥ ४१ ॥ गतैर्माणिक्यैक्यं गगनमणिभिः सान्द्रघटितं कीर्तितं
 ते हैमं हिमगिरिसुते कीर्तयति यः । समीपे यच्छायास्फुरण-
 बलं चन्द्रशकलं धनुः शौनासीरं किमिदमिति बध्नाति वि-
 णाम् ॥ ४२ ॥ धुनोतु ध्वान्तं नस्तुलितदलितेन्दीवरवनं य-
 स्त्रिगुणं श्लक्ष्णं चिकुरनिकुरम्बं तव शिवे । यदीयं सौरभ्यं सह-
 जमुपलब्धुं सुमनसो वसन्त्यस्मिन्मन्ये बलमथनवाटीविटपिनाम्
 ॥ ४३ ॥ बहन्ती सिन्दूरं प्रबलकवरीभारतिमिरत्निपां वृन्द-
 न्दीकृतमिव नवीनार्ककिरणम् । तनोतु क्षेमं नस्तव वदनसौ-
 न्दर्यलहरी परीवाहस्रोतःसरणिरिव सीमन्तसरणिः ॥ ४४ ॥
 अरालैः स्वाभाव्यादलिकुललसच्चीभिरलकैः परीतं ते वक्रं पति-

हसति पङ्केरुहरुचिम् । दरसरे यसिन्दशनरुचिकिञ्जल्करुचिरे
सुगन्धौ माद्यन्ति स्सरमथनचक्षुर्मधुलिहः ॥ ४५ ॥ ललाटं
लावण्यद्युतिविमलमाभाति तव यत्तृतीयं तन्मन्ये मुकुटशशिख-
ण्डस्य शकलम् । विपर्यासन्यासादुभयकृतसंधानमथितः सुधाले-
पस्फूर्तिः परिणमति राकाहिमकरः ॥ ४६ ॥ भ्रुवौ भ्रुवे किञ्चि-
द्भुवनभयभङ्गव्यसनिनि त्वदीये नेत्राभ्यां मधुकररुचिभ्यां
धृतगुणे । धनुर्मध्ये सव्येतरकरगृहीतं रतिपतिः प्रकोष्ठे मुष्टौ
च स्थगयति निगूढान्तरमुभे ॥ ४७ ॥ अहः सूते सव्यं तव
नयनमर्कात्मकतया त्रियामां वामं ते सृजति रजनीनायकम-
यम् । तृतीया दृष्टिस्ते दरदलितहेमाम्बुजरुचिः समाधत्ते संध्यां
दिवसनिशयोरन्तरचरीम् ॥ ४८ ॥ विशाला कल्याणी स्फुट-
रुचिरयोध्याकुवलयैः कृपाधारापारा किमपि मधुराभोगवति-
का । अवन्ती दृष्टिस्ते बहुनगरविस्तारविजया ध्रुवं तत्तन्नाम-
व्यवहरणयोग्या विजयते ॥ ४९ ॥ कवीनां संदर्भस्तवकमकर-
न्दैकभरितं कटाक्षव्याक्षेपभ्रमरकलभौ कर्णयुगलम् । अमुञ्चन्तौ
दृष्ट्वा तव नवरसास्वादतरलावमूयासंसर्गादलिकनयनं किञ्चिदरु-
णं ॥ ५० ॥ शिवे शृङ्गाराङ्गे तदितरजने कुत्सनपरा सरोपा
गङ्गायां गिरिशचरिते विस्मयवती । हराहिभ्यो भीता सरसि-
रुहसौभाग्यजननी सखीषु खेरा ते मयि जयति दृष्टिः सक-
रुणा ॥ ५१ ॥ गते कर्णाभ्यर्णं गरुत इव पक्ष्माणि दधती
पुरां भेत्तुश्चित्ते प्रशमरसविद्रावणफले । इमे नेत्रे गोत्राधरपतिकु-
लोत्तंसकलिके तवाकर्णाकृष्टस्सरशरविलासं कलयतः ॥ ५२ ॥
विभक्तत्रैवर्ण्यं व्यतिकरणनीलाम्बुजतया विभाति त्वन्नेत्रत्रित-
यमिदमीशानदयिते । पुनः स्रष्टुं देवान्द्रुहिणहरिरुद्रानुपरता-

त्रजः सत्त्वं विभ्रत्तम इति गुणानां त्रयमिव ॥ ५३ ॥ पवित्रं
 कर्तुं नः पशुपतिपराधीनहृदये दयामित्रैर्नैत्रैररुणधवलश्यामर-
 चिभिः । नदः शोणो गङ्गा तपनतनयेति ध्रुवमिमं त्रयाणां
 तीर्थानामुपनयसि संभेदमनघे ॥ ५४ ॥ तत्रापणं कर्णेजपन-
 नपैश्चून्यचकिता निलीयन्ते तोये नियतमनिमेपाः शफरिकाः ।
 इयं च श्रीर्वद्वच्छदपुटकपाटं कुवलयं जहाति प्रत्यूषे निशि च
 विघटय्य प्रविशति ॥ ५५ ॥ निमेपोन्मेपाभ्यां प्रलयमुद-
 याति जगती तवेत्याहुः सन्तो धरणिधरराजन्यतनये । तदुन्मे-
 पाज्जातं जगदिदमशेषं प्रलयतः परित्रातुं शङ्के परिहृतनिमेपा-
 स्तव दृशः ॥ ५६ ॥ दृशा द्राघीयस्या दरदलितनीलोत्पलरुच-
 दवीयांसं दीनं स्तपय कृपया मामपि शिवे । अनेनायं वन्द्यो
 भवति न च ते हानिरियता वने वा हर्म्ये वा समकरनिपातो
 हिमकरः ॥ ५७ ॥ अरालं ते पालीयुगलनगराजन्यतनये न
 केपामाधत्ते कुसुमशरकोदण्डकुतुकम् । तिरश्चीनो यत्र श्रवण-
 यमुलङ्घ्य विलसन्नपाङ्गव्यासङ्गो दिशति शरसन्धानधिपण-
 ॥ ५८ ॥ स्फुरदण्डाभोगप्रतिफलितताटङ्कयुगलं चतुश्चक्रं मन्दं
 तव मुखमिदं मन्मथरथम् । यमारुह्य दुह्यत्यवनिरथमर्केन्दु-
 रणं महावीरो मारः प्रमथपतये स्वं जितवते ॥ ५९ ॥ सरल-
 त्याः मूर्त्तीरमृतलहरीकोशसदृशीः पिवन्त्या शर्वाणि श्रवण-
 लुकाभ्यामविरतम् । चमत्कारश्लाघाचलितशिरसः कुण्डलग-
 झणत्कारैस्तारैः प्रतिवचनमाचष्ट इव ते ॥ ६० ॥ असौ नासा-
 वंशस्तुहिनगिरिवंशध्वजपटस्तदीयो नेदीयः फलतु फल-
 साकमुचितम् । वहन्नन्तर्मुक्ताः शिशिरतरनिश्वासघटिताः
 समृद्धा यस्तासां बहिरपि च मुक्तामणिधरः ॥ ६१ ॥ प्रकुल-

रक्तायास्तव मुदति दन्तच्छदरुचेः प्रवक्ष्ये सादृश्यं जनयतु
 फलं विद्रुमलता । क विम्बं दृग्विम्बप्रतिफलनलाभादरुणितं
 तुलामध्यारोढुं कथमिव न लज्जेत कलया ॥ ६२ ॥ स्मितज्यो-
 त्स्नाजालं तव वदनचन्द्रस्य पिवतां चकोराणामासीदतिरस-
 तया चारुजडिमा । अतस्ते शीतांशोरमृतलहरीमम्लरुचयः
 पिवन्ति स्वच्छन्दं निशिनशि भृशं काञ्जिकधिया ॥ ६३ ॥
 अविश्रान्तं पत्युर्गुणगणकथाग्रेडनजडा जपापुष्पच्छाया तव
 जननि जिह्वा जयति सा । यदग्रासीनायाः स्फटिकदृपदच्छ-
 च्छविरुचिः सरस्वत्या मूर्त्तिः परिणमति माणिक्यवपुषा ॥ ६४ ॥
 रणे जित्वा दैत्यानपहतशिरस्त्रैः क्वचिभिर्निवृत्तैश्चण्डांशत्रिपुर-
 हरनिर्माल्यविमुखैः । विरिञ्चीन्द्रोपेन्द्रैः शशिशिशिरकर्पूरधवला
 विलिप्यन्ते मातस्तव वदनताम्रूलशकलाः ॥ ६५ ॥ विपश्चया
 गायन्ती विविधमवदातं पशुपतेस्त्वयारब्धं वक्तुं स्खलितवचसा
 साधुवचने । तदीयैर्माधुर्यैरपलपिततन्त्रीकलरवा निजां वीणां
 वाणी निचुलयति चोलेन निभृतम् ॥ ६६ ॥ कराग्रेण स्पृष्टं
 तुहिनगिरिणा वत्सलतया गिरीशेनोदस्तं मुहुरधरपानाकुल-
 तया । करग्राह्यं शंभोर्मुखमुकुरवृत्तं गिरिसुते कथंकारं ब्रूमस्तव
 चिबुकमौपम्यरहितम् ॥ ६७ ॥ भुजाश्लेषान्नित्यं पुरदमयितुः
 कण्टकवती तव ग्रीवा धत्ते मुखकमलनालश्रियमियम् । स्वतः-
 श्वेता कालागरुवहलजम्बालमलिना मृणालीलालित्यं वहति
 यदधो हारलतिका ॥ ६८ ॥ गले रेखास्तिष्ठो गतिगमकगीतै-
 कनिपुणं विवाहव्यानद्धत्रिगुणगुणसंख्याप्रतिभुवः । विराजन्ते
 नानाविधमधुररागाकरभुवां त्रयाणां ग्रामाणां स्थितिनियमसी-
 मान इव ते ॥ ६९ ॥ मृणालीमृद्वीनां तव भुजलतानां चतसृणां

चतुर्भिः सौन्दर्यं सरसिजभवः स्तौति वदनैः । नखेभ्यः सं-
 सन्प्रथमदमनादन्धकरिपोश्चतुर्णां वक्राणां सममभयदानार्प-
 धिया ॥ ७० ॥ नखानामुद्योतैर्नवनलिनरागं विहसतां करा-
 ते कान्तिं कथय कथयामः कथमुमे । कदाचिद्वा साम्यं भव-
 विधया हन्त कमलं यदि क्रीडलक्ष्मीचरणतललाक्षारुणदल-
 ॥ ७१ ॥ समं देवि स्कन्दद्विपवदनपीतं स्तनयुगं तवेदं न-
 खेदं हरतु सततं प्रस्तुतमुखम् । यदालोकयाशङ्काकुलितहृद-
 हासजनकः स्वकुम्भौ हेरम्बः परिमृशति हस्तेन झटिति ॥ ७२ ॥
 अमू ते वक्षोजावमृतरसमाणिक्यकलशौ न सन्देहस्यन्दो नप-
 तिपताकौ मनसि नः । पिबन्तौ तौ यस्मादविदितवपुसंय-
 रसौ कुमारवद्यापि द्विरदवदनकौश्चदमनौ ॥ ७३ ॥ वहल-
 स्तम्बेरमदनुजकुम्भप्रकृतिभिः समारब्धां मुक्तामणिभिर्यत-
 हारलतिकाम् । कुचाभोगो विम्बाधररुचिभिरन्तःशबलित-
 प्रतापव्यामिश्रां पुरविजयिनः कीर्त्तिमिव ते ॥ ७४ ॥ त-
 स्तन्यं मन्ये तुहिनगिरिकन्ये हृदयतः पयःपारावारः परिवर्त-
 सारस्वत इति । दयावत्या दत्तं द्रविडशिशुरास्वाद्य तव वक्र-
 वीनां प्रौढानामजनि कमनीयः कवयिता ॥ ७५ ॥ हरको-
 ज्वालावलिभिरवलीढेन वपुषा गभीरे ते नाभीसरसि कृतस-
 मनसिजः । समुत्तस्थौ तस्मादचलतनये धूमलतिका जन-
 जानीते तव जननि रोमावलिरिति ॥ ७६ ॥ यदेतत्कालिन्दी-
 तनुतरतरङ्गाकृतिशिवे कृशे मध्ये किञ्चिज्जननि तव तज्ज-
 सुधियाम् । विमर्दादन्योन्यं कुचकलशयोरन्तरगतं तन-
 व्योम प्रविशदिव नाभीकुहरिणीम् ॥ ७७ ॥ स्थिरो गङ्गाव-
 स्तनमुकुलरोमावलिललाकुलावालं कुण्डं कुसुमशरतेजोदुतञ्ज-

रतेलीलागारं किमपि तव नाभीति गिरिजे विलद्वारं सिद्धे-
गिरिशनयनानां विजयते ॥ ७८ ॥ निसर्गक्षीणस्य स्तनतटम-
रेण क्लमजुपो नमन्मूर्त्तेर्नाभौ बलिषु शनकैरुद्यत इव । चिरं ते
मध्यस्य त्रुटिततटिनीतीरतरुणा समावस्थस्येन्नो भवतु कुशलं
शैलतनये ॥ ७९ ॥ कुचौ सद्यः खिद्यत्तटघटितकूर्पासभिदुरौ
कपन्तौ दोर्मूले कनककलशाभौ कलयता । तव त्रातुं भङ्गादु-
दरमवलग्नं तनुध्रुवा त्रिधानद्वं देवि त्रिवलिलवलीवलिभिरिव
॥ ८० ॥ गुरुत्वं विस्तारं क्षितिधरपतिः पार्वति निजान्वित-
म्वादाच्छिद्य त्वयि हरणरूपेण विदधे । अतस्ते विस्तीर्णो गुरु-
रयमशेषां वसुमतीं नितम्बप्राग्भारः स्थगयति लघुत्वं नयति
च ॥ ८१ ॥ करीन्द्राणां शुण्डाकनककदलीकाण्डपटलीमुभा-
भ्यामूरुभ्यामुभयमपि निर्जित्य भवती । सुवृत्ताभ्यां पत्युः
प्रणतिकठिनाभ्यां गिरिसुते विजिग्ये जानुभ्यां विबुधकरिकु-
म्भद्वयमपि ॥ ८२ ॥ पराजेतुं रुद्रं द्विगुणशरगर्भौ गिरिसुते
निपङ्क्तौ जङ्घे ते विषमविशिखो वाढमकृत । यदग्रे लक्ष्यं ते
दशशरफलाः पादयुगलीनखाग्रच्छद्धानः सुरमुकुटशाणौघनि-
शिताः ॥ ८३ ॥ श्रुतीनां मूर्धानो दधति तव यौ शेखरतया
ममाप्येतौ मातः शिरसि दयया धेहि चरणौ । ययोः पाद्यं
पाथः पशुपतिजटाजूटतटिनी ययोर्लाक्षालक्ष्मीररुणहरिचूडा-
मणिरुचिः ॥ ८४ ॥ नमोवाकं ब्रूमो नयनरमणीयाय पदयो-
स्तवासौ इन्द्राय स्फुटरुचिरसालक्तकरुचे । अमृत्यत्यन्तं यद-
भिहननाय स्पृहयते पशूनामीशानः प्रमदवनकङ्कलितरवे ॥ ८५ ॥
मृषा कृत्वा गोत्रस्खलनमथ वैलक्ष्यनमितं ललाटे भर्त्तारं चर-
णयुगले ताडयति ते । चिरादन्तःशल्यं दहनकृतमुन्मीलित-

चता तुलाकोटिकाणैः किलिकिलितमीशानरिपुणा ॥ ८६ ॥
 हिमानीहन्तव्यं हिमगिरितटाक्रान्तिचतुरौ निशायां निद्रा
 निशि च परभागे च विशदौ । परं लक्ष्मीपात्रं श्रियमपि स
 न्तौ समयिनां सरोजं तत्पादौ जननि जयतश्चित्रमिह कि
 ॥ ८७ ॥ पदं ते कान्तीनां प्रपदमपदं देवि विपदां कथं क
 सद्भिः कठिनकमठीखर्परतुलम् । कथं वा हस्ताभ्यामुपयमन
 पुरमिदा तदादाय न्यस्तं दृपदि दयमानेन मनसा ॥ ८८ ॥
 नखैर्नाकस्त्रीणां करकमलसंकोचशशिभिस्तरूणां दिव्यानां ह
 त इव ते चण्डि चरणौ । फलानि स्वस्थेभ्यः किसलयकरा
 ददतां दरिद्रेभ्यो भद्रां श्रियमनिशमहाय ददतौ ॥ ८९ ॥
 कदा काले मातः कथय कलितालक्तकरसं पित्रेयं विद्या
 तव चरणनिर्णेजनजलम् । प्रकृत्या मूकानामपि च कवितार
 णतया यदा धत्ते वाणी मुखकमलताम्बूलरसताम् ॥ ९० ॥
 पदन्यासक्रीडापरिचयमिवारब्धुमनसश्चरन्तस्ते खेलं भवनक
 हंसा न जहति । स्वविक्षेपे शिक्षां सुभगमणिमङ्गीररणिन
 लादाचक्षाणं चरणकमलं चारुचरिते ॥ ९१ ॥ गतास्ते प्र
 द्रुहिणहरिरुद्रेश्चरमृतः शिवः स्वच्छच्छायाघटितकपटप्रच
 पटः । तदीयानां भासां प्रतिफलनलाक्षारूणतया श्रुति
 शङ्कारो रस इव दृशां दोग्धि कुतुकम् ॥ ९२ ॥ अराला क
 प्रकृतिसरला मन्दहसिते शिरीषाभा गात्रे दृपदिव क
 कुचतटे । भृशं तन्वी मध्ये पृथुरपि वरारोहविषये जय
 शंभोर्जयति करुणा काचिदरुणा ॥ ९३ ॥ समानीतः पद्म
 मणिमुकुरतामम्बरमणिर्मया दास्यस्यान्तस्तिमितकिरणश्रेणि
 षणः । दधाति त्वदङ्गप्रतिफलनमथान्तविकचं निरावध

निजहृदयपङ्केरुहमिव ॥ ९४ ॥ कलङ्कः कस्तूरीरजनिकरविम्वं
जलमयं कलाभिः कर्पूरैर्मरकतकरण्डं निविडितम् । अतस्त्वद्भो-
गेन प्रतिदिनमिदं रिक्तकुहरं विधिर्भूयोभूयो निविडयति नूनं
तव कृते ॥ ९५ ॥ पुरारातेरन्तःपुरमसि ततस्त्वच्चरणयोः सप-
र्यामर्यादा तरलकरणानामसुलभा । तथाप्येते नीताः शतमख-
मुखा सिद्धिमतुलां तव द्वारोपान्तस्थितिभिरणिमाद्याभिरमराः
॥ ९६ ॥ कलत्रं वैधात्रं कतिकति भजन्ते न कवयः श्रियो
देव्याः को वा न भवति पतिः कैरपि धनैः । महादेवं हित्वा
तव सति सतीनामचरमे कुचाभ्यामासङ्गः कुरवकतरोरप्यसु-
लभः ॥ ९७ ॥ स्वदेहोद्भूताभिर्घृणिभिरणिमाद्याभिरभितो
निपेव्यां नित्ये त्वामहमिति सदा भावयति यः । किमाश्चर्यं
तस्य त्रिनयनसमृद्धिं वृणयतो महासंवर्ताभिर्विरचयति नीरा-
जनविधिम् ॥ ९८ ॥ गिरामाहुर्देवीं ब्रुहिणगृहिणीमागमविदो
हरेः पत्नीं पद्मां हरसहचरीमादितनयाम् । तुरीया कापि त्वं
दुरधिगमनिःसीममहिमा महामाये विश्वं भ्रमयसि परब्रह्मम-
हिपि ॥ ९९ ॥ समुद्भूतस्थूलस्तनभरमुरश्चारु हसितं कटाक्षे
कन्दर्पः कतिचन कदम्बद्युतिवपुः ॥ हरस्य त्वद्भान्ति मनसि
जनयन्ति स विमला भवत्या ये भक्ताः परिणतिरमीपामियमुमे
॥ १०० ॥ सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसप्तो विजयते रतेः
पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा । चिरंजीवन्नेव क्षपितप-
शुपाशव्यतिकरः परब्रह्माभिरुच्यं रसयति रसं तद्भजनवान्
॥ १०१ ॥ निधे नित्येस्मरे निरवधिगुणे नीतिनिपुणे निराधा-
टज्ञाने नियमपरचित्तकनिलये । नियत्या निर्मुक्ते निखिलनिग-
मान्तस्तुतिपदे निरातङ्गे नित्ये निगमय ममापि स्तुतिमिमाम्

॥ १०२ ॥ प्रदीपज्वालाभिर्दिवसकरनीराजनविधिः सु-
 सूते चन्द्रोपलजललवैरर्घ्यरचना । स्वकीयैरम्भोभिः सलिल-
 धिसौहित्यकरणं स्वकीयाभिर्वाग्भिस्तव जननि वाचां स्तुति-
 यम् ॥ १०३ ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्यवीर-
 च्छंकराचार्यविरचितं सौन्दर्यलहरीस्तोत्रं संपूर्णम् ॥

आनंदलहरी ॥ ३७ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ भवानि स्तोतुं त्वां प्रभवति चतुर्भि-
 वदनैः प्रजानामीशानस्त्रिपुरमथनः पंचभिरपि । न शक्ति-
 सेनानी दशशतमुखैरप्यहिपतिस्तदान्येषां केषां कथय कथय-
 न्नवसरः ॥ १ ॥ घृतक्षीरद्राक्षामधुमधुरिमा कैरपि पदैर्वि-
 प्यानाख्येयो भवति रसनामात्रविषयः । तथा ते मौक्तिक-
 परमशिवदृष्टमात्रविषयः कथंकारं ब्रूमः सकलनिगमागो-
 गुणे ॥ २ ॥ मुखे ते तांबूलं नयनयुगले कज्जलकला लल-
 काश्मीरं विलसति गले मौक्तिकलता । स्फुरत्कांचीशाटीप्र-
 कटितटे हाटकमयी भजामस्त्वां गौरीं नगपतिकिशोरीमविर-
 ॥ ३ ॥ विराजन्मन्दारद्रुमकुसुमहारस्तनतटीनटद्वीपान-
 ग्रमद्विचलत्कुंडलगणः । नतांगी मातंगी रुचिरगतिर्भ-
 भगवती सती शंभोरंभोरुहचटुलचक्षुर्विजयते ॥ ४ ॥ नवीन-
 केशभ्राजन्मणिकनकभूषापरिकरैर्वृतांगी सारंगी रुचिरनयना-
 कृतशिवा । तडित्पीता पीतांबरललितमंजीरसुभगा ममा-
 र्णापर्णा निरवधिसुखैरस्तु सुमुखी ॥ ५ ॥ हिमाद्रौ संभूता मु-

ललितकरैः पल्लवयुता सपुष्पा मुक्ताभिर्भ्रमरकलिता चालक-
भरैः । कृतस्थाणुस्थाना मुकुलितलता सूक्तिसरसा रुजां हंत्री
गंत्री विलसति चिदानन्दलतिका ॥ ६ ॥ सपर्णामाकीर्णा कति-
पयगुणैः सादरमिह श्रयंत्यन्ये वल्लि मम तु मतिरेवं विलस-
ति । अपर्णैका सेव्या जगति सकलैर्यत्परिवृतः पुराणोपि
स्थाणुः फलति किल कैवल्यपदवीम् ॥ ७ ॥ विधात्री धर्माणां
त्वमसि सकलोन्माथजननी त्वमर्थानां मूलं धनदमविनिर्घांघ्रि-
कमलम् । त्वदादिः कामानां जननि कृतकंदर्पविजये सतां मुक्ते-
र्वीजं त्वमसि परमब्रह्ममहिषी ॥ ८ ॥ प्रभूता भक्तिस्ते यदपि
न ममालोलमनसस्त्वया तु श्रीमत्या सदयमवलोक्योहमधुना ।
पयोदः पानीयं दिशति मधुरं चातकमुखे भृशं शंके कैर्वा
विधिभिरनुनीता मम मतिः ॥ ९ ॥ कृपापांगालोकं वितर त-
रसा साधुचरिते न ते युक्तोपेक्षा मयि शरणदीक्षामुपगते ।
न चेदिष्टं दद्यादुपपदमहो कल्पलतिकाविशेषः सामान्यैः कथ-
मितरवल्लीपरिकरैः ॥ १० ॥ महांतं विश्वासं तव चरणपंकेरुह-
युगे निधायान्यत्रैवाश्रितमिह मया दैवतमुमे । तथापि त्वच्चेतो
यदि मयि न जायेत सदयं निरालंबो लंबोदरजननि कं यामि
शरणं ॥ ११ ॥ अयःस्पर्शं लग्नं सपदि लभते हेमपदवीं यथा
रथ्यापाथः शुचि भवति गंगौघमिलितम् । तथा तत्तत्पापैरति-
मलिनमंतर्मम यदि त्वयि प्रेम्णा सक्तं कथमिव न जायेत वि-
मलम् ॥ १२ ॥ त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभेन नियमस्त्वम-
र्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे । इति ग्राहुः ग्राह्यः
कमलभवनाद्यास्त्वयि मनस्तदासक्तं नक्तं दिवमुचितमीशानि
कुरु तत् ॥ १३ ॥ स्फुरन्नानारत्नस्फटिकमयभित्तिप्रतिफलच्च-

दाकारं चंचच्छशधरशिलासौधशिखरम् । मुकुन्दब्रह्मद्रप्रमृतिप-
 रिवारं विजयते तवागारं रम्यं त्रिभुवनमहाराजगृहिणि ॥ १४ ॥
 निवासः कैलासे विधिशतमखाद्याः स्तुतिकराः कुटुंबं त्रैलोक्यं
 कृतकरपुटः सिंहनिकरः । महेशः प्राणेशस्तदवनिधराधीश-
 नये न ते सौभाग्यस्य कचिदपि मनागस्ति तुलना ॥ १५ ॥
 वृषो वृद्धो यानं विषमशनमाशानिवसनं स्रशानं क्रीडाभूषण-
 गनिवहो भूषणविधिः । समग्रा सामग्री जगति विदितैव स-
 रिपोर्यदेतस्यैश्वर्यं तव जननि सौभाग्यमहिमा ॥ १६ ॥ अ-
 पत्रद्वांडप्रलयविधिनैसर्गिकमतिः स्रशानेष्वासीनः कृतभस्मि-
 लेपः पशुपतिः । दधौ कंठे हालाहलमखिलभूगोलकृपया स-
 त्याः संगत्या फलितमिति कल्याणि कलये ॥ १७ ॥ तद्वत्
 सौंदर्यं निरतिशयमालोक्य परया भियैवासीद्भंगाजलमवतु-
 शैलतनये । नदी तस्यास्ताम्यद्वदनकमलं वीक्ष्य कृपया प्रति-
 ष्ठाभातेने निजशिरसि वासेन गिरिशः ॥ १८ ॥ विशालश्रीं
 षड्रवमृगमदाकीर्णघुंसृणप्रमूनव्यामिश्रं भगवति तवाभ्यंग-
 लिलम् । समादाय स्रष्टा चलितपदपांशून्निजकरैः समाधत्ते स्रष्ट-
 विबुधपुरपंकेरुहदृशाम् ॥ १९ ॥ वसंते सानंदं कुसुमितलताभिः
 परिवृते स्फुरन्मानाग्रे वै सरसि कलहं सालिसुगले । सखीभिः
 खेलंतीं मलयपवनांदोलितजले सरेद्यस्त्वां तस्य ज्वरजनितपी-
 डापसरति ॥ २० ॥ इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीव-
 द्भगवच्छंकराचार्यविरचितानंदलहरी संपूर्णा ॥ ३७ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता ॥ ३८ ॥

॥ गीतामाहात्म्यम् ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ ॥ श्रीराधारमणाय नमः । धरोवाच ।
 भगवन्परमेशान भक्तिरव्यभिचारिणी । प्रारब्धं भुज्यमानस्य
 कथं भवति हे प्रभो ॥ १ ॥ विष्णुरुवाच । प्रारब्धं भुज्यमा-
 नो हि गीताभ्यासरतः सदा । स मुक्तः स सुखी लोके कर्मणा
 नोपलिप्यते ॥ २ ॥ महापापादिपापानि गीताध्यानं करोति चेत्
 कचित्स्पर्शं न कुर्वति नलिनीदलमंबुवत् ॥ ३ ॥ गीतायाः
 पुस्तकं यत्र यत्र पाठः प्रवर्तते । तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रया-
 गादीनि तत्र वै ॥ ४ ॥ सर्वे देवाश्च ऋषयो योगिनः पद्मगाश्च
 ये । गोपाला गोपिका वापि नारदोद्भवपार्षदेः ॥ ५ ॥ सहा-
 यो जायते शीघ्रं यत्र गीता प्रवर्तते । यत्र गीताविचारश्च
 पठनं पाठनं श्रुतम् । तत्राहं निश्चितं पृथ्वि निवसामि सदैव
 हि ॥ ६ ॥ गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम् ।
 गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रीन्लोकान्पालयाम्यहम् ॥ ७ ॥ गीता मे
 परमा विद्या ब्रह्मरूपा न संशयः । अर्धमात्राक्षरा नित्या
 स्थानिर्वाच्यपदात्मिका ॥ ८ ॥ चिदानंदेन कृष्णेन प्रोक्ता
 स्वमुखतोऽर्जुनम् । वेदत्रयी परानंदा तत्त्वार्थज्ञानसंयुता ॥ ९ ॥
 योऽष्टादशजपो नित्यं नरो निश्चलमानसः । ज्ञानसिद्धिं स
 लभते ततो याति परं पदम् ॥ १० ॥ पाठेऽसमर्थः संपूर्णे
 ततोऽर्धं पाठमाचरेत् । तदा गोदानजं पुण्यं लभते नात्र
 संशयः ॥ ११ ॥ त्रिभागं पठमानस्तु गंगालानफलं लभेत् ।
 पट्टशं जपमानस्तु सोमयागफलं लभेत् ॥ १२ ॥ एकाध्यायं

तु यो नित्यं पठते भक्तिसंयुतः । रुद्रलोकमवाप्नोति गच्छ
 भूत्वा वसेच्चिरम् ॥ १३ ॥ अध्यायं श्लोकपादं वा नित्यं वा
 पठते नरः । स याति नरतां यावन्मन्वंतरं वसुंधरे ॥ १४ ॥
 गीतायाः श्लोकदशकं सप्त पञ्च चतुष्टयम् । द्वौ त्रीनेकं वदन्
 वा श्लोकानां यः पठेन्नरः ॥ १५ ॥ चंद्रलोकमवाप्नोति त्रि-
 णामयुतं ध्रुवम् । गीतापाठसमायुक्तो मृतो मानुषतां व्रज-
 ॥ १६ ॥ गीताभ्यासं पुनः कृत्वा लभते मुक्तिमुच्यते ।
 गीतित्युच्चारसंयुक्तो म्रियमाणो गतिं लभेत् ॥ १७ ॥ गीता-
 श्रवणासक्तो महापापयुतोऽपि वा । वैकुण्ठं समवाप्नोति विमुक्त-
 सह मोदते ॥ १८ ॥ गीतार्थं ध्यायते नित्यं कृत्वा कर्मणि
 भूरिशः । जीवन्मुक्तः स विज्ञेयो देहांते परमं पदम् ॥ १९ ॥
 गीतामाश्रित्य बहवो भूभुजो जनकादयः । निर्धूतकल्मष-
 लोके गीता याताः परं पदम् ॥ २० ॥ गीतायाः पठनं कृत्वा
 माहात्म्यं नैव यः पठेत् । वृथा पाठो भवेत्तस्य श्रम एव फल-
 हतः ॥ २१ ॥ एतन्माहात्म्यसंयुक्तं गीताभ्यासं करोति स
 स तत्फलमवाप्नोति दुर्लभां गतिमाप्नुयात् ॥ २२ ॥
 उवाच । माहात्म्यमेतद्गीताया मया प्रोक्तं सनातनम् ।
 गीतान्ते च पठेद्यस्तु यदुक्तं तत्फलं लभेत् ॥ २३ ॥
 श्रीवाराहपुराणे श्रीगीतामाहात्म्यं संपूर्णम् ॥

॥ श्रीमद्भगवद्गीता ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥ ॐ
 श्रीभगवद्गीतामालामंत्रस्य भगवान्वेदव्यास ऋषिः । अर्च-
 छंदः । श्रीकृष्णः परमात्मा देवता । अशोच्यानन्वशोचनी

प्रज्ञावादांश्च भापस इति वीजम् । सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं
 शरणं ब्रजेति शक्तिः । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि
 मा शुच इति कीलकम् । नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति
 पावक इत्यंगुष्ठाभ्यां नमः । न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति
 मारुत इति तर्जनीभ्यां नमः । अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्यो-
 ऽशोष्य एव चेति मध्यमाभ्यां नमः । नित्यः सर्वगतः स्थाणु-
 रचलोऽयं सनातन इत्यनामिकाभ्यां नमः । पश्य मे पार्थ
 रूपाणि शतशोऽथ सहस्रश इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः । नाना-
 विधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि चेति करतलकरपृष्ठाभ्यां
 नमः । इति करन्यासः । अथ हृदयादिन्यासः । नैनं छिंदन्ति
 शस्त्राणि नैनं दहति पावक इति हृदयाय नमः । न चैनं
 क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत इति शिरसे स्वाहा । अच्छे-
 द्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव चेति शिखायै वषट् ।
 नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातन इति कवचाय हुम् ।
 पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रश इति नेत्रत्रयाय
 वौषट् । नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि चेति
 अस्त्राय फट् ॥ श्रीकृष्णप्रीत्यर्थं पाठे विनियोगः ॥ ॐ पार्थाय
 प्रतिबोधितां भगवता नारायणेन स्वयं व्यासेन ग्रथितां पुरा-
 णमुनिना मध्येमहाभारतम् । अद्वैतामृतवर्षिणीं भगवतीमष्टा-
 दशाध्यायिनीमंत्र त्वामनुसंदधामि भगवद्गीते भवद्वेषिणीम्
 ॥ १ ॥ नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविंदायतपत्र-
 नेत्र । येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः
 ॥ २ ॥ प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये । ज्ञानमुद्राय
 कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥ ३ ॥ सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा

गोपालनन्दनः । पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीताम्
 महत् ॥ ४ ॥ वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् । देवकीपुत्रं
 मानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥ ५ ॥ भीष्मद्रोणतटा जयद्रथ
 जला गांधारनीलोत्पला शल्यग्राहवती कृपेण बहनी जयन्ती
 वेलाकुला । अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा दुर्योधनाकर्षणी
 सोत्तीर्णा खलु पांडवै रणनदी कैवर्तकः केशवः ॥ ६ ॥ एतान्
 शर्यवचःसरोजममलं गीतार्थगंधोत्कटं नानाख्यानकंसं
 हरिकथासंबोधनावोधितम् । लोके सज्जनपदपदैरहरहः पठन्
 यमानं मुदा भूयान्भारतपङ्कजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥ ७ ॥
 मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् । यत्कृपा वन्द्यं
 वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥ ८ ॥ यं ब्रह्माचरुणेंद्ररुद्रमस्तुतुं न
 दिव्यैः स्तवैर्वेदैः सांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सात्विकं
 ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो यत्नात्
 विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः ॥ ९ ॥ इति ध्यानम्

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः
 मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥ संजय उवाच
 दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा । आचार्यमुपसंगम्य
 राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥ पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्य व्यूढं
 चमूम् । व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥
 शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि । युयुधानो विराटश्च
 द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥ धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च
 वीर्यवान् । पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥
 युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् । सौभद्रो द्रौपदेश्च

सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥ अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध
 द्विजोत्तम । नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥
 भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः । अश्वत्थामा विक-
 र्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥ ८ ॥ अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे
 त्यक्तजीविताः । नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥
 अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् । पर्याप्तं त्विदमे
 तेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥ अयनेषु च सर्वेषु
 यथाभागमवस्थिताः । भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव
 हि ॥ ११ ॥ तस्य संजनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः ।
 सिंहनादं विनद्योच्चैः शंखं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥ ततः
 शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः । सहसैवाभ्यहन्यन्त स
 शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥ ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यंदने
 स्थितौ । माधवः पांडवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥
 पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः । पांडूं दध्मौ महाशंखं
 भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥ अनन्तविजयं राजा कुंतीपुत्रो
 युधिष्ठिरः । नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥
 काश्यश्च परमेष्वासः शिखंडी च महारथः । धृष्टद्युम्नो विरा-
 टश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥ द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः
 पृथिवीपते । सौभद्रश्च महाबाहुः शंखान्दध्मुः पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥
 स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् । नभश्च पृथिवीं
 चैव तुमुलो द्यनुनादयन् ॥ १९ ॥ अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा
 धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः । प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः
 ॥ २० ॥ हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते । अर्जुन
 उवाच ॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

यावदेतान्निरीक्ष्येऽहं योद्धुकामानवस्थितान् । कैर्मया स
 योद्धव्यमस्मिन्नणसमुद्यमे ॥ २२ ॥ योत्स्यमानानवेधेऽहं
 एतेऽत्र समागताः ॥ धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षि
 ॥ २३ ॥ संजय उवाच ॥ एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशो
 भारत । सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
 भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् । उवाच
 पश्यैतान्समवेतान्कुरुनिति ॥ २५ ॥ तत्रापश्यत्स्थितान्पा
 पिद्वनथ पितामहान् । आचार्यान्मातुलान्भ्रातृपुत्रान्यौत्रान्
 र्खींस्तथा ॥ २६ ॥ श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि । त
 न्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्वंधूनवस्थितान् ॥ २७ ॥ कृष्ण
 परयाविष्टो विपीदन्निदमब्रवीत् ॥ अर्जुन उवाच ॥ कृष्ण
 खजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥ सीदंति मे
 गात्राणि मुखं च परिशुष्यति । वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्ष
 जायते ॥ २९ ॥ गांडीवं संसते हस्ताच्चक्रैव परिदहते
 न च शत्रोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥ नि
 त्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव । न च श्रेयोऽप्युप
 मि हत्वा खजनमाहवे ॥ ३१ ॥ न कांक्षे विजयं कृष्ण न
 राज्यं सुखानि च । किं नो राज्येन गोविंद किं भोगैर्जीवि
 तेन वा ॥ ३२ ॥ येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखा
 च । त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥ ३३ ॥
 आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः । मातु
 लश्चशुराः पौत्राः श्यालाः संबन्धिनस्तथा ॥ ३४ ॥ एतान्
 हंतुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन । अपि त्रैलोक्यराज
 हेतोः किं नु महीकृते ॥ ३५ ॥ निहत्य धार्तराष्ट्रान्

प्रीतिः स्याज्जनार्दन । पापमेवाश्रयेदसान्द्रहृत्तैतानाततायिनः
 ॥ ३६ ॥ तस्मान्नार्हा वयं हंतुं धार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान् । स्वजनं
 हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥ यद्यप्येते न
 पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः । कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च
 पातकम् ॥ ३८ ॥ कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादसान्निवर्तितुम्
 कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥ कुलक्षये प्रण-
 श्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः । धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभि-
 भवत्युत ॥ ४० ॥ अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
 स्त्रीषु दुष्टासु चार्णव्य जायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥ संकरो
 नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च । पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिं-
 डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥ दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः ।
 उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥ उत्सन्न-
 कुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन । नरके नियतं वासो भवती-
 त्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥ अहो वत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता
 वयम् । यद्राज्यसुखलोभेन हंतुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥ यदि
 मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः । धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे
 क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥ संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वाऽर्जुनः
 संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् । विसृज्य सशरं चापं शोकसंवि-
 ग्रमानसः ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतामूपनिषत्सु ब्रह्मवि-
 द्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम
 प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ संजय उवाच ॥ तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णकुलेक्ष-
 णम् । विपीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥ श्रीभ-
 गवानुवाच ॥ कुतस्ता कश्मलमिदं विषमे समुपि ॥

अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥ क्लैब्यं मा स गम-
 पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते । क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्तोत्तिष्ठ परंत-
 ॥ ३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च
 मधुसूदन । इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥
 गुरुनहत्वा हि महानुभावान् श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
 हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव भुंजीय भोगान्बुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥
 न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः ।
 यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्रा-
 ॥ ६ ॥ कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंभूत-
 ताः । यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां
 त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥ न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोक-
 मुच्छोपणमिन्द्रियाणाम् । अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुता-
 णामपि चाधिपत्यम् ॥ ८ ॥ संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वा
 हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप । न योत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा
 तूर्णान् बभूव ह ॥ ९ ॥ तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव माता ।
 सेनयोरुभयोर्मध्ये विपीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥ श्रीभगवा-
 नुवाच ॥ अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भापसे । गता-
 स्तनगतास्रंश्च नानुशोचन्ति पंडिताः ॥ ११ ॥ न त्वेवाहं जरा-
 नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः । न चैव न भविष्यामः सौ-
 वयमतः परम् ॥ १२ ॥ देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं
 जरा । तथा देहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥ माया-
 स्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः । आगमापायिनोऽपि
 त्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥ यं हि न व्यथयंत्येते पु-
 नरुपर्यभ ॥ समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः । उभयोरपि
दृष्टोऽस्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥ अविनाशि तु तद्विद्धि
येन सर्वमिदं ततम् ॥ विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति
॥ १७ ॥ अंतर्वत इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः । अना-
शिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥ य एनं वेत्ति
हंतारं यश्चैनं मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतो नायं
हंति न हन्यते ॥ १९ ॥ न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वा न भूयः । अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥ वेदाविनाशिनं नित्यं य
एनमजमव्ययम् । कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हंति कम्
॥ २१ ॥ वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि शृङ्गाति
नरोऽपराणि । तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति
नवानि देही ॥ २२ ॥ नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति
पावकः । न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३ ॥
अच्छेद्योऽयमदाहोऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च । नित्यः सर्वगतः
स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥ अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयम-
विकार्योऽयमुच्यते । तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि
॥ २५ ॥ अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ॥
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥ जातस्य हि
ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं
शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥ अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि
भारत । अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥
आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्ब्रूदति तथैव चान्यः । आश्च-
र्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत । तस्मात्सर्वाणि भूतानि
 न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥ स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न वि-
 पितुमर्हसि । धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥
 यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् । सुखिनः क्षत्रि-
 पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥ अथ चेत्त्वमिमं धर्म-
 संग्रामं न करिष्यसि । ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापम-
 प्स्यसि ॥ ३३ ॥ अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽन्यथा
 संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥ भयाद्गता-
 परतं मंस्यन्ते तां महारथाः । येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यात्वि-
 लाघवम् ॥ ३५ ॥ अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाहिम् ।
 निदंतस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥ हतो व-
 प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् । तस्मादुत्तिष्ठ धैर्य-
 युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥ सुखदुःखे समे कृत्वा लाभाला-
 जयाजयौ । ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥
 एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु । युद्धा यु-
 यया पार्थ कर्मबंधं ग्रहास्यसि ॥ ३९ ॥ नेहाभिक्रमनाशो-
 ग्रत्यवायो न विद्यते । स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते मह-
 भयात् ॥ ४० ॥ व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन । व-
 शाखाह्वनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥ याकि-
 ण्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः । वेदवादरताः पार्थ नान्य-
 स्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥ कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफल-
 प्रदाम् । क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥
 भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहतचेतसाम् । व्यवसायात्मिका बु-
 द्धिर्मायया न विधीयते ॥ ४४ ॥ त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रिगु-

भवार्युन । निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥
यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके । तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्म-
णस्य विजानतः ॥ ४६ ॥ कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदा-
चन । मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥
योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय । सिद्ध्यसिद्ध्योः
समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥ दूरेण ह्यवरं कर्म
बुद्धियोगाद्धनंजय । बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः
॥ ४९ ॥ बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते । तस्माद्योगाय
युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥ कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं
त्यक्त्वा मनीषिणः । जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम्
॥५१॥ यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति । तदा गन्तासि
निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥ श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा
स्थास्यति निश्चला । समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि
॥५३॥ अर्जुन उवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य
केशव । स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत ब्रजेत किम् ॥ ५४ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनो-
गतान् । आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः । वीतरागभयक्रोधः
स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥ यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य
शुभाशुभम् । नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः । इंद्रियाणीन्द्रियार्थ-
भ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥ विषया विनिवर्तते निरा-
हारस्य देहिनः । रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः । इंद्रियाणि प्रमाथीनि

हरन्ति प्रसभं मनः ॥ ६० ॥ तानि सर्वाणि संयम्य युज
 आसीत मत्परः । वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता
 ॥ ६१ ॥ ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते । संगस्तं
 जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२ ॥ क्रोधाद्भ्रमो
 संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो
 बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥ रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयाति-
 द्रियैश्चरन् । आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥
 प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते । प्रसन्नचेतसो ह्यस्य
 बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥ नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य
 भावना । न चाभावयतः शान्तिरशांतस्य कुतः सुखम् ॥ ६६ ॥
 इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते । तदस्य हरति प्रज्ञां
 वायुर्नावमिवांभसि ॥ ६७ ॥ तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतवानि
 सर्वशः । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥
 या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी । यस्यां जाग्रति
 भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ ६९ ॥ आपूर्यमाणमक्षरं
 प्रविष्टं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् । तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति
 सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥ ७० ॥ विहाय कामान्
 सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः । निर्ममो निरहंकारः स शान्तिम-
 धिगच्छति ॥ ७१ ॥ एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य
 विमुह्यति । स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥
 इति श्रीम० सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच ॥ ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्न
 नार्दन । तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥
 व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे । तदेकं वद निश्चितं

येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ लोके-
 ऽस्मिन्निविधा निष्ठा पुरा प्रोक्तो मयानघ । ज्ञानयोगेन सां-
 ख्यानं कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥ न कर्मणामनारंभाच्चै-
 ष्कर्म्यं पुरुषोऽश्रुते । न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति
 ॥ ४ ॥ न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् । कार्यते
 ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥ कर्मेन्द्रियाणि संयम्य
 य आस्ते मनसा स्मरन् । इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः
 स उच्यते ॥ ६ ॥ यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
 कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥ नियतं कुरु
 कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः । शरीरयात्रापि च ते न प्रसि-
 द्धेदकर्मणः ॥ ८ ॥ यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
 तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥ ९ ॥ सहयज्ञाः प्रजाः
 सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्वमेप वोऽस्तिष्ट-
 कामधुक् ॥ १० ॥ देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः ।
 परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥ इष्टान्भोगान्हि
 वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तान्प्रदायैभ्यो यो भुंक्ते
 स्तेन एव सः ॥ १२ ॥ यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यंते सर्वकि-
 ल्विपैः । भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥
 अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः । यज्ञाद्भवति पर्जन्यो
 यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥ कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरस-
 मुद्भवम् । तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
 एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः । अघायुरिन्द्रियारामो
 मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥ यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मवृ-
 त्तश्च मानवः । आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन । न चास्य सर्वभूतेषु
 कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥ तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म
 समाचर । असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥
 कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः । लोकसंग्रहमेवापि
 संपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥ यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतौ
 जनः । स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥ न वं
 पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन । नानवाप्तमवाप्तव्यं क्व
 एव च कर्मणि ॥ २२ ॥ यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यन-
 द्रितः । मम वर्त्मानुवर्तते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥
 उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् । संकरस्य च कर्त्ता
 स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥ सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो
 यथा कुर्वन्ति भारत । कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्
 ॥ २५ ॥ न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् । जोषयेत्स-
 र्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥ प्रकृतेः क्रियमा-
 णानि गुणैः कर्माणि सर्वशः । अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति
 मन्यते ॥ २७ ॥ तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः । गुण-
 गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥ प्रकृतेर्गुणसंमूहा-
 सज्जते गुणकर्मसु । तानकृत्स्नविदो मंदान्कृत्स्नविन्न विचालयन्
 ॥ २९ ॥ मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा । निरा-
 शीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥ ये मे मतमिदं
 नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः । श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि
 कर्मभिः ॥ ३१ ॥ ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम् ।
 सर्वज्ञानविमूढास्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥ सदृशं चेष्ट-
 स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि । प्रकृतिं यांति भूतानि निग्रहः किं

करिष्यति ॥ ३३ ॥ इंद्रियस्येंद्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
 तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥ श्रेयान्स्व-
 धर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् । स्वधर्मे निधनं श्रेयः
 परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥ अर्जुन उवाच । अथ केन प्रयु-
 क्तोऽयं पापं चरति पूरुषः । अनिच्छन्नपि वाष्पेय बलादिव
 नियोजितः ॥ ३६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ काम एष क्रोध
 एष रजोगुणसमुद्भवः । महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरि-
 णम् ॥ ३७ ॥ धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च । यथो-
 ल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥ आवृतं ज्ञानमेतेन
 ज्ञानिनो नित्यवैरिणा । कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणानलेन च
 ॥ ३९ ॥ इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते । एतैर्विमो-
 हयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥ तस्माच्चमिंद्रियाण्यादौ
 नियम्य भरतर्षभ । पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्
 ॥ ४१ ॥ इंद्रियाणि पराण्याहुरिंद्रियेभ्यः परं मनः । मनसस्तु
 परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥ एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा
 संस्तभ्यात्मानमात्मना । जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरास-
 दम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासूप० कर्मयोगो नाम
 तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्य-
 यम् । विवस्वान्मनवे ग्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥ एवं परंप-
 राप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः । स कालेनेह महता योगो नष्टः
 परंतप ॥ २ ॥ स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
 भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥ अर्जुन
 उवाच । अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः । कथमेत-

द्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥ श्रीभगवानु-
 वाच । बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन । तान्मं
 वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥ अजोऽपि सन्नव्ययात्मा
 भूतानामीश्वरोऽपि सन् । प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्बाह-
 मायया ॥ ६ ॥ यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
 अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥ परि-
 णाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् । धर्मसंस्थापनार्थां
 संभवामि युगे युगे ॥ ८ ॥ जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं
 वेत्ति तत्त्वतः । त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन
 ॥ ९ ॥ वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः । शान्ता
 ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥ ये यथा मां प्रपद्ये
 तांस्तथैव भजाम्यहम् । मम वर्त्मानुवर्तते मनुष्याः पार्थ सर्वज-
 ॥ ११ ॥ कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः । किं
 हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥ चातुर्वर्ण्यं य-
 स्यष्टं गुणकर्मविभागशः । तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तार-
 व्ययम् ॥ १३ ॥ न मां कर्माणि लिपन्ति न मे कर्मफले सता-
 इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥ ए-
 ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि सुमुक्षुभिः । कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्व-
 पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥ किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽज्यो-
 मोहिताः । तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽनुभवा-
 ॥ १६ ॥ कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः । ज-
 र्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥ कर्मण्यकर्म-
 पश्येदकर्मणि च कर्म यः । स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्त-
 कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥ यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंक्रान्ति-

जिताः । ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥
 त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः । कर्मण्यभिप्रवृत्तो-
 ऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ २० ॥ निराशीर्यतचित्तात्मा
 त्यक्तसर्वपरिग्रहः । शरीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्
 ॥ २१ ॥ यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वंद्वातीतो विमत्सरः । समः
 सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निवद्व्यते ॥ २२ ॥ गतसंगस्य
 मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः । यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रवि-
 लीयते ॥ २३ ॥ ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
 ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥ दैवमेवापरे
 यज्ञं योगिनः पर्युपासते । ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति
 ॥ २५ ॥ श्रोत्रादीर्नीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति । शब्दा-
 दीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥ सर्वाणीन्द्रियक-
 र्माणि प्राणकर्माणि चापरे । आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदी-
 पिते ॥ २७ ॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे । स्वाध्या-
 यज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥ अपाने जुह्वति
 प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे । प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामप-
 रायणाः ॥ २९ ॥ अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
 सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥ यज्ञशिष्टाभृ-
 तभुजो यांति ब्रह्म सनातनम् । नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतो-
 ऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥ एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो
 मुखे । कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥
 श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप । सर्व कर्माखिलं पार्थ
 ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥ तद्विद्धि प्रणिपातेन परिश्रमेन
 सेवया । उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडव ॥ येनः भूतान्यशेषं
 द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥ अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः
 पापकृत्तमः । सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥ ३६ ॥
 यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्वक-
 र्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥ नहि ज्ञानेन सदृशं पति-
 त्रमिह विद्यते । तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥
 ३८ ॥ श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः । ज्ञानं
 लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥ अज्ञथाश्रित-
 धानश्च संशयात्मा विनश्यति । नायं लोकोऽस्ति न मोक्षो न
 सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥ योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंनिविष्टं
 संशयम् । आत्मवंतं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥ ४१ ॥
 तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः । छित्त्वनं संन्यस्य
 योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भगवत् ज्ञानविज्ञान-
 ज्ञानयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अर्जुन उवाच ॥ संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं न
 शंससि । यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥
 श्रीभगवानुवाच ॥ संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकृत्पु-
 नर्भू । तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥
 ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति । निर्द्वेषो
 महाबाहो सुखं वंधात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥ सांख्ययोगौ पृथग्व्याख्या-
 प्रवदन्ति न पंडिताः । एकमप्यास्थितः सम्यगुभययोर्विदते फलम्
 ॥ ४ ॥ यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते । एक-
 सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥ संन्यास-
 महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः । योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न वि-
 शिङ्गते ॥ ६ ॥

णाधिगच्छति ॥ ६ ॥ योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा
जितेंद्रियः । सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥
नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् । पश्यञ्छृण्व-
न्स्पृशञ्छिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपन्श्चसन् ॥ ८ ॥ प्रलपन्विसृजन्गृह्ण-
न्नुन्मिपन्निमिपन्नपि । इंद्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तत इति धारयन्
॥ ९ ॥ ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥ कायेन मनसा
बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि । योगिनः कर्म कुर्वति संगं त्यक्त्वाऽऽ-
त्मशुद्धये ॥ ११ ॥ युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमा-
प्नोति नैष्ठिकीम् । अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते
॥ १२ ॥ सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी । नवद्वारे
पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥ न कर्तृत्वं न कर्माणि
लोकस्य सृजति प्रभुः । न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते
॥ १४ ॥ नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः । अज्ञाने-
नावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जंतवः ॥ १५ ॥ ज्ञानेन तु तदज्ञानं
येषां नाशितमात्मनः । तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्प-
रम् ॥ १६ ॥ तद्बुद्ध्यस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः । गच्छं-
त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥ विद्याविनयसंपन्ने
ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समद-
र्शिनः ॥ १८ ॥ इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥ न ब्रह्-
म्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् । स्थिरबुद्धिरसंमूढो
ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥ बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्या-
त्मनि यत्सुखम् । स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते । आद्यंतवन्तः
 कौंतेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥ शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राह
 शरीरविमोक्षणात् । कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी न
 ॥ २३ ॥ योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथातज्योतिरेव यः । स योगी
 ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥ लभन्ते ब्रह्मनिर्वाण-
 मृषयः क्षीणकल्मषाः । छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते
 रताः ॥ २५ ॥ कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्
 अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥ स्पृष्ट-
 वान् कृत्वा बहिर्बाह्यांचक्षुश्चैवांतरे भुवोः । प्राणापानौ समौ कृत्वा
 नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥ २७ ॥ यतेंद्रियमनोयुद्धिर्मुनिर्मोक्षरा-
 यणः । विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥
 भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् । सुहृदं सर्वभूतानां शाल-
 मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥ इति श्रीमद्भग० संन्यासयोगो नाम
 पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति
 यः । स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः ॥ १ ॥
 यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पांडव । न ह्यसंन्यस्त-
 कल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥ आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं क-
 कारणमुच्यते । योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥
 यदा हि नेंद्रियार्थेषु न कर्मस्वनुपज्जते । सर्वसंकल्पसंन्या-
 योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥ उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानं
 वसादयेत् । आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥
 बंधुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः । अनात्मन-
 शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥ जितात्मनः प्रशान्तस्य

मात्मा समाहितः । शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः
 ॥ ७ ॥ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेंद्रियः । युक्त इत्यु-
 च्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥ सुहृन्मित्रार्थुदासी-
 नमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु । साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते
 ॥ ९ ॥ योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः । एकाकी
 यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य
 स्थिरमासनमात्मनः । नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशो-
 त्तरम् ॥ ११ ॥ तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
 उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥ समं काय-
 शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः । संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिश-
 श्वानवलोकयन् ॥ १३ ॥ प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते
 स्थितः । मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥
 युंजन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः । शान्तिं निर्वाणप-
 रमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥ नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति
 न चैकांतमनश्नतः । न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन
 ॥ १६ ॥ युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नाव-
 बोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥ यदा विनियतं चित्त-
 मात्मन्येवावतिष्ठते । निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते
 तदा ॥ १८ ॥ यथा दीपो निवातस्थो नैगते सोपमा स्मृता ।
 योगिनो यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥ यत्रोपरमते
 चित्तं निरुद्धं योगसेवया । यत्र चैवात्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि
 तुष्यति ॥ २० ॥ सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियम् ।
 वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥ यं लब्ध्वा
 चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ॥ २२ ॥ यस्मिन्निश्चितो भ

दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ २२ ॥ तं विद्यादुःखसंयोग-
 वियोगं योगसंज्ञितम् । स निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्ण-
 चेतसा ॥ २३ ॥ संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः ।
 मनसैवेंद्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥ शनैः शनैस्त-
 मेदुच्छ्वा धृतिगृहीतया । आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिद-
 चितयेत् ॥ २५ ॥ यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिर-
 ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥ प्रज्ञातमन-
 ह्येन योगिनं सुखमुत्तमम् । उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मष-
 ॥ २७ ॥ युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः । सुखं
 ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥ सर्वभूतस्थमात्मानं
 सर्वभूतानि चात्मनि । ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन-
 ॥ २९ ॥ यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति । तस्याहं
 न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥ सर्वभूतस्थि-
 यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी
 मयि वर्तते ॥ ३१ ॥ आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति यो
 सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥
 अर्जुन उवाच ॥ योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः सामं-
 मधुसूदन । एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं
 ॥ ३३ ॥ चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् । त-
 निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥ श्रीभगवानुवाच
 च ॥ असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् । अभ्यासेन
 कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥ असंयतात्मना यो
 दुष्प्राप इति मे मतिः । वश्यात्मना तु यतता शक्योऽब्राह्मण-
 पायतः ॥ ३६ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अयतिः श्रद्धयोरिव

योगाच्चलितमानसः । अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण
गच्छति ॥ ३७ ॥ कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥ एतन्मे
संशयं कृष्ण छेतुमर्हस्यशेषतः । तदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता
न ह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पार्थ नैवेह
नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते । नहि कल्याणकृत्कश्चिद्गुर्गतिं तात
गच्छति ॥ ४० ॥ प्राप्य पुण्यकृताँल्लोकानुपित्वा शाश्वतीः
समाः । शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम् । एतद्धि दुर्लभतरं
लोके जन्म यदीदृशम् ॥ ४२ ॥ तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते
पौर्वदेहिकम् । यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥ ४३ ॥
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः । जिज्ञासुरपि योगस्य
शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४ ॥ प्रयत्नाद्यतमानस्तु योगी संशुद्धकि-
ल्विषः । अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः । कर्मि-
भ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥ योगिना-
मपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना । श्रद्धावान्भजते यो मां स मे
युक्ततमो मतः ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता० अध्यात्मयोगो
नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युंज-
न्मदाश्रयः । असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः । यज्ज्ञात्वा नेह
भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चि-
द्यतति सिद्धये । यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः

॥ ३ ॥ भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च । अहंकारो
 इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥ अपरेयमितस्तन्मा
 प्रकृतिं विद्धि मे पराम् । जीवभूतां महाबाहो ययेदं धारय
 जगत् ॥ ५ ॥ एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय । अहं
 कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥ मत्तः परतरं नान-
 त्किंचिदस्ति धनंजय । मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव
 ॥ ७ ॥ रसोऽहमप्सु कौंतेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः । प्रपञ्चः
 सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृपु ॥ ८ ॥ पुण्यो गंधः पृथिव्या
 च तेजश्चास्मि विभावसौ । जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्वि
 ॥ ९ ॥ बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् । बुद्धिर्वि-
 द्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥ बलं बलवतामस्मि
 कामरागविवर्जितम् । धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ
 ॥ ११ ॥ ये चैव सात्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये । सच
 एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥ १२ ॥ त्रिभिर्गुणमयै-
 र्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् । मोहितं नाभिजानाति मामेव न
 परमव्ययम् ॥ १३ ॥ दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
 मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४ ॥ न मां दुष्कृति-
 मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः । माययापहतज्ञाना आसुरं भावयन्-
 त्रिताः ॥ १५ ॥ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन । ज्ञानं
 जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ १६ ॥ तेषां ज्ञानी नित्यमुक्तः
 एकभक्तिर्विशिष्यते । प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम
 प्रियः ॥ १७ ॥ उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्
 आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥ १८ ॥ बहवो
 जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते । वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा

सुदुर्लभः ॥ १९ ॥ कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥ यो यो
यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति । तस्य तस्याचलां
श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥ स तया श्रद्धया युक्तस्त-
स्याराधनमीहते । लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान्
॥ २२ ॥ अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् । देवान्देव-
यजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ २३ ॥ अव्यक्तं व्यक्ति-
मापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः । परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनु-
त्तमम् ॥ २४ ॥ नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥ वेदाहं
समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन । भविष्याणि च भूतानि मां
तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥ इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यांति परंतप ॥ २७ ॥ येषां त्वंतगतं
पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ-
व्रताः ॥ २८ ॥ जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये । ते
ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥ २९ ॥ साधि-
भूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः । प्रयाणकालेऽपि च मां
ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायां ज्ञानयोगो
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अर्जुन उवाच ॥ किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषो-
त्तम । अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥ अधि-
यज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन । प्रयाणकाले च कथं
ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अक्षरं
ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते । भूतभावोद्भवकरो विसर्गः

कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥ अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ।
 अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥ अंतकाले च
 मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् । यः प्रयाति स मद्भावं याति
 नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥ यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्वे
 कलेवरम् । तं तमेवैति कौंतेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥
 तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध्य च । मय्यर्पितमनोबुद्धि-
 र्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥ अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नान-
 गामिना । परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥
 कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः । सर्वल-
 धातारमर्चित्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥ प्रयाण-
 काले मनसाञ्चलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव । श्रुवोर्मध्ये
 प्राणमावेश्य सम्यक् स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥
 यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः । यदिच्छन्ते
 ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥ सर्वद्वाराणि
 संयम्य मनो हृदि निरुद्ध्य च । मूर्ध्न्याध्यायात्मनः प्राणमासि-
 तो योगधारणाम् ॥ १२ ॥ अमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्माम-
 नुस्मरन् । यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥
 अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः । तस्याहं सुलभ-
 पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४ ॥ मामुपेत्य पुनर्जन्म
 दुःखालयमशाश्वतम् । नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां
 गताः ॥ १५ ॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
 मामुपेत्य तु कौंतेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥ सहस्रयुगप-
 र्यंतमहर्षद्ब्रह्मणो विदुः । रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो
 जनाः ॥ १७ ॥ अव्यक्ताव्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागम-

रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥ भूतग्रामः स
एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते । रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरा-
गमे ॥ १९ ॥ परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥ अव्यक्तो-
ऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् । यं प्राप्य न निवर्तते तद्धाम
परमं मम ॥ २१ ॥ पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वन-
न्यया । यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ॥ २२ ॥
यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः । प्रयाता यांति तं
कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥ अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः
पण्मासा उत्तरायणम् । तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो
जनाः ॥ २४ ॥ धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः पण्मासा दक्षिणाय-
नम् । तत्र चांद्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥
शुक्लकृष्णो गती ह्येते जगतः शाश्वते मते । एकया यात्यनावृत्ति-
मन्ययाऽऽवर्तते पुनः ॥ २६ ॥ नैते सृष्टी पार्थ जानन्
योगी मुह्यति कश्चन । तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन
॥ २७ ॥ वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् ।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्
॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता० योगशास्त्रेऽक्षरब्रह्मयोगो ना-
माष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसू-
यवे । ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् । प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं
मुमुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥ अश्रद्धानाः पुरुषा धर्मस्यास्य
परंतप । अप्राप्य मां निवर्तते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥ मया

ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना । मत्स्थानि सर्वभूतानि न
 चाहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥ न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे
 योगमैश्वरम् । भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥
 यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् । तथा सर्वाणि
 भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥ सर्वभूतानि कौंतेय प्रकृतिं
 यांति मामिकाम् । कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम्
 ॥ ७ ॥ प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः । भूतग्राह-
 मिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥ न च मां तानि कर्माणि
 निबध्न्ति धनंजय । उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥
 मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सृयते सचराचरम् । हेतुनाऽनेन कौंतेय
 जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥ अवजानंति मां मूढा मानुषीं त-
 माश्रितम् । परं भावमजानंतो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥
 मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः । राक्षसीमासुरीं चैव
 प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥ महात्मानस्तु मां पार्थ देवीं
 प्रकृतिमाश्रिताः । भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्
 ॥ १३ ॥ सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः । नमस्यंतश्च मां
 भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥ ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंती
 मामुपासते । एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥
 अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् । मंत्रोहमहमेवाज्यमह-
 मग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥ पिताहमस्य जगतो माता धाता पिता-
 महः । वेद्यं पवित्रमोकार ऋक् साम यजुरेव च ॥ १७ ॥ गति-
 र्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् । प्रभवः प्रलयः स्थानं
 निधानं बीजमव्ययम् ॥ १८ ॥ तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्यु-
 त्सृजामि च । अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं पार्थयन्ते । ते
 पुण्यमासाद्य सुरेंद्रलोकमश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥ २० ॥
 ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
 एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ २१ ॥
 अनन्याश्रितयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते । तेषां नित्याभियु-
 क्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥ २२ ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता
 यजन्ते श्रद्धयान्विताः । तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्
 ॥ २३ ॥ अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च । न तु
 मामभिजानन्ति तच्चेनातश्च्यवन्ति ते ॥ २४ ॥ यांति देवव्रता
 देवान् पितृन्यान्ति पितृव्रताः । भूतानि यांति भूतेज्या यांति
 मद्याजिनोऽपि माम् ॥ २५ ॥ पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे
 भक्त्या प्रयच्छति । तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः
 ॥ २६ ॥ यत्करोपि यदश्नासि यज्जुहोपि ददासि यत् । यत्त-
 पस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥ शुभाशुभफलैरेवं
 मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः । संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपै-
 ष्यसि ॥ २८ ॥ समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
 ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ २९ ॥ अपि
 चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मन्तव्यः स-
 म्यग्व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥ क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्व-
 च्छांतिं निगच्छति । कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रण-
 श्यति ॥ ३१ ॥ मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयो-
 नयः । स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिम्
 ॥ ३२ ॥ किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा । अनि-
 त्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥ ३३ ॥ मन्मना भव

मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि युक्तैवमात्मानं
मत्परायणः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता० राजविद्याराज-
गुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ भूय एव महाबाहो शृणु मे परमं
वचः । यत्तेऽहं प्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥
न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः । अहमादिहिं देवानां
महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥ यो मामजमनादिं च वेत्ति लोक-
महेश्वरम् । असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥
बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः । सुखं दुःखं शान्ति-
भावो भयं चाभयमेव च ॥ ४ ॥ अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं
यशोऽयशः । भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥
महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा । मद्भावा मानसा ज्ञा-
तेषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥ एतां विभूतिं योगं च मम
वेत्ति तत्त्वतः । सोऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते । इति मत्वा भजन्ते मां
बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥ मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तं
परस्परम् । कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९ ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् । ददामि बुद्धियोगं
येन मामुपयांति ते ॥ १० ॥ तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञात-
तमः । नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥
अर्जुन उवाच ॥ परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान् । पुन-
शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥ १२ ॥ आहुस्तामृप-
सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा । असितो देवलो व्यासः स्वयं च
ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥ सर्वमेतद्वत् मन्ये यन्मां वदसि केशव

नहि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवाः ॥ १४ ॥ स्वयमे-
 वात्मनाऽऽत्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम । भूतभावन भूतेश देवदेव
 जगत्पते ॥ १५ ॥ वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।
 याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥ कथं
 विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिंतयन् । केषु केषु च भावेषु
 चिंत्योऽसि भगवन्मया ॥ १७ ॥ विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं
 च जनार्दन । भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्
 ॥ १८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हंत ते कथयिष्यामि दिव्या
 ह्यात्मविभूतयः । प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यंतो विस्तरस्य मे
 ॥ १९ ॥ अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः । अहमा-
 दिश्च मध्यं च भूतानामंत एव च ॥ २० ॥ आदित्यानामहं
 विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान् । मरीचिर्मरुतामसि नक्षत्राणामहं
 शशी ॥ २१ ॥ वेदानां सामवेदोऽसि देवानामसि वासवः ।
 इंद्रियाणां मनश्चासि भूतानामसि चेतना ॥ २२ ॥ रुद्राणां
 शंकरश्चासि चित्तेशो यक्षरक्षसाम् । वसूनां पावकश्चासि मेरुः
 शिखरिणामहम् ॥ २३ ॥ पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ
 बृहस्पतिम् । सेनानीनामहं स्कंदः सरसामसि सागरः ॥ २४ ॥
 महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम् । यज्ञानां जपयज्ञोऽसि
 स्यावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥ अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां
 च नारदः । गंधर्वाणां चित्ररथः सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ २६ ॥
 उच्चैःश्रवसमश्वानां विद्धि माममृतोद्भवम् । ऐरावतं गजेंद्राणां
 नराणां च नराधिपम् ॥ २७ ॥ आयुधानामहं वज्रं धेनूनाम-
 सि कामधुक् । प्रजनश्चासि कंदर्पः सर्पाणामसि वासुकिः ॥ २८ ॥
 अनंतश्चासि नागानां वरुणो यादसामहम् । पितॄणामर्यमा

चासि यमः संयमतामहम् ॥ २९ ॥ ग्रहादश्वासि दैत्यानां
 कालः कलयतामहम् । मृगाणां च मृगेंद्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षि-
 णाम् ॥ ३० ॥ पवनः पवतामसि रामः शस्त्रभृतामहम् ।
 झपाणां मकरश्चासि स्रोतसामसि जाह्नवी ॥ ३१ ॥ सर्गाणा-
 मादिरंतश्च मध्यं चैवाहमर्जुन । अध्यात्मविद्या विद्यानां बाद-
 प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥ अक्षराणामकारोऽसि द्वंद्वः सामासि-
 कस्य च । अहमेवाक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥
 मृत्युः सर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् । कीर्तिः श्रीर्वान-
 नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥ ३४ ॥ बृहत्साम न्या-
 साम्नां गायत्री छंदसामहम् । मासानां मार्गशीर्षोऽहमर्जुन
 कुसुमाकारः ॥ ३५ ॥ द्यूतं छलयतामसि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
 जयोऽसि व्यवसायोऽसि सत्त्वं सत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥ वृष्णीनां
 वासुदेवोऽसि पांडवानां धनंजयः । मुनीनामप्यहं व्यासः
 कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥ दंडो दमयतामसि नीतिरासि
 जिगीषताम् । मौनं चैवासि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम्
 ॥ ३८ ॥ यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन । न तदस्ति
 विना यत्स्थान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥ नांतोऽस्ति मया
 दिव्यानां विभूतीनां परंतप । एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्वि-
 स्तरो मया ॥ ४० ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
 तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंशसंभवम् ॥ ४१ ॥ अथवा
 बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन । विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन
 स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता० विभूतियो-
 नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच ॥ मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञि-
तम् । यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥ मवा-
प्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया । तत्तः कमलपत्राक्ष
माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ २ ॥ एवमेतद्यथात्थ त्वमात्मानं
परमेश्वर । द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥
मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो । योगेश्वर ततो मे
त्वं दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पश्य
मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः । नानाविधानि दिव्यानि
नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥ पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौ
मरुतस्तथा । बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याद्य सचराचरम् । मम देहे गुडाकेश
यच्चान्यद्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥ न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव
स्वचक्षुषा । दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥
संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वा ततो राजन् महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥ अनेकवक्त्रनयन-
मनेकान्द्रुतदर्शनम् । अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम्
॥ १० ॥ दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनम् । सर्वाश्चर्य-
मयं देवमनंतं विश्वतोमुखम् ॥ ११ ॥ दिवि सूर्यसहस्रस्य भवे-
द्युगपदुत्थिता । यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः
॥ १२ ॥ तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा । अपश्यदेव-
देवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ १३ ॥ ततः स विस्मयाविष्टो
हृष्टरोमा धनंजयः । ग्रणम्य शिरसा देवं कृतांजलिरभापत
॥ १४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ पश्यामि देवांस्तव देव देहे सर्वा-
स्तथा भूतविशेषसंघान् । ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थमुपींश्च सर्वा-

नुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥ अनेकबाहूदरवक्रनेत्रं पश्यामि तं
 सर्वतोऽनंतरूपम् । नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वे
 श्वर विश्वरूपम् ॥ १६ ॥ किरीटिनं गदिनं चक्रिणं च तेजो
 राशिं सर्वतो दीप्तिमंतम् । पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समं तद्
 दीप्तानलार्कद्युदिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥ त्वमक्षरं परमं वेदिन्यं
 त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् । त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप
 सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥ अनादिमध्यांतमनंतवर्
 र्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् । पश्यामि त्वां दीप्तहुताश्वक्रं स्तो
 जसा विश्वमिदं तपंतम् ॥ १९ ॥ द्यावापृथिव्योरिदमंतरं हि
 व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः । दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोक
 त्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥ अमी हि त्वां सुरतम
 विशंति केचिद्भीताः प्रांजलयो गृणंति । स्वस्तीत्युक्त्वा महति
 सिद्धसंधाः स्तुवंति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ २१ ॥
 रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्पपाव
 गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंधा वीक्षंते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥
 रूपं महत्ते बहुवक्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरूपादम् । बहुदं
 बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाऽहम् ॥ २३ ॥
 नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रम् । दृ
 हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा धृतिं न विंदामि शमं च विष्णो ॥ २४ ॥
 दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसंनिभानि । दि
 न जाने न लभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥
 अमी च त्वां धृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहैवावनिपालसंघैः । ह
 ष्मो द्रोणः सूतपुत्रस्तथासौ सहासदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥
 वक्राणि ते त्वरमाणा विशंति दंष्ट्राकरालानि भयानकाणि

केचिद्विलग्ना दशनांतरेषु संदृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः
 ॥ २७ ॥ यथा नदीनां ब्रह्मवैष्णवेणाः समुद्रमेवाभिमुखं
 द्रवन्ति । तथा तवामी नरलोकवीरा विशन्ति वक्राण्यभिविज्व-
 लन्ति ॥ २८ ॥ यथा प्रदीप्तं ज्वलनं पतंगा विशन्ति नाशाय
 समुद्रवेगाः । तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवापि वक्राणि
 समुद्रवेगाः ॥ २९ ॥ लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्सम-
 ग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः । तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः
 प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥ आख्याहि मे को भवानुरुग्रपो नमो-
 ऽस्तु ते देववर प्रसीद । विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं न हि
 प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
 कालोऽसि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
 ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः
 ॥ ३२ ॥ तस्माच्चमृत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्धृष्व राज्यं
 समुद्रम् । मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसा-
 चिन् ॥ ३३ ॥ द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्या-
 नपि योधवीरान् । मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युद्धस्य
 जेताऽसि रणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥ संजय उवाच ॥ एत-
 द्भृता वचनं केशवस्य कृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी । नमस्कृत्वा
 भूय एवाह कृष्णं सगद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥
 अर्जुन उवाच ॥ स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्य-
 नुरज्यते च । रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च
 सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥ कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे
 ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे । अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदस-
 चत्परं यत् ॥ ३७ ॥ त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्तमस्य विश्वस्य

परं निधानम् । वेत्ताऽसि वेद्यं च परं च धाम त्वया तत्तं विश्व-
 मनंतरूप ॥ ३८ ॥ वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्तं
 प्रपितामहश्च । नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृतः पुनश्च भूयोऽपि
 नमो नमस्ते ॥ ३९ ॥ नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते
 सर्वत एव सर्व । अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समामोषि
 ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥ सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण
 हे यादव हे सखेति । अजानता महिमानं तवेदं मया प्रसादा-
 त्प्रणयेन वापि ॥ ४१ ॥ यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहा-
 शय्यासनभोजनेषु । एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये
 त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥ पितासि लोकस्य चराचरस्य तमस
 पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् । न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
 लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥ तस्मात्प्रणम्य प्रणिधान
 कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् । पितेव पुत्रस्य सत्तु
 सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥ अदृष्टपूर्वं
 हृषितोऽसि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे । तदेव मे
 दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥
 किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव । तत्तं
 रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥
 श्रीभगवानुवाच ॥ मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं रूपं परं दर्शितं
 तमात्मयोगात् । तेजोमयं विश्वमनंतमाद्यं यन्मे त्वदन्येन दृष्टं
 दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥ न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न
 तपोभिरुग्रैः । एवरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुतः
 प्रवीर ॥ ४८ ॥ मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं
 शोरमीदृशमेदम् । व्यपेतभीः प्रीतमत्ताः पुनस्त्वं तदेव मे रूपं

मिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥ संजय उवाच ॥ इत्यर्जुनं वासुदेव-
स्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः । आश्वासयामास च
भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥ अर्जुन
उवाच ॥ दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन । इदानीमस्मि
संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
सदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम । देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं
दर्शनकाक्षिणः ॥ ५२ ॥ नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न
चेज्यया । शक्य एवंविधो द्रष्टु दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन । ज्ञातुं द्रष्टुं च
तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥ मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः
संगवर्जितः । निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पांडव ॥ ५५ ॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्म० विश्वरूपदर्शनं नामै-
कादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अर्जुन उवाच ॥ एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपा-
सते । ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपा-
सते । श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥ ये त्वक्षरम-
निर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥ सर्वत्रगमचित्यं च कूटस्थमचलं
ध्रुवम् ॥ ३ ॥ संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः । ते
प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥ क्लेशोऽधिकतरस्ते-
षामव्यक्तासक्तचेतसाम् । अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहव-
द्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥ ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य
मत्पराः । अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् । भवामि न चिरात्पार्थ

मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥ मय्येव मन आधत्स्व मयि
 बुद्धिं निवेशय । निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः
 ॥ ८ ॥ अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
 अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय ॥ ९ ॥ अभ्यासे-
 ऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव । मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सि-
 द्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥ अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगसा-
 श्रितः । सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥
 श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते । ध्यानात्कर्म-
 फलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२ ॥ अद्वेष्टा सर्वभूतानां
 मैत्रः करुण एव च । निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी
 ॥ १३ ॥ संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः । मय्यर्पि-
 तमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥ यस्मान्नोद्विजते लोको
 लोकान्नोद्विजते च यः । हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः
 ॥ १५ ॥ अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः । सर्वार्थ-
 परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥ यो न हृष्यति न
 द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति । शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्
 स मे प्रियः ॥ १७ ॥ समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमा-
 नयोः । शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ १८ ॥ तु-
 ल्यनिंदास्तुतिमौनी संतुष्टो येन केनचित् । अनिकेतः स्थिरमति-
 भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥ ये तु धर्म्यामृतमिदं यद्योक्तं
 पर्युपासते । श्रद्धधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः
 ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतायाः भक्तियोगोक्तमष्टाध्यायः ॥ १२ ॥

अर्जुन उवाच ॥ प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
 एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव ॥ (अयं प्रक्षिप्तः) श्रीभग-
 वानुवाच ॥ इदं शरीरं कौंतेय क्षेत्रमित्यभिधीयते । एतद्यो-
 वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥ क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि
 सर्वक्षेत्रेषु भारत । क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥
 तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत् । स च यो यत्प्र-
 भावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥ ऋषिभिर्वहुधा गीतं छंदो-
 भिविविधैः पृथक् । ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥
 महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च । इंद्रियाणि दशैकं च
 पंच चेंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥ इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चे-
 तना धृतिः । एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥
 अमानित्वमदंभित्वमहिंसा क्षांतिरार्जवम् । आचार्योपासनं शौचं
 सैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥ इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव
 च । जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥ असक्ति-
 रनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु । नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टो-
 पपत्तिषु ॥ ९ ॥ मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
 विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥ अध्यात्मज्ञाननि-
 त्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् । एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतो-
 ज्ञ्यथा ॥ ११ ॥ ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
 अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥ सर्वतः पाणिपादं
 तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति
 ॥ १३ ॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् । असक्तं सर्व-
 भूच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥ बहिरंतश्च भूतानामचरं
 चरमेव यः । मूर्ध्नि मखादविज्ञेयं दूरस्थं जांतिके च तत् ॥ १५ ॥

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् । भूतमर्तुं च
 तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥ ज्योतिषामपि तज्ज्यो-
 तिस्तमसः परमुच्यते । ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस-
 धिष्ठितम् ॥ १७ ॥ इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
 मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥ प्रकृतिं पुरुषं
 चैव विद्ध्यनादी उभावपि । विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृ-
 तिसंभवान् ॥ १९ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
 पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥ पुरुषः प्रकृ-
 तिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् । कारणं गुणसंगोऽस्य सदस-
 द्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥ उपद्रष्टानुमंता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
 परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥ य एवं
 वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह । सर्वथा वर्तमानोऽपि न स
 भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥ ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मा-
 नमात्मना । अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ २४ ॥
 अन्ये त्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्य उपासते । तेऽपि चातितरलं ब-
 मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥ यावत्संजायते किञ्चित्सत्त्वं साव-
 रजंगमम् । क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥ समं सर्वत्र
 भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् । विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स
 पश्यति ॥ २७ ॥ समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
 न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥ प्रकृ-
 त्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः । यः पश्यति तथात्मा-
 नमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥ यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनु-
 पश्यति । तत एव च विस्तारं ब्रह्म संपद्यते तदा ॥ ३० ॥ अ-
 नादिनाभिर्गुणत्वात्परमात्मायमन्ययः । शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न

करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥ यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं
नोपलिप्यते । सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥
यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः । क्षेत्रं क्षेत्री तथा
कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरं ज्ञान-
चक्षुषा । भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्याति ते परम् ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्भ० क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्या-
यः ॥ १३ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां
ज्ञानमुत्तमम् । यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः
॥ १ ॥ इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः । सर्गेऽपि
नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥ मम योनिर्महद्ब्रह्म
तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् । संभवः सर्वभूतानां ततो भवति
भारत ॥ ३ ॥ सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥ सत्त्वं रजस्तम
इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः । निवर्धन्ति महाबाहो देहे देहिनम-
व्ययम् ॥ ५ ॥ तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् । सुख-
संगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥ रजो रागात्मकं
विद्धि तृष्णासंगसमुद्भवम् । तन्निवध्नाति कौन्तेय कर्मसंगेन
देहिनम् ॥ ७ ॥ तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निवध्नाति भारत ॥ ८ ॥ सत्त्वं सुखे
संजयति रजः कर्मणि भारत । ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे
संजयत्युत ॥ ९ ॥ रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥ १० ॥ सर्वदारेषु

देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते । ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं
 सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥ लोभः प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः
 स्पृहा । रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्पण ॥ १२ ॥
 अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च । तमस्येतानि जायन्ते
 विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥ यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति
 देहभृत् । तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥ रजसि
 प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते । तथा प्रलीनस्तमसि मूढयो-
 निषु जायते ॥ १५ ॥ कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं
 फलम् । रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥
 सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च । प्रमादमोहौ तमसो
 भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥ ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये
 तिष्ठन्ति राजसाः । जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः
 ॥ १८ ॥ नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति । गुणे-
 भ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥ गुणानेतान-
 तीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् । जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तो-
 ऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥ अर्जुन उवाच ॥ कैलिंगैस्त्रीन्गुणा-
 नेतानतीतो भवति प्रभो । किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणान-
 तिवर्तते ॥ २१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकाशं च प्रवृत्तिं
 च मोहमेव च पाण्डव । न द्वेष्टि संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि
 कांक्षति ॥ २२ ॥ उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
 गुणा वर्तन्त इत्येव योज्यतिष्ठति नङ्गते ॥ २३ ॥ समदुःखसुख-
 स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः ॥ तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनि-
 दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥ मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारि-
 पक्षयोः । सर्वारंभपरित्यागी गुणतीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते । स गुणान्समती-
त्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥ ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम-
मृतस्याव्ययस्य च । शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य
च ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गी० गुणत्रयविभागयोगो नाम
चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्य-
यम् । छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नांतो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तति भूयः ।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥
निर्मानमोहा जितसंगदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
इंद्रैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥
न तद्भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः । यद्गत्वा न निव-
र्तते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥ ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः
सनातनः । मनःपष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः । गृहीत्वैतानि संयाति
वायुर्गंधानिवाशयात् ॥ ८ ॥ श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं
घ्राणमेव च । अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥ उत्क्रा-
मंतं स्थितं वापि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् । विमूढा नानुपश्यन्ति
पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥ यतंतो योगिनश्चैनं पश्यंत्यात्म-

न्यवस्थितम् । यतंतोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यंत्यचेतंसः ॥ ११ ॥
 यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् । यच्चंद्रमसि यच्चाशं
 तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥ गामाविश्य च भूतानि धार-
 याम्यहमोजसा । पुष्णामि चौपधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसा-
 त्मकः ॥ १३ ॥ अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
 प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥ सर्वस्य
 चाहं हृदि संनिविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च । वेदैश्च सर्वै-
 रहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥ द्वाविंशो
 पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च । क्षरः सर्वाणि भूतानि कृत्-
 स्योऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदा-
 हृतः । यो लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥
 यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः । अतोऽसि लोके वेदे
 च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥ यो मामेवमसंमूढो जानाति
 पुरुषोत्तमम् । स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥
 इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ । एतद्बुद्ध्वा बुद्धिमान्
 स्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥ २० ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासू० पु-
 षोत्तमयोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ अभयं सत्तसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवसि-
 तिः । दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥ अहिंसा
 सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् । दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं
 द्वीरचापलम् ॥ २ ॥ तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमा-
 निता । भवंति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥ दंभो
 दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च । अज्ञानं चाभिजातस्य
 पार्थ संपदमासुरीम् ॥ ४ ॥ दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धाणा-

सुरी मता । माशुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥५॥ द्वौ
भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च । दैवो विस्तरशः प्रोक्त
आसुरं पार्थ मे शृणु ॥६॥ प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरा-
सुराः । न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥७॥ अस-
त्यमप्रतिष्ठं ते जगदादुरनीश्वरम् । अपरस्परसंभूतं किमन्यत्काम-
हैतुकम् ॥८॥ एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः । प्रभ-
वंत्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥९॥ काममाश्रित्य दुष्पूरं
दंभमानमदान्विताः । मोहाद्ब्रूहीत्वाऽसद्बाहान्प्रवर्ततेऽशुचित्रताः
॥१०॥ चिंतामपरिमेयां च प्रलयांतामुपाश्रिताः । कामोपभोगप-
रमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥ आशापाशशतैर्वद्धाः काम-
क्रोधपरायणाः । ईहंते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥१२॥
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् । इदमस्तीदमपि मे
भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥ असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये
चापरानपि । ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥१४॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया । यक्ष्ये
दास्यामि मोदिष्ये इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥ अनेकचि-
त्तविभ्रांता मोहजालसमावृताः । प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति
नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥ आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदा-
न्विताः । यजन्ते नामयज्ञैस्ते दंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥ अहं-
कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः । मामात्मपरदेहेषु
प्रद्विपंतोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥ तानहं द्विपतः क्रूरान्संसारेषु
नराधमान् । क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि । मामप्राप्यैव
कैतिय ततो यांत्यधमां गतिम् ॥ २० ॥ त्रिविधं नरकस्येदं

द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतन्त्रयं
 त्यजेत् ॥ २१ ॥ एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः ।
 आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥ यः
 शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः । न स सिद्धिमवाप्नोति
 न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥ तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्या-
 कार्यव्यवस्थितौ । ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि
 ॥ २४ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतासू० देवासुरसंपद्विभागयोगो
 नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अर्जुन उवाच ॥ ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धा-
 न्विताः ॥ तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥
 श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा
 स्वभावजा । सात्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु
 ॥ २ ॥ सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत । श्रद्धामयोजं
 पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥ यजन्ते सात्विका देवा-
 न्यक्षरक्षांसि राजसाः । प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा
 जनाः ॥ ४ ॥ अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
 दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥ कर्षयन्तः
 शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः । मां चैवातःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासु-
 रनिश्चयान् ॥ ६ ॥ आहारस्तपिसर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
 यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥ आयुःसत्त्व-
 लारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः । रस्याः स्निग्धाः स्थिरा ह्येषा
 आहाराः सात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥ कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्ण-
 रुक्षविदाहिनः ॥ आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः
 ॥ ९ ॥ यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् । उच्छिष्टमपि

चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥ अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो-
विधिदृष्टो य इज्यते । यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्वि-
कः ॥ ११ ॥ अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥ विधिहीन-
मसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परि-
चक्षते ॥ १३ ॥ देवद्विजगुरुग्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् । ब्रह्म-
चर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥ अनुद्वेगकरं वाक्यं
सत्यं प्रियहितं च यत् । स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप
उच्यते ॥ १५ ॥ मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥ १६ ॥ श्रद्धया परया
तप्तं तपस्तन्निविधं नरैः । अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परि-
चक्षते ॥ १७ ॥ सत्कारमानपूजार्थं तपो दंभेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ॥ १८ ॥ मूढग्राहेणा-
त्मनो यत्पीडया क्रियते तपः । परस्योत्सादनार्थं वा तत्ताम-
समुदाहृतम् ॥ १९ ॥ दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ २० ॥ यत्तु
प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः । दीयते च परिक्रिष्टं तद्दानं
राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥ अदंशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥ ॐ तत्सदिति
निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः । ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च
विहिताः पुरा ॥ २३ ॥ तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः-
क्रियाः । प्रवर्तते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः । दानक्रियाश्च विविधाः
क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः ॥ २५ ॥ सद्भावे साधुभावे च सदि-

त्येतत्प्रयुज्यते । प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥ यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते । कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥ अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् । असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता० श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अर्जुन उवाच ॥ संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् । त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥ श्री-
भगवानुवाच ॥ काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं क्वयो विदुः । सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥ त्या-
ज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः । यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ ३ ॥ निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरत-
सत्तम । त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥ यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् । यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥ ५ ॥ एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्य-
क्त्वा फलानि च । कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुच्य-
म् ॥ ६ ॥ नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते । मोहात्त-
स्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥ दुःखमित्येव यत्क-
र्म कायक्लेशभयाच्चजेत् । स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥ कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन । संगं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विको मतः ॥ ९ ॥ न द्वेष्ट्य-
कुशलं कर्म कुशले नानुपजते । त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥ नहि देहभूता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ।

यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥ अनिष्टमि-
ष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् । भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न
तु संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥ पंचैतानि महाबाहो कारणानि
निबोध मे । सांख्ये कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥ १३ ॥
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् । विविधाश्च पृथक्
चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ॥ १४ ॥ शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रा-
रभते नरः । न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः । पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न
सं पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥ यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न
लिप्यते । हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥ १७ ॥
ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना । करणं कर्म कर्तेति
त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥ ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुण-
भेदतः । प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ॥ १९ ॥
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते । अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं
विद्धि सात्त्विकम् ॥ २० ॥ पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथ-
ग्विधान् । वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥ यत्तु
कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहेतुकम् । अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्ता-
मसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥ नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥ यत्तु कामे-
प्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः । क्रियते बहुलायासं तद्रा-
जसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥ अनुबंधं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरु-
षम् । मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥ मुक्त-
संगोज्जहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः । सिद्धयसिद्धयोर्निर्विकारः
कर्ता सात्त्विक उच्यते ॥ २६ ॥ रागी कर्मफलप्रेप्सुर्बुद्धो

हिंसात्मकोऽशुचिः । हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः
 ॥ २७ ॥ अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः
 विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥ बुद्धेर्मेदं
 धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु । प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनं-
 जय ॥ २९ ॥ प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये । वधं
 मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी ॥ ३० ॥ यथा
 धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च । अथवावत्प्रजानाति बुद्धिः
 सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥ अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसा
 ब्रुता । सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥
 धृत्या यथा धारयते मनःप्राणेंद्रियक्रियाः । योगेनाव्यभिचारि-
 ण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी ॥ ३३ ॥ यथा तु धर्मकामार्था-
 न् धृत्या धारयतेऽर्जुन । प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ
 राजसी ॥ ३४ ॥ यथा स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च ।
 न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥ सुखं
 त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ । अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखांतं
 च निगच्छति ॥ ३६ ॥ यत्तदग्रे विपमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
 तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥ विपबोद्धि-
 यसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् । परिणामे विपमिव तत्सुखं राजसं
 स्मृतम् ॥ ३८ ॥ यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
 निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥ न तदस्ति
 पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः । सत्त्वं प्रकृतिर्जैर्मुक्तं यदेभिः
 स्यान्निभिर्गुणैः ॥ ४० ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप-
 कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥ शमो दमस्त-
 पः शौचं संतिर्यगश्चैव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म

स्वभावजम् ॥४२॥ शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
 दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥४३॥ कृपिगोरक्षवा-
 णिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् । परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि
 स्वभावजम् ॥४४॥ स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
 स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥ ४५ ॥ यतः प्रवृ-
 त्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् । स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं
 विंदति मानवः ॥ ४६ ॥ श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्व-
 नुष्ठितात् । स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥४७॥
 सहजं कर्म कौंतेय सदोपमपि न त्यजेत् । सर्वारंभा हि दोषेण
 धूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥ असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा
 विगतस्पृहः । नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥४९॥
 सिद्धिं प्राप्नोति यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे । समासेनैव
 कौंतेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥ बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो
 धृत्यात्मानं नियम्य च । शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्यु-
 दस्य च ॥ ५१ ॥ विविक्तसेवी लब्धाशी यतवाक्कायमानसः ।
 ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥५२॥ अहंकारं बलं
 दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् । विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय
 कल्पते ॥ ५३ ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
 समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥ भक्त्या
 मामभिजानाति यावान्यश्चास्ति तत्त्वतः । ततो मां तत्त्वतो
 ज्ञात्वा विशते तदनंतरम् ॥ ५५ ॥ सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो
 मद्यपाश्रयः । मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥५६॥
 चेत्तसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः । बुद्धियोगमुपाश्रित्य
 मच्चित्तः सततं भव ॥ ५७ ॥ मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादा-

चरिष्यसि । अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥
 यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे । मिथ्यैव व्यवसायस्ते
 प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥ स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन
 कर्मणा । कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ॥ ६० ॥
 ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति । भ्रामयन्सर्वभूतानि
 यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥ तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन
 भारत । तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतं ॥ ६२ ॥
 इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया । विमृश्यैतदशेषेण
 यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥ सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं
 वचः । शृणोऽसि मे वदमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४ ॥
 मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि सत्यं
 ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥ सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं
 शरणं ब्रज । अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥
 इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन । न चाशुश्रूषवे वाच्यं
 न च मां योऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥ य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्व-
 भिधास्यति । भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥
 न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः । भविता न च मे
 तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ॥ ६९ ॥ अध्येष्यते च य इमं धर्मं
 संवादमावयोः । ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे भक्तिः
 ॥ ७० ॥ श्रद्धावाननसूयश्च शृणुयादपि यो नरः । सोऽपि
 मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ७१ ॥ कश्चिदेतच्छ्रुत्वा
 पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा । कश्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धर्म-
 जय ॥ ७२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा
 तत्प्रसादान्मयाच्युत । स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं

तव ॥ ७३ ॥ संजय उवाच ॥ इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य
च महात्मनः । संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥
व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्ब्रह्ममहं परम् । योगं योगेश्वरात्कृष्णा-
त्साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ ७५ ॥ राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवा-
दमिममद्भुतम् । केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः
॥ ७६ ॥ तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः । विसृज्यो
मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥ यत्र योगे-
श्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः । तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा
नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥ इति श्रीमद्भगवद्गीतामूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगो नामा-
ष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ इति श्रीभगवद्गीतासमाप्ता ॥ ३८ ॥

उत्तरगीता ॥ ३९ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ अर्जुन उवाच ॥ यदेकं निष्कलं
ब्रह्म व्योमातीतं निरञ्जनम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं विनाशोत्प-
त्तिवर्जितम् ॥ १ ॥ कारणं योगनिर्मुक्तं हेतुसाधनवर्जितम् ।
हृदयाम्बुजमध्यस्थं ज्ञानज्ञेयस्वरूपकम् । तत्क्षणादेव मुच्येत
यज्ज्ञानाद्ब्रूहि केशव ॥ २ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ साधु
पृष्टं महाबाहो बुद्धिमानसि पाण्डव । यन्मां पृच्छसि तत्त्वार्थ-
मशेषं प्रवदाम्यहम् ॥ ३ ॥ आत्ममन्त्रस्य हंसस्य परस्परसमन्व-
यात् । योगेन गतकामानां भावना ब्रह्म चक्षते ॥ ४ ॥ शरी-
रिणामजस्यान्तं हंसत्वं पारदर्शनम् । हंसो हंसाक्षरं चैव कूटस्थं
यत्तदक्षरम् ॥ ५ ॥ तद्विद्वानक्षरं प्राप्य जह्यान्मरणजन्मनी
॥ ६ ॥ काकीमुखककारान्त उकारश्चेतनाकृतिः । अकारस्य च

लुप्तस्य कोऽर्थः संप्रतिपद्यते ॥ ७ ॥ गच्छँस्तिष्ठन् सदाकालं
 वायुस्वीकरणं परम् । सर्वकालप्रयोगेण सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ ८ ॥
 यावत्पश्येत् खगाकारं तदाकारं विचिन्तयेत् । खमध्ये कुरु
 चात्मानमात्ममध्ये च खं कुरु ॥ ९ ॥ आत्मानं खमयं कृत्वा
 न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ १० ॥ स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मवि-
 द्ब्रह्मणि स्थितः । वहिव्योम स्थितं नित्यं नासाग्रे च व्यवशि-
 तम् । निष्कलं तं विजानीयाच्छ्वासो यत्र लयं गतः ॥ ११ ॥
 पुटद्वयविनिर्मुक्तो वायुर्यत्र विलीयते । तत्र संस्थं मनः कृत्वा
 तं ध्यायेत्पार्थ ईश्वरम् ॥ १२ ॥ निष्कलं तं विजानीयात्तद्-
 मिरहितं शिवम् ॥ १३ ॥ प्रभाशून्यं मनःशून्यं बुद्धिशून्यं
 निरामयम् । सर्वशून्यं निराभासं समाधिस्थस्य लक्षणम् ।
 त्रिशून्यं यो विजानीयात्स तु मुच्येत बन्धनात् ॥ १४ ॥
 स्वयमुच्चलिते देहे देही न्यस्तसमाधिना । निश्चलं तं विजानी-
 यात्समाधिस्थस्य लक्षणम् ॥ १५ ॥ अमात्रं शब्दरहितं स्वरव-
 जनवर्जितम् । बिन्दुनादकलातीतं यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १६ ॥
 प्राप्ते ज्ञानेन विज्ञाने ज्ञेये च हृदि संस्थिते । लब्धशान्तिपदे
 देहे न योगो नैव धारणा ॥ १७ ॥ यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो
 वेदान्ते च प्रतिष्ठितः । तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स मह-
 श्वरः ॥ १८ ॥ नावार्थी तु भवेत्तावद्यावत्पारं न गच्छति ।
 उत्तीर्णो तु सरित्पारे नावया किं प्रयोजनम् ॥ १९ ॥ ग्रन्थ-
 भ्यस्य मेधावी ज्ञानविज्ञानतत्परः । पलालमिव धान्यार्थी
 त्यजेद्ग्रन्थमशेषतः ॥ २० ॥ उल्काहस्तो यथाकालं द्रव्यमा-
 लोक्य तां त्यजेत् । ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य ज्ञानं पश्चात्परित्यजेत्
 ॥ २१ ॥ यथाऽमृतेन तृप्तस्य पयसा किं प्रयोजनम् । एवं तं

परमं ज्ञात्वा वेदैर्नास्ति प्रयोजनम् ॥ २२ ॥ ज्ञानामृतेन तृप्तस्य
 कृतकृत्यस्य योगिनः । न चास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेन्न स
 तत्त्ववित् ॥ २३ ॥ तैलधारमिवाच्छिन्नं दीर्घघण्टानिनादवत् ।
 अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित् ॥ २४ ॥ आत्मान-
 मरणं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं
 पश्येन्निगूढवत् ॥ २५ ॥ तादृशं परमं रूपं स्मरेत्पार्थ ह्यन-
 न्यधीः । विधूमाग्निनिभं देवं पश्येदत्यन्तनिर्मलम् ॥ २६ ॥
 दूरस्थोऽपि न दूरस्थः पिण्डस्थः पिण्डवर्जितः । विमलः सर्वदा
 देही सर्वव्यापी निरञ्जनः ॥ २७ ॥ कायस्थोऽपि न कायस्थः
 कायस्थोऽपि न जायते । कायस्थोऽपि न भुञ्जानः कायस्थोऽपि
 न बध्यते । कायस्थोऽपि न लिप्तः स्यात् कायस्थोऽपि न बाध्यते
 ॥ २८ ॥ तिलमध्ये यथा तैलं क्षीरमध्ये यथा घृतम् । पुष्पमध्ये
 यथा गन्धः फलमध्ये यथा रसः ॥ २९ ॥ काष्ठाग्निवत्प्रकाशेत्
 आकाशे वायुवचरेत् ॥ ३० ॥ तथा सर्वगतो देही देहमध्ये
 व्यवस्थितः ॥ ३१ ॥ मनःस्थो देहिनां देवो मनोमध्ये व्यवस्थितः ।
 मनःस्थं मनमध्यस्थं मध्यस्थं मनवर्जितम् । मनसा मन आलोक्य
 स्वयं सिध्यन्ति योगिनः ॥ ३२ ॥ आकाशं मानसं कृत्वा मनः
 कृत्वा निरास्पदम् । निश्चलत्वं विजानीयात्समाधिस्थस्य लक्ष-
 णम् ॥ ३३ ॥ योगामृतरसं पीत्वा वायुभक्षः सदा सुखी ।
 यममभ्यसते नित्यं समाधिर्मृत्युनाशकः ॥ ३४ ॥ ऊर्ध्वशून्य-
 मधःशून्यं मध्यशून्यं यदात्मकम् । सर्वशून्यं स आत्मेति समा-
 धिस्थस्य लक्षणम् ॥ ३५ ॥ शून्यभावितभावात्मा पुण्यपापैः
 प्रमुच्यते ॥ ३६ ॥ अर्जुन उवाच ॥ अदृश्ये भावना नास्ति
 दृश्यमेतद्विनश्यति । अवर्णमस्वरं ब्रह्म कथं ध्यायन्ति योगिनः

॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ऊर्ध्वपूर्णमधःपूर्ण मध्यपूर्ण
यदात्मकम् । सर्वपूर्णं स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम्
॥ ३८ ॥ अर्जुन उवाच ॥ सालम्बस्याप्यनित्यत्वं निराल-
म्बस्य शून्यता । उभयोरपि दोषत्वात्कथं ध्यायन्ति योगिनः
॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हृदयं निर्मलं कृत्वा चिन्त-
यित्वाप्यनामयम् । अहमेव इदं सर्वमिति पश्येत्परं सुखी ॥ ४० ॥
अर्जुन उवाच ॥ अक्षराणि समात्राणि सर्वे विन्दुसमा-
श्रिताः । विन्दुर्भिद्यति नादेन स नादः केन भिद्यते ॥ ४१ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो
ध्वनिः । ध्वनेरन्तर्गतं ज्योतिर्ज्योतिरन्तर्गतं मनः ॥ ४२ ॥
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ओङ्का-
रध्वनिनादेन वायोः संहरणान्तिकम् । निरालम्बं समुद्दिश्य यत्र
नादो लयं गतः ॥ ४३ ॥ अर्जुन उवाच ॥ भिन्ने पञ्चा-
त्मके देहे गते पञ्चसु पञ्चधा । प्राणैर्विमुक्ते देहे तु धर्माधर्मौ
क गच्छतः ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ धर्माधर्मौ मन-
श्चैव पञ्चभूतानि यानि च । इन्द्रियाणि च पञ्चैव याथान्याः
पञ्चदेवताः ॥ ४५ ॥ ताश्चैव मनसा सर्वे नित्यमेवाभिमानतः ।
जीवेन सह गच्छन्ति यावत्तत्त्वं न विन्दति ॥ ४६ ॥ अर्जुन
उवाच ॥ स्थावरं जङ्गमं चैव यत्किञ्चित्सचराचरम् । जीवा
जीवेन सिध्यन्ति स जीवः केन सिध्यति ॥ ४७ ॥ श्रीभ-
गवानुवाच ॥ मुखनासिकयोर्मध्ये प्राणः संचरते सदा ।
आकाशः पिवते प्राणं स जीवः केन जीवति ॥ ४८ ॥ अर्जुन
उवाच ॥ ब्रह्माण्डव्यापितं व्योम व्योम्ना चावेष्टितं जगत् ।
अन्तर्बहिश्च तम्योम कथं देवो निरञ्जनः ॥ ४९ ॥ श्रीभ-

गवानुवाच ॥ आकाशो ह्यवकाशश्च आकाशं व्यापितं च
 यत् । आकाशस्य गुणः शब्दो निःशब्दं ब्रह्म चोच्यते ॥५०॥
 अर्जुन उवाच ॥ दन्तोष्ठतालुजिह्वानामास्पदं यत्र दृश्यते ।
 अक्षरत्वं कुतस्तेषां क्षरत्वं वर्तते सदा ॥ ५१ ॥ श्रीभगवा-
 नुवाच ॥ अघोपमव्यञ्जनमस्वरं चाप्यतालुकण्ठोष्ठमनासिकं
 च । अरेखजातं परमूष्मवर्जितं तदक्षरं न क्षरते कथंचित्
 ॥ ५२ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ज्ञात्वा सर्वगतं ब्रह्म सर्वभूताधि-
 वासितम् । इन्द्रियाणां निरोधेन कथं सिध्यन्ति योगिनः
 ॥ ५३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ इन्द्रियाणां निरोधेन देहे
 पश्यन्ति मानवाः । देहे नष्टे कुतो बुद्धिर्बुद्धिनाशे कुतो ज्ञता
 ॥ ५४ ॥ तावदेव निरोधः स्याद्यावत्तत्त्वं न विन्दति । विदिते
 तु परे तत्त्वे एकमेवानुपश्यति ॥ ५५ ॥ नवच्छिद्रकृता देहाः
 स्रवन्ति गलिका इव । नैवं ब्रह्म न शुद्धं स्यात्पुमान् ब्रह्म न
 विन्दति ॥ ५६ ॥ अत्यन्तमलिनो देहो देही चात्यन्तनि-
 र्मलः । उभयोरन्तरं ज्ञात्वा कस्य शौचं विधीयते ॥ ५७ ॥
 इत्युत्तरगीतायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच ॥ ज्ञात्वा सर्वगतं ब्रह्म सर्वज्ञं परमेश्वरम् ।
 अहंब्रह्मेति निर्देष्टुं प्रमाणं तत्र किं भवेत् ॥ १ ॥ श्रीभग-
 वानुवाच ॥ यथा जलं जले क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम् । अवि-
 शेपो भवेत्तद्वज्जीवात्मपरमात्मनोः ॥२॥ जीवे परेण तादात्म्यं
 सर्वगं ज्योतिरीश्वरम् । प्रमाणलक्षणैर्ज्ञेयं स्वयमेकाग्रवेदिना ॥३॥
 अर्जुन उवाच ॥ ज्ञानेनैव भवेज्ज्ञेयं विदिता तत्क्षणेन तु ।
 ज्ञानमात्रेण मुच्येत किं पुनर्योगधारणा ॥ ४ ॥ श्रीभग-
 वानुवाच ॥ ज्ञानेन दीपिते देहे बुद्धिर्ब्रह्मसमन्विता । ब्रह्म-

ज्ञानाग्निना विद्वाग्निर्देहेत्कर्मबन्धनम् ॥ ५ ॥ ततः पवित्रं पर-
 मेश्वराख्यमद्वैतरूपं विमलाम्बराभम् । यथोदके तोयमनुप्रविष्टं
 तथात्मरूपो निरुपाधिसंस्थितः ॥ ६ ॥ आकाशवत्सूक्ष्मशरीर-
 आत्मा न दृश्यते वायुवदन्तरात्मा । स बाह्यमभ्यन्तरनिष्क-
 लात्मा ज्ञानोल्कया पश्यति चान्तरात्मा ॥ ७ ॥ यत्र यत्र
 मृतो ज्ञानी येन वा केन मृत्युना । यथा सर्वगतं व्योम तत्र
 तत्र लयं गतम् ॥ ८ ॥ शरीरव्यापितं व्योम भुवनानि चतु-
 र्दश । निश्चलो निर्मलो देही सर्वव्यापी निरञ्जनः ॥ ९ ॥
 मुहूर्तमपि योगश्चेन्नासाग्रे मनसा सह । सर्वं तरति पाप्मानं
 तस्य जन्मशतार्जितम् ॥ १० ॥ दक्षिणे पिङ्गला नाडी वह्नि-
 मण्डलगोचरा । देवयानमिति ज्ञेया पुण्यकर्मानुसारिणी ॥ ११ ॥
 इडा च वामनिःश्वाससोममण्डलगोचरा । पितृयानमिति ज्ञेया
 वाममाश्रित्य तिष्ठति ॥ १२ ॥ गुदस्य पृष्ठभागेऽस्मिन् वीणा-
 दण्डस्य देहभृत् । दीर्घास्थि मूर्ध्निपर्यन्तं ब्रह्मदण्डीति कथ्यते
 ॥ १३ ॥ तस्यान्ते सुपिरं सूक्ष्मं ब्रह्मनाडीति सूरिभिः ॥ १४ ॥
 इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुपुष्पा सूक्ष्मरूपिणी । तस्याग्रे सर्वगं सर्वं
 यस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ तस्या मध्यगताः सूर्यसोमा-
 ग्निपरमेश्वराः । भूतलोका दिशः क्षेत्रं समुद्राः पर्वताः शिलाः
 ॥ १६ ॥ द्वीपाश्च निम्नगा वेदाः शास्त्रविद्याकलाक्षराः । खर-
 मन्त्रपुराणानि गुणाश्चैते च सर्वशः ॥ १७ ॥ बीजं बीजात्म-
 कास्तेषां क्षेत्रज्ञाः प्राणवायवः । सुपुष्पान्तर्गतं विश्वं तस्मिन्
 सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥ नानानाडीप्रसवगं सर्वभूतान्तरा-
 त्मनि । ऊर्ध्वमूलमधःशाखं वायुमार्गेण सर्वगम् ॥ १९ ॥
 द्विसप्ततिसहस्राणि नाड्यः स्युर्वायुगोचराः । कर्ममार्गेण सुपि-

रास्तिर्यच्चः सुपिरात्मकाः ॥ २० ॥ अधश्चोर्ध्वगतास्तासु नव-
 द्वाराणि रोधयन् । वायुना सह जीवोर्ध्वं ज्ञानी मोक्षमवाप्नु-
 यात् ॥ २१ ॥ अमरावतीन्द्रलोकेऽसिन्नासाग्रे पूर्वतो दिशि ।
 अग्निलोको ह्यथ ज्ञेयश्चक्षुस्तेजोवती पुरी ॥ २२ ॥ याम्या संय-
 मनी श्रोत्रे यमलोकः प्रतिष्ठितः । नैऋतो ह्यथ तत्पार्श्वे नैऋतो
 लोक आश्रितः ॥ २३ ॥ विभावरी प्रतीच्यां तत्पृष्ठे वारुणिका
 पुरी । वायोर्गन्धवती कर्णपार्श्वे लोकः प्रतिष्ठितः ॥ २४ ॥
 सौम्या पुष्पवती सौम्ये सोमलोकस्तु कण्ठतः । वामकर्णं तु
 विज्ञेयो देहमाश्रित्य तिष्ठति ॥ २५ ॥ वामे चक्षुषि चैशानी
 शिवलोको मनोन्मनी । मूर्ध्नि ब्रह्मपुरी ज्ञेया ब्रह्माण्डं देहमा-
 श्रितम् ॥ २६ ॥ पादादधः शिवोऽनन्तः कालाग्निप्रलया-
 त्मकः । अनामयमधश्चोर्ध्वं मध्यमं तु बहिः शिवम् ॥ २७ ॥
 अधःपदोऽतलं विद्यात्पादं च वितलं विदुः । नितलं पादसंधिं
 च सुतलं जङ्घमुच्यते ॥ २८ ॥ महातलं च जानु स्याद्रुदशे
 रसातलम् । कटिस्तलातलं प्रोक्तं सप्तपातालसंज्ञया ॥ २९ ॥
 कालाग्निरकं घोरं महापातालसंज्ञया । पातालं नाभ्यधोभागः
 भोगीन्द्रफणिमण्डलम् । वेष्टितः सर्वतोऽनन्तः स विभ्रज्जीव-
 संज्ञकः ॥ ३० ॥ भूलोकं नाभिदेशं तु भुवर्लोकं तु कुक्षितः ।
 हृदयं स्वर्गलोकं तु सूर्यादिग्रहतारकाः ॥ ३१ ॥ सूर्यसोमसुन-
 क्षत्रं बुधशुक्रकुजाङ्गिराः । मन्दश्च सप्तमो ज्ञेयो भ्रुवोऽन्तः स्वर्ग-
 लोकतः ॥ ३२ ॥ हृदये कल्पयन्योगी तस्मिन्सर्वसुखं भवेत्
 ॥ ३३ ॥ हृदयस्थमहर्लोकं जनोलोकं तु कण्ठतः । तपोलोकं
 भ्रुवोर्मध्ये मूर्ध्नि सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्माण्डरूपिणी
 पृथ्वी तोयमध्ये विलीयते । अग्निना पच्यते तोयं वायुना

ग्रस्यतेऽनलः ॥ ३५ ॥ आकाशं तु पिवेद्वायुं मनश्चाकाशमेव
 च । बुद्ध्यहंकारचित्तं च क्षेत्रज्ञः परमात्मनि ॥ ३६ ॥ अहं
 ब्रह्मेति मां ध्यायेदेकाग्रमनसा सकृत् । सर्वं तरति पाप्मानं
 कल्पकोटिशतैः कृतम् ॥ ३७ ॥ घटसंवृतमाकाशं नीयमाने
 घटे यथा । घटे नश्यति नाकाशं तद्वज्जीव इहात्मनि ॥ ३८ ॥
 घटाकाशमिवात्मानं विलयं वेत्ति तत्त्वतः । स गच्छति निरा-
 लम्बं ज्ञानालोक्यं न संशयः ॥ ३९ ॥ तपेद्वर्षसहस्राणि चैक-
 पादस्थितो नरः । एकस्य ज्ञानयोगस्य कलां नार्हति षोडशीम्
 ॥ ४० ॥ आलोढ्य चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राणि सर्वदा । यो
 वै ब्रह्म न जानाति दर्वी पाकरसं यथा ॥ ४१ ॥ यथा हर-
 श्चन्दनभारवाहो भारस्य वाहो न तु चन्दनस्य । एवं हि
 शास्त्राणि बहून्यधीत्य सारं न जानन्स्वरवद्ब्रहेत्सः ॥ ४२ ॥
 अनन्तकर्म शौचं च जपो यज्ञस्तथैव च । तीर्थयात्रादिगमनं याव-
 त्त्वं न विन्दति ॥ ४३ ॥ गवामनेकवर्णानां क्षीरस्याप्येक-
 वर्णता । क्षीरवत्पश्यते ज्ञानं देहिनां च गवां यथा ॥ ४४ ॥
 अहंब्रह्मेति नियते मोक्षहेतुर्महात्मनाम् । द्वे पदे बन्धमोक्षाय
 न ममेति ममेति च ॥ ४५ ॥ ममेति बध्यते जन्तुर्न ममेति
 विमुच्यते ॥ ४६ ॥ मनसो ह्युन्मनीभावाद्द्वैतं नैवोपलभ्यते ।
 यदा यात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम् ॥ ४७ ॥ हन्यान्नु-
 ष्ठिभिराकाशं क्षुधार्तः कण्डयेत्तुपम् । नाहं ब्रह्मेति जानाति
 तस्य मुक्तिर्न जायते ॥ ४८ ॥ इति उत्तरगीतायां द्वितीयो-
 ऽध्यायः ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच—अनन्तशास्त्रं बहु वेदितव्यमल्प-
 कालो बहवश्च विघ्नाः । यत्सारभूतं तदुपासितव्यं हंसो यथा

क्षीरमिवाम्बुमिश्रम् ॥ १ ॥ पुराणं भारतं वेदः शास्त्राणि
 विविधानि च । पुत्रदारादिसंसारो योगाभ्यासस्य विघ्नकृत् ॥ २ ॥
 इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयं यत्सर्वं ज्ञातुमिच्छति । अपि वर्षसहस्रायुः
 शास्त्रान्तं नाधिगच्छति ॥ ३ ॥ विज्ञेयोऽक्षरतन्मात्रो जीवितं
 चापि चञ्चलम् । विहाय शास्त्रजालानि यत्सारं तदुपास्यताम् ॥ ४ ॥
 पृथिव्यां यानि भूतानि जिह्वोपस्थनिमित्तकम् । जिह्वोपस्थपरि-
 त्यागे पृथिव्यां किं प्रयोजनम् ॥ ५ ॥ तीर्थानि तोयपूर्णानि
 देवान्पापाणमृन्मयान् । योगिनो न प्रपद्यन्त आत्मज्ञानपरायणाः
 ॥ ६ ॥ अग्निदेवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम् । प्रतिमा-
 खल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ॥ ७ ॥ सर्वत्रावस्थितं शान्तं न
 प्रपश्येज्जनार्दनम् । ज्ञानचक्षुर्विहीनत्वादन्धः सूर्यमिवोदितम् ॥ ८ ॥
 यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र परं पदम् । तत्र तत्र परं ब्रह्म सर्वत्र
 समवस्थितम् ॥ ९ ॥ दृश्यन्ते दृशिरूपाणि गगनं भाति निर्मलम् ।
 अहमित्यक्षरं ब्रह्म परमं विष्णुमव्ययम् ॥ १० ॥ दृश्यते
 चेत्खगाकारं खगाकारं विचिन्तयेत् । सकलं निष्कलं सूक्ष्मं
 मोक्षद्वारेण निर्गतम् ॥ ११ ॥ अपवर्गस्य निर्वाणं परमं विष्णु-
 मव्ययम् । सर्वज्योतिर्निराकारं सर्वभूतगुणान्वितम् ॥ १२ ॥
 सर्वत्र परमात्मानं ब्रह्मात्मा परमव्ययम् ॥ १३ ॥ अहंब्रह्मेति
 यत्सर्वं विजानाति नरः सदा । हन्यात्स्वयमिमान्कामान्सर्वाशी
 सर्वविक्रयी । सर्वं निषिद्धं कृत्वापि कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥
 निमिषं निमिषार्धं वा शीताशीतनिवारणम् । अचला केशवे
 भक्तिर्विभवैः किं प्रयोजनम् ॥ १५ ॥ भिक्षाद्यं देहरक्षार्थं वस्त्रं
 शीतनिवारणम् । अश्मानं च हिरण्यं च शाकं शाल्योदनं तथा ।
 समानं चिन्तयेद्योगी यदि चिन्त्यमपेक्षते ॥ १६ ॥ भूतवस्तु-

न्यशोचिते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १७ ॥ आत्मयोगमवोचधो
भक्तियोगशिरोमणिः । तं वन्दे परमानन्दं नन्दनन्दनमीश्वरम्
॥ १८ ॥ इत्युत्तरगीतायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इति श्रीउत्तरगीता समाप्ता ॥ ३९ ॥

ब्रह्मसूत्राणि ॥ ४० ॥

प्रथमाध्याये प्रथमः पादः ॥ १ ॥ १ ॥

ॐ परमात्मने नमः ॥ अथाऽतो ब्रह्मजिज्ञासा ॥ १ ॥ जन्मा-
द्यस्य यतः ॥ २ ॥ शास्त्रयोनितात् ॥ ३ ॥ तत्तु समन्वयात् ॥ ४ ॥
ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥ ५ ॥ गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ॥ ६ ॥ तन्निष्ठस्य
मोक्षोपदेशात् ॥ ७ ॥ हेयत्वावचनाच्च ॥ ८ ॥ स्वाप्ययात् ॥ ९ ॥
गतिसामान्यात् ॥ १० ॥ श्रुतत्वाच्च ॥ ११ ॥ आनन्दमयो-
ऽभ्यासात् ॥ १२ ॥ विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् ॥ १३ ॥
तद्वेतुव्यपदेशाच्च ॥ १४ ॥ मात्रवर्णिकमेव च गीयते ॥ १५ ॥
नेतरोऽनुपपत्तेः ॥ १६ ॥ भेदव्यपदेशाच्च ॥ १७ ॥ कामाच्च
नानुमानापेक्षा ॥ १८ ॥ अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ १९ ॥
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ २० ॥ भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ २१ ॥
आकाशस्तल्लिङ्गात् ॥ २२ ॥ अत एव प्राणः ॥ २३ ॥ ज्यो-
तिश्चरणाभिधानात् ॥ २४ ॥ छन्दोभिधानान्नेति चेन्न तथा
चेतोर्ज्यणनिगदात्तथा हि दर्शनम् ॥ २५ ॥ भूतादिपाद-
व्यपदेशोपपत्तेश्चैवम् ॥ २६ ॥ उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयसि-
न्धव्यविरोधात् ॥ २७ ॥ प्राणस्तथाऽनुगमात् ॥ २८ ॥ न वक्तु
रात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन् ॥ २९ ॥
शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत् ॥ ३० ॥ जीवमुख्यप्राणलि-
ङ्गान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात् ॥ ३१ ॥

अथात एकत्रिंशत् ॥ इति वैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां
प्रथमस्याध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ १ ॥ १ ॥

प्रथमाध्याये द्वितीयः पादः ॥ १ ॥ २ ॥

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ १ ॥ विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ॥ २ ॥
अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ॥ ३ ॥ कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ॥ ४ ॥
शब्दविशेषात् ॥ ५ ॥ स्मृतेश्च ॥ ६ ॥ अर्भकौकस्तात्तत्र्यपदे-
शाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ॥ ७ ॥ सम्भोग-
प्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ॥ ८ ॥ अत्ता चराचरग्रहणात् ॥ ९ ॥
प्रकरणाच्च ॥ १० ॥ गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तदर्शनात्
॥ ११ ॥ विशेषणाच्च ॥ १२ ॥ अन्तर उपपत्तेः ॥ १३ ॥
स्थानादिव्यपदेशाच्च ॥ १४ ॥ सुखविशिष्टाभिधानादेव
च ॥ १५ ॥ श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च ॥ १६ ॥ अनव-
स्थितेरसम्भवाच्च नेतरः ॥ १७ ॥ अन्तर्याम्यधिदैवादिषु
तद्धर्मव्यपदेशात् ॥ १८ ॥ न च सार्तमतद्धर्माभिलाषात्
॥ १९ ॥ शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥ २० ॥ अह-
न्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ॥ २१ ॥ विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां
च नेतरौ ॥ २२ ॥ रूपोपन्यासाच्च ॥ २३ ॥ वैश्वानरःसा-
धारणशब्दविशेषात् ॥ २४ ॥ सूर्यमाणमनुमानं स्यादिति
॥ २५ ॥ शब्दादिभ्योऽन्तःप्रतिष्ठानाच्चेति चेन्न तथा दृष्ट्यु-
पदेशादसम्भवात्पुरुषमपि चैनमधीयते ॥ २६ ॥ अत एव न
देवता भूतं च ॥ २७ ॥ साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ॥ २८ ॥
अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ॥ २९ ॥ अनुस्मृतेर्वादरिः ॥ ३० ॥
सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति ॥ ३१ ॥ आमनन्ति
चैनमस्मिन् ॥ ३२ ॥ सर्वत्र द्वात्रिंशत् ॥ आदितः ॥ ६३ ॥

इति वैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां प्रथमस्याध्यायस्य द्वितीयः
पादः ॥ १ ॥ २ ॥

प्रथमाध्याये तृतीयः पादः ॥ १ ॥ ३ ॥

द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ॥ १ ॥ मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् ॥ २ ॥ नानुमानमतच्छब्दात् ॥ ३ ॥ प्राणभृच्च ॥ ४ ॥ भेदव्यपदेशात् ॥ ५ ॥ प्रकरणात् ॥ ६ ॥ स्थित्यदनाभ्यां च ॥ ७ ॥ भूमासम्प्रसादादध्युपदेशात् ॥ ८ ॥ धर्मोपपत्तेश्च ॥ ९ ॥ अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥ १० ॥ सा च प्रशंसनात् ॥ ११ ॥ अन्यभावव्यावृत्तेश्च ॥ १२ ॥ ईक्षतिकर्मव्यपदेशात्सः ॥ १३ ॥ दहर उत्तरेस्यः ॥ १४ ॥ गतिशब्दाभ्यां तथा हि दृष्टं लिङ्गं च ॥ १५ ॥ धृतेश्च महिम्नोऽस्यासिन्नुपलब्धेः ॥ १६ ॥ प्रसिद्धेश्च ॥ १७ ॥ इतरपरामर्शात्स इति चेन्नासम्भवात् ॥ १८ ॥ उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु ॥ १९ ॥ अन्यार्थश्च परामर्शः ॥ २० ॥ अल्पश्रुतेरिति चेत्तदुक्तम् ॥ २१ ॥ अनुकृतेस्तस्य च ॥ २२ ॥ अपि च स्मर्यते ॥ २३ ॥ शब्दादेव प्रमितः ॥ २४ ॥ हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् ॥ २५ ॥ तदुपर्यपि बादरायणः सम्भवात् ॥ २६ ॥ विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ॥ २७ ॥ शब्द इति चेन्नातः प्रभवात्प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥ २८ ॥ अत एव च नित्यत्वम् ॥ २९ ॥ समाननामरूपत्वाच्चाऽऽवृत्तावप्यविरोधो दर्शनात्स्मृतेश्च ॥ ३० ॥ मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ॥ ३१ ॥ ज्योतिषि भावाच्च ॥ ३२ ॥ भावं तु बादरायणोऽस्ति हि ॥ ३३ ॥ शुगस्य तदनादरश्रवणात्तदाद्रवणात्सूच्यते हि ॥ ३४ ॥ क्षत्रियत्वावगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लि-

ज्ञात् ॥ ३५ ॥ संस्कारपरामर्शोत्तदभावाभिलाषाच्च ॥ ३६ ॥
तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ॥ ३७ ॥ श्रवणाध्ययनार्थप्रति-
पेधात्स्मृतेश्च ॥ ३८ ॥ कम्पनात् ॥ ३९ ॥ ज्योतिर्दर्शनात्
॥ ४० ॥ आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ॥ ४१ ॥ सुषु-
प्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेन ॥ ४२ ॥ पत्यादिशब्देभ्यः ॥ ४३ ॥ द्युभ्वा-
द्यायतनं त्रिचत्वारिंशत् ॥ आदितः ॥ १०६ ॥ इति वैयासिक्यां
शारीरकमीमांसायां प्रथमस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ १ ॥ ३ ॥

प्रथमाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ १ ॥ ४ ॥

आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीते-
र्दर्शयति च ॥ १ ॥ सूक्ष्मं तु तदर्हत्वात् ॥ २ ॥ तदर्धीनत्वा-
दर्थवत् ॥ ३ ॥ ज्ञेयत्वावचनाच्च ॥ ४ ॥ वदतीति चेन्न प्राज्ञो
हि प्रकरणात् ॥ ५ ॥ त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॥ ६ ॥
महद्वच्च ॥ ७ ॥ चमसवदविशेषात् ॥ ८ ॥ ज्योतिरूपक्रमा तु
तथा ह्यधीयत एके ॥ ९ ॥ कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदवि-
रोधः ॥ १० ॥ न सङ्ख्योपसंग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च
॥ ११ ॥ प्राणादयो वाक्यशेषात् ॥ १२ ॥ ज्योतिर्पैकेषामस-
त्यन्ने ॥ १३ ॥ कारणत्वेन चाकाशादिषु यथा व्यपदिष्टोक्तेः
॥ १४ ॥ समाकर्षात् ॥ १५ ॥ जगद्वाचित्वात् ॥ १६ ॥ जीव-
मुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेत्तद्व्याख्यातम् ॥ १७ ॥ अन्यार्थन्तु
जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके ॥ १८ ॥ वाक्या-
न्वयात् ॥ १९ ॥ प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ॥ २० ॥ उत्क्र-
मिष्यत एवम्भावादित्यौडलोमिः ॥ २१ ॥ अवस्थितेरिति
काशकृत्स्नः ॥ २२ ॥ प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्

॥ २३ ॥ अभिध्योपदेशाच्च ॥ २४ ॥ साक्षाच्चोभयाऽऽम्ना-
नात् ॥ २५ ॥ आत्मकृतेः परिणामात् ॥ २६ ॥ योनिश्च हि
गीयते ॥ २७ ॥ एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ॥ २८ ॥
आनुमानिकमष्टाविंशतिः ॥ आदितः ॥ १३४ ॥ इति वैया-
सिक्यां शारीरकमीमांसायां प्रथमस्याध्यायस्य चतुर्थः पादः
॥ १ ॥ ४ ॥ समाप्तः प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयाध्याये प्रथमः पादः ॥ २ ॥ १ ॥

स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोष-
प्रसङ्गात् ॥ १ ॥ इतरेषां चानुपलब्धेः ॥ २ ॥ एतेन योगः
प्रत्युक्तः ॥ ३ ॥ न विलक्षणत्वादस्य तथात्वं च शब्दात् ॥ ४ ॥
अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम् ॥ ५ ॥ दृश्यते तु
॥ ६ ॥ असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ॥ ७ ॥ अपीतो
तद्वत्प्रसङ्गादसमञ्जसम् ॥ ८ ॥ न तु दृष्टान्तभावात् ॥ ९ ॥
स्वपक्षदोषाच्च ॥ १० ॥ तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति
चेदेवमप्यनिर्मोक्षप्रसङ्गः ॥ ११ ॥ एतेन शिष्टापरिग्रहा अपि
व्याख्याताः ॥ १२ ॥ भोक्तापत्तेरविभागश्चेत्स्याल्लोकवत्
॥ १३ ॥ तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ॥ १४ ॥ भावे
चोपलब्धेः ॥ १५ ॥ सत्त्वाच्चाचरस्य ॥ १६ ॥ असद्व्यपदेशा-
च्चेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ॥ १७ ॥ युक्तेः शब्दान्त-
राच्च ॥ १८ ॥ पटवच्च ॥ १९ ॥ यथा च प्राणादि ॥ २० ॥
इतरव्यपदेशाद्विताकरणादिदोषप्रसक्तिः ॥ २१ ॥ अधिकं तु
भेदनिर्देशात् ॥ २२ ॥ अश्मादिष्वच्च तदनुपपत्तिः ॥ २३ ॥
उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्वि ॥ २४ ॥ देवादिवदपि
लोके ॥ २५ ॥ कृत्स्नप्रसक्तिर्निर्वयवत्त्वशब्दकोपो वा ॥ २६ ॥

श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ॥ २७ ॥ आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि
 ॥ २८ ॥ स्वपक्षदोषाच्च ॥ २९ ॥ सर्वोपेता च तद्दर्शनात्
 ॥ ३० ॥ विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् ॥ ३१ ॥ न प्रयोजन-
 वत्त्वात् ॥ ३२ ॥ लोकवत्तु लीलकैवल्यम् ॥ ३३ ॥ वैषम्य-
 नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथा हि दर्शयति ॥ ३४ ॥ न कर्मावि-
 भागादिति चेन्नानादित्वात् ॥ ३५ ॥ उपपद्यते चाप्युपल-
 भ्यते च ॥ ३६ ॥ सर्वधर्मोपपत्तेश्च ॥ ३७ ॥ स्मृतिः सप्तत्रिं-
 शत् ॥ आदितः ॥ १७१ ॥ इति वैयासिक्यां शारीरकमीमां-
 सायां द्वितीयस्याध्यायस्य प्रथमः पादः ॥ २ ॥ १ ॥

द्वितीयाध्याये द्वितीयः पादः ॥ २ ॥ २ ॥

रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ॥ १ ॥ प्रवृत्तेश्च ॥ २ ॥
 पयोऽम्बुवच्चेत्तत्रापि ॥ ३ ॥ व्यतिरेकानवस्थितेश्वानपेक्षत्वात्
 ॥ ४ ॥ अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ॥ ५ ॥ अभ्युप-
 गमेऽप्यर्थाभावात् ॥ ६ ॥ पुरुषाश्मवदिति चेत्तथापि
 ॥ ७ ॥ अङ्गित्वानुपपत्तेश्च ॥ ८ ॥ अन्यथानुमितौ च ज्ञश-
 क्तिवियोगात् ॥ ९ ॥ विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् ॥ १० ॥
 महदीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥ ११ ॥ उभयथापि न
 कर्मातस्तदभावः ॥ १२ ॥ समवायाभ्युपगमाच्च साम्याद-
 नवस्थितेः ॥ १३ ॥ नित्यमेव च भावात् ॥ १४ ॥ रूपा-
 दिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ॥ १५ ॥ उभयथा च
 दोषात् ॥ १६ ॥ अपरिग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ॥ १७ ॥ समु-
 दाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ॥ १८ ॥ इतरेतरप्रत्ययत्वा-
 दिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॥ १९ ॥ उत्तरोत्पादे च
 पूर्वनिरोधान् ॥ २० ॥ असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा

॥ २१ ॥ प्रतिसङ्ख्याप्रतिसङ्ख्याननिरोधाप्राप्तिरविच्छेदात्
 ॥ २२ ॥ उभयथा च दोषात् ॥ २३ ॥ आकाशे चाविशेषात्
 ॥ २४ ॥ अनुस्मृतेश्च ॥ २५ ॥ नासतोऽष्टष्टत्वात् ॥ २६ ॥
 उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ॥ २७ ॥ नाभाव उपलब्धेः
 ॥ २८ ॥ वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ॥ २९ ॥ न भावोऽनु-
 पलब्धेः ॥ ३० ॥ क्षणिकत्वाच्च ॥ ३१ ॥ सर्वधानुपपत्तेश्च
 ॥ ३२ ॥ नैकस्मिन्नसम्भवात् ॥ ३३ ॥ एवञ्चात्माऽका-
 त्त्वम् ॥ ३४ ॥ न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः
 ॥ ३५ ॥ अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ॥ ३६ ॥
 पत्युरसामञ्जस्यात् ॥ ३७ ॥ सम्बन्धानुपपत्तेः ॥ ३८ ॥ अधिष्ठा-
 नानुपपत्तेश्च ॥ ३९ ॥ करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ॥ ४० ॥
 अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ॥ ४१ ॥ उत्पत्त्यसम्भवात् ॥ ४२ ॥
 न च कर्तुः करणम् ॥ ४३ ॥ विज्ञानादिभावे वा तदप्रति-
 पेधः ॥ ४४ ॥ विप्रतिपेधाच्च ॥ ४५ ॥ रचनानुपपत्तेः पञ्च-
 चत्वारिंशत् आदितः ॥ २१६ ॥ इति वैयासिक्यां शरी-
 रकमीमांसायां द्वितीयस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ २ ॥ २ ॥

द्वितीयाध्याये तृतीयः पादः ॥ २ ॥ ३ ॥

न वियदश्रुतेः ॥ १ ॥ अस्ति तु ॥ २ ॥ गौण्यसम्भवात्
 ॥ ३ ॥ शब्दाच्च ॥ ४ ॥ स्याच्चैकस्यापि ब्रह्मशब्दवत् ॥ ५ ॥
 प्रतिज्ञाहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ॥ ६ ॥ यावद्विकारं तु
 विभागो लोकवत् ॥ ७ ॥ एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ॥ ८ ॥
 असम्भवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ॥ ९ ॥ तेजोऽतस्तथा ह्यह ॥ १० ॥
 आपः ॥ ११ ॥ पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ॥ १२ ॥
 तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात्सः ॥ १३ ॥ विपर्ययेण तु

क्रमोऽत उपपद्यते च ॥ १४ ॥ अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण
तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ॥ १५ ॥ चराचरव्यपाश्रयस्तु
स्यात्तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावितात् ॥ १६ ॥ नात्माऽश्रुते-
नित्यत्वाच्च ताभ्यः ॥ १७ ॥ ज्ञोऽत एव ॥ १८ ॥ उत्क्रान्ति-
गत्यागतीनाम् ॥ १९ ॥ स्वात्मना चोत्तरयोः ॥ २० ॥
नाणुरतच्छ्रुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ॥ २१ ॥ स्वशब्दो-
न्मानाभ्यां च ॥ २२ ॥ अविरोधश्चन्दनवत् ॥ २३ ॥ अव-
स्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाभ्युपगमाद्बुद्धि हि ॥ २४ ॥ गुणा-
द्बालोकवत् ॥ २५ ॥ व्यतिरेको गन्धवत् ॥ २६ ॥ तथा
च दर्शयति ॥ २७ ॥ पृथगुपदेशात् ॥ २८ ॥ तद्गुणसार-
त्वात्तु तद्व्यपदेशः ग्राह्यवत् ॥ २९ ॥ यावदात्मभाविताच्च न
दोषस्तद्दर्शनात् ॥ ३० ॥ पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियो-
गात् ॥ ३१ ॥ नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसङ्गोऽन्यतरनियमो
वाऽन्यथा ॥ ३२ ॥ कर्त्ता शास्त्रार्थवच्चात् ॥ ३३ ॥ विहा-
रोपदेशात् ॥ ३४ ॥ उपादानात् ॥ ३५ ॥ व्यपदेशाच्च
क्रियायां न चेन्निर्देशविपर्ययः ॥ ३६ ॥ उपलब्धिवदनियमः
॥ ३७ ॥ शक्तिविपर्ययात् ॥ ३८ ॥ समाध्यभावाच्च ॥ ३९ ॥
यथा च तत्क्षोभयथा ॥ ४० ॥ परात्तु तच्छ्रुतेः ॥ ४१ ॥
कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिपिद्वावैयर्थ्यादिभ्यः ॥ ४२ ॥
अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्वमधी-
यत एके ॥ ४३ ॥ मन्त्रवर्णाच्च ॥ ४४ ॥ अपि च स्मर्यते
॥ ४५ ॥ प्रकाशादिवन्नैवं परः ॥ ४६ ॥ स्मरन्ति च
॥ ४७ ॥ अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाऽयोतिरादिवत् ॥ ४८ ॥
अमन्ततेश्चाव्यक्तिकरः ॥ ४९ ॥ आभास एव च ॥ ५० ॥

अदृष्टानियमात् ॥ ५१ ॥ अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम् ॥ ५२ ॥
 प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् ॥ ५३ ॥ न विद्यदश्रुतेस्त्रिपञ्चाशत् ॥
 आदितः ॥ २६९ ॥ इति वैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां
 द्वितीयस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ २ ॥ ३ ॥

द्वितीयाध्याये चतुर्थः पादः ॥ २ ॥ ४ ॥

तथा प्राणाः ॥ १ ॥ गौण्यसम्भवात् ॥ २ ॥ तत्प्राक्-
 च्छ्रुतेश्च ॥ ३ ॥ तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ॥ ४ ॥ सप्तगतेर्विशेषितत्वाच्च
 ॥ ५ ॥ हस्तादयस्तु स्थितेऽस्तौ नैवम् ॥ ६ ॥ अणवश्च ॥ ७ ॥
 श्रेष्ठश्च ॥ ८ ॥ न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ॥ ९ ॥ चक्षुरादिवत्तु
 तत्सहशिष्यादिभ्यः ॥ १० ॥ अकरणत्वाच्च न दोषस्तथा हि
 दर्शयति ॥ ११ ॥ पञ्चवृत्तिर्मनोवद्व्यपदिश्यते ॥ १२ ॥ अणुश्च
 ॥ १३ ॥ ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ॥ १४ ॥ प्रा-
 णवता शब्दात् ॥ १५ ॥ तस्य च नित्यत्वात् ॥ १६ ॥ त इन्द्रि-
 याणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ॥ १७ ॥ भेदश्रुतेः ॥ १८ ॥
 वैलक्षण्याच्च ॥ १९ ॥ संज्ञामूर्तिकृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात्
 ॥ २० ॥ मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ॥ २१ ॥ वंशे-
 ष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ॥ २२ ॥ तथा प्राणा द्वाविंशतिः ॥ आदितः
 ॥ २९१ ॥ इति वैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां द्वितीयस्या-
 ध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ २ ॥ ४ ॥

समाप्तो द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयाध्याये प्रथमः पादः ॥ ३ ॥ १ ॥

तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहतिसम्परिष्वक्तः प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ॥ १ ॥
 ज्ञात्मकत्वात् भूयस्त्वात् ॥ २ ॥ प्राणगतेश्च ॥ ३ ॥ अग्न्या
 दिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ॥ ४ ॥ प्रथमेऽश्रवणादिति

चेन्न ता एव ह्युपपत्तेः ॥ ५ ॥ अश्रुतत्वादिति चेन्नेष्टादिकारिणां
 प्रतीतेः ॥ ६ ॥ भाक्तं वानात्मविच्चात्तथाहि दर्शयति ॥ ७ ॥
 कृतात्ययेऽनुशयवान्दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च ॥ ८ ॥ चर-
 णादिति चेन्नोपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः ॥ ९ ॥ आनर्थ-
 क्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात् ॥ १० ॥ सुकृतदुष्कृते एवेति तु
 वादरिः ॥ ११ ॥ अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम् ॥ १२ ॥
 संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ॥ १३ ॥
 स्मरन्ति च ॥ १४ ॥ अपि च सप्त ॥ १५ ॥ तत्रापि च तद्व्यापा-
 रादविरोधः ॥ १६ ॥ विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ॥ १७ ॥
 न तृतीये तथोपलब्धेः ॥ १८ ॥ स्मर्यतेऽपि च लोके ॥ १९ ॥
 दर्शनाच्च ॥ २० ॥ तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य ॥ २१ ॥
 तत्साभाव्यापत्तिरूपपत्तेः ॥ २२ ॥ नातिचिरेण विशेषात् ॥ २३ ॥
 अन्याधिष्ठिते पूर्ववदभिलाषात् ॥ २४ ॥ अशुद्धमिति चेन्न
 शब्दात् ॥ २५ ॥ रेतस्सिग्योगोऽथ ॥ २६ ॥ योनेः शरीरम्
 ॥ २७ ॥ तदनन्तरप्रतिपत्तौ सप्तविंशतिः ॥ आदितः ॥ ३१ ॥
 इति वैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां तृतीयस्याध्यायस्य प्रथमः
 पादः ॥ ३ ॥ १ ॥

तृतीयाध्याये द्वितीयः पादः ॥ ३ ॥ २ ॥

सन्ध्ये सृष्टिराह हि ॥ १ ॥ निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च
 ॥ २ ॥ मायामात्रं तु कात्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ॥ ३ ॥
 सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ॥ ४ ॥ पराभिध्यानात्तु
 तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययो ॥ ५ ॥ देहयोगाद्वा सोपि
 ॥ ६ ॥ तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ॥ ७ ॥ अतः प्र-
 शोधोऽस्मात् ॥ ८ ॥ स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः

॥ ९ ॥ मुग्धेऽर्द्धसम्पत्तिः परिशेषात् ॥ १० ॥ न स्थानतोऽपि
 परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ॥ ११ ॥ न भेदादिति चेन्न प्रत्येक-
 मतद्वचनात् ॥ १२ ॥ अपि चैवमेके ॥ १३ ॥ अरूपवदेव हि
 तत्प्रधानत्वात् ॥ १४ ॥ प्रकाशवच्चावैयर्थ्यात् ॥ १५ ॥ आह
 च तन्मात्रम् ॥ १६ ॥ दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते ॥ १७ ॥
 अत एव चोपमा सूर्यकादिवत् ॥ १८ ॥ अम्बुवदग्रहणानु-
 न तथात्वम् ॥ १९ ॥ वृद्धिहासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसाम-
 ज्ञस्यादेवम् ॥ २० ॥ दर्शनाच्च ॥ २१ ॥ प्रकृतैतावत्त्वं हि
 प्रतिपेधति ततो ब्रवीति च भूयः ॥ २२ ॥ तदव्यक्तमाह हि
 ॥ २३ ॥ अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ॥ २४ ॥
 प्रकाशादिवच्चावैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् ॥ २५ ॥
 अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम् ॥ २६ ॥ उभयव्यपदेशाच्चहि-
 कुण्डलवत् ॥ २७ ॥ प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ॥ २८ ॥
 पूर्ववद्वा ॥ २९ ॥ प्रतिपेधाच्च ॥ ३० ॥ परमतः सेतून्मानस-
 म्वन्धभेदव्यपदेशेभ्यः ॥ ३१ ॥ सामान्यात् ॥ ३२ ॥ बुद्ध्यर्थः
 पादवत् ॥ ३३ ॥ स्थानविशेषात्प्रकाशादिवत् ॥ ३४ ॥
 उपपत्तेश्च ॥ ३५ ॥ तथान्यप्रतिपेधात् ॥ ३६ ॥ अनेन सर्व-
 गतत्वमायामशब्दादिभ्यः ॥ ३७ ॥ फलमत उपपत्तेः ॥ ३८ ॥
 श्रुतत्वात् ॥ ३९ ॥ धर्म जैमिनिरत एव ॥ ४० ॥ पूर्वं तु
 वादरायणो हेतुव्यपदेशात् ॥ ४१ ॥ सन्ध्ये सृष्टिरेकचत्वारिं-
 शत् ॥ आदितः ॥ ३५९ ॥ इति वैयासिक्यां शारीरकमीमां-
 सायां तृतीयस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ ३ ॥ २ ॥

तृतीयाध्याये तृतीयः पादः ॥ ३ ॥ ३ ॥

सर्ववेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात् ॥ १ ॥ भेदान्नेति

चेन्नैकस्यामपि ॥ २ ॥ स्वाध्यायस्य तथात्वेन हि समाचारे-
 अधिकाराच्च सवचच्च तन्नियमः ॥ ३ ॥ दर्शयति च ॥ ४ ॥
 उपसंहारोऽर्थाभेदाद्विधिशेषवत्समाने च ॥ ५ ॥ अन्यथात्वं
 शब्दादिति चेन्नाविशेषात् ॥ ६ ॥ न वा प्रकरणभेदात्परो-
 जरीयस्तादिवत् ॥ ७ ॥ संज्ञातश्चेत्तदुक्तमस्ति तु तदपि
 ॥ ८ ॥ व्याप्तेश्च समञ्जसम् ॥ ९ ॥ सर्वाभेदादन्यत्रेमे ॥ १० ॥
 आनन्दादयः प्रधानस्य ॥ ११ ॥ प्रियशिरस्ताद्यप्राप्तिरूप-
 चयापचयौ हि भेदे ॥ १२ ॥ इतरे त्वर्थसामान्यात् ॥ १३ ॥
 आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ॥ १४ ॥ आत्मशब्दाच्च ॥ १५ ॥
 आत्मगृहीतिरितरवदुत्तरात् ॥ १६ ॥ अन्वयादिति चेत्स्याद-
 वधारणात् ॥ १७ ॥ कार्याख्यानादपूर्वम् ॥ १८ ॥ समान
 एवं चाभेदात् ॥ १९ ॥ सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ॥ २० ॥
 न वा विशेषात् ॥ २१ ॥ दर्शयति च ॥ २२ ॥ सम्भृतिद्यु-
 व्याप्त्यपि चातः ॥ २३ ॥ पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामना-
 भानात् ॥ २४ ॥ वेधाद्यर्थभेदात् ॥ २५ ॥ हानौ तूपायन-
 शब्दशेषत्वात्कुशाच्छन्दस्तुत्युपगानवत्तदुक्तम् ॥ २६ ॥ साम्प-
 राये तर्तव्याभावात्तथा ह्यन्ये ॥ २७ ॥ छन्दत उभयाविरो-
 धात् ॥ २८ ॥ गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा हि विरोधः ॥ २९ ॥
 उपपन्नस्तल्लक्षणाथोपलब्धेलोकवत् ॥ ३० ॥ अनियमः सर्व-
 पामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ॥ ३१ ॥ यावदधिकारमव-
 स्थितिराधिकारिकाणाम् ॥ ३२ ॥ अक्षरधियां त्वरोधः सामा-
 न्यतद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तम् ॥ ३३ ॥ इयदामननात् ॥ ३४ ॥
 अन्तराभूतग्रामवत्स्यात्मनः ॥ ३५ ॥ अन्यथा भेदानुपप-
 त्तिरिति चेन्नोपदेष्टव्यमत्र ॥ ३६ ॥ व्यतिहारो विशिष्यन्ति

हीतरवत् ॥ ३७ ॥ सैव हि सत्यादयः ॥ ३८ ॥ कामादी-
 तरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ॥ ३९ ॥ आदरादलोपः
 ॥ ४० ॥ उपस्थितेऽस्तद्वचनात् ॥ ४१ ॥ तन्निर्धारणानिय-
 मस्तद्वृष्टेः पृथग्व्यप्रतिबन्धः फलम् ॥ ४२ ॥ प्रदानवदेव तदु-
 क्तम् ॥ ४३ ॥ लिङ्गभूयस्त्वात्तद्वि वलीयस्तदपि ॥ ४४ ॥ पूर्व-
 विकल्पः प्रकरणात्स्यात्क्रिया मानसवत् ॥ ४५ ॥ अतिदेशाच्च
 ॥ ४६ ॥ विधैव तु निर्धारणात् ॥ ४७ ॥ दर्शनाच्च ॥ ४८ ॥
 श्रुत्यादिवलीयस्त्वाच्च न बाधः ॥ ४९ ॥ अनुबन्धादिभ्यः
 प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद्दृष्टश्च तदुक्तम् ॥ ५० ॥ न सामान्यादप्यु-
 पलब्धेर्मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ॥ ५१ ॥ परेण च शब्दस्य
 ताद्विध्यं भूयस्त्वाच्चनुबन्धः ॥ ५२ ॥ एक आत्मनः शरीरे
 भावात् ॥ ५३ ॥ व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत्
 ॥ ५४ ॥ अङ्गाववद्भास्तु न शाखास्तु हि प्रतिवेदम् ॥ ५५ ॥
 मन्त्रादिवद्भाविरोधः ॥ ५६ ॥ भूम्नः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथा
 हि दर्शयति ॥ ५७ ॥ नाना शब्दादिभेदात् ॥ ५८ ॥ विकल्पो-
 ऽविशिष्टफलत्वात् ॥ ५९ ॥ काम्यास्तु यथाकामं समुच्चीयेरन्न
 वा पूर्वहेतुभावात् ॥ ६० ॥ अङ्गेषु यथाऽऽश्रयभावः ॥ ६१ ॥
 शिष्टेश्च ॥ ६२ ॥ समाहारात् ॥ ६३ ॥ गुणसाधारण्यश्रुतेश्च
 ॥ ६४ ॥ न वा तत्सहभावाश्रुतेः ॥ ६५ ॥ दर्शनाच्च ॥ ६६ ॥
 सर्ववेदान्तप्रत्ययं पदपट्टिः ॥ आदितः ॥ ४२५ ॥ इति
 वैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां तृतीयस्याध्यायस्य तृतीयः
 पादः ॥ ३ ॥ ३ ॥

तृतीयाध्याये चतुर्थः पादः ॥ ३ ॥ ४ ॥

पुरुषार्थोऽतः शब्दादिति वादरायणः ॥ १ ॥ शेषत्वा-

त्पुरुषार्थवादो यथान्येष्विति जैमिनिः ॥ २ ॥ आचारदर्श-
 नात् ॥ ३ ॥ तच्छ्रुतेः ॥ ४ ॥ समन्वारम्भणात् ॥ ५ ॥ तद्वतो
 विधानात् ॥ ६ ॥ नियमाच्च ॥ ७ ॥ अधिकोपदेशात् वाद-
 रायणस्यैवं तद्दर्शनात् ॥ ८ ॥ तुल्यं तु दर्शनम् ॥ ९ ॥
 असर्वत्रिकी ॥ १० ॥ विभागः शतवत् ॥ ११ ॥ अध्ययन-
 मात्रवतः ॥ १२ ॥ नाविशेषात् ॥ १३ ॥ स्तुतयेऽनुमतिर्वा
 ॥ १४ ॥ कामकारेण चैके ॥ १५ ॥ उपमर्दं च ॥ १६ ॥
 ऊर्ध्वरेतस्सु च शब्दे हि ॥ १७ ॥ परामर्शं जैमिनिरचोदना
 चापवदति हि ॥ १८ ॥ अनुष्ठेयं वादरायणः साम्यश्रुतेः
 ॥ १९ ॥ विधिर्वा धारणवत् ॥ २० ॥ स्तुतिमात्रमुपादाना-
 दिति चेन्नापूर्वत्वात् ॥ २१ ॥ भावशब्दाच्च ॥ २२ ॥ पारि-
 ष्वार्था इति चेन्न विशेषितत्वात् ॥ २३ ॥ तथा चैकवाक्य-
 तोषवन्धात् ॥ २४ ॥ अत एव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा
 ॥ २५ ॥ सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ॥ २६ ॥
 शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदङ्गतया तेषामवश्यानु-
 स्तेयत्वात् ॥ २७ ॥ सर्वानुमतिश्च प्राणाल्यये तद्दर्शनात्
 ॥ २८ ॥ अत्राद्याच्च ॥ २९ ॥ अपि च सूर्यते ॥ ३० ॥
 शब्दश्चातोऽकामकारे ॥ ३१ ॥ विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि
 ॥ ३२ ॥ सहकारित्वेन च ॥ ३३ ॥ सर्वथापि त एवोभय-
 लिङ्गात् ॥ ३४ ॥ अनभिभवं च दर्शयति ॥ ३५ ॥ अन्तरा-
 चापि तु तद्वृष्टेः ॥ ३६ ॥ अपि च सूर्यते ॥ ३७ ॥ विशेषा-
 नुग्रहश्च ॥ ३८ ॥ अतस्त्वितरज्ज्यायो लिङ्गाच्च ॥ ३९ ॥
 तद्वृत्तस्य तु नातद्भावो जैमिनेरपि नियमात्तद्वृत्ताभावेभ्यः
 ॥ ४० ॥ न नाधिकारिकमपि पतनानुमानात्तदयोगात्

॥ ४१ ॥ उपपूर्वमपि त्वेके भावमशनवत्तदुक्तम् ॥ ४२ ॥
 बहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च ॥ ४३ ॥ स्वामिनः फलश्रुते-
 रित्यात्रेयः ॥ ४४ ॥ आर्त्विज्यमित्यौडलोमिस्तस्यै हि परि-
 क्रीयते ॥ ४५ ॥ श्रुतेश्च ॥ ४६ ॥ सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण
 तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ॥ ४७ ॥ कृत्स्नभावात्तु गृहिणो-
 पसंहारः ॥ ४८ ॥ मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ॥ ४९ ॥
 अनाविष्कुर्वन्नन्यथात् ॥ ५० ॥ ऐहिकमप्यग्रस्तुतप्रतिबन्धे
 तद्दर्शनात् ॥ ५१ ॥ एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्त-
 दवस्थावधृतेः ॥ ५२ ॥ पुरुषार्थो द्विपञ्चाशत् ॥ आदितः
 ॥ ४७७ ॥ इति वैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां तृतीयस्या-
 ध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ ३ ॥ ४ ॥ समाप्तस्तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थाध्याये प्रथमः पादः ॥ ४ ॥ १ ॥

आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ॥ १ ॥ लिङ्गाच्च ॥ २ ॥ आत्मेति
 तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ॥ ३ ॥ न प्रतीकेन हि सः
 ॥ ४ ॥ ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ॥ ५ ॥ आदित्यादिमतयश्चाङ्ग
 उपपत्तेः ॥ ६ ॥ आसीनः सम्भवात् ॥ ७ ॥ ध्यानाच्च ॥ ८ ॥
 अचलत्वापेक्ष्य ॥ ९ ॥ स्मरन्ति च ॥ १० ॥ यत्रैकाग्रता
 तत्राविशेषात् ॥ ११ ॥ आ प्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम् ॥ १२ ॥
 तदधिगम उत्तरपूर्वाधयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ॥ १३ ॥
 इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ॥ १४ ॥ अनारब्धकार्ये एव
 तु पूर्वे तदवधेः ॥ १५ ॥ अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव
 तद्दर्शनात् ॥ १६ ॥ अतोऽन्यापि ह्येकेषामुभयोः ॥ १७ ॥
 यदेव विद्ययेति हि ॥ १८ ॥ भोगेन क्षितरे क्षपयित्वा सम्प-
 द्यते ॥ १९ ॥ आवृत्तिरेकोनविंशतिः ॥ आदितः ॥ ४९६ ॥

इति वैयासिक्यां शारीरकमीमांसायां चतुर्थस्याध्यायस्य प्रथमः
पादः ॥ ४ ॥ १ ॥

चतुर्थाध्याये द्वितीयः पादः ॥ ४ ॥ २ ॥

वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ॥ १ ॥ अत एव च सर्वा-
प्यनु ॥ २ ॥ तन्मनः प्राण उत्तरात् ॥ ३ ॥ सोऽध्यक्षे तदु-
पगमादिभ्यः ॥ ४ ॥ भूतेष्वतः श्रुतेः ॥ ५ ॥ नैकसिन्द-
र्शयतो हि ॥ ६ ॥ समाना चासृत्पुपक्रमादमृतत्वं चानु-
पोष्य ॥ ७ ॥ तदाऽपीतेः संसारव्यपदेशात् ॥ ८ ॥ सूक्ष्मं प्रमा-
णतश्च तथोपलब्धेः ॥ ९ ॥ नोपमर्देनातः ॥ १० ॥ अस्मैव
चोपपत्तेरेष ऊष्मा ॥ ११ ॥ प्रतिपेधादिति चेन्न शरीरात्
॥ १२ ॥ स्पष्टो ह्येकेषाम् ॥ १३ ॥ सूर्यते च ॥ १४ ॥
तानि परे तथा ह्याह ॥ १५ ॥ अविभागो वचनात् ॥ १६ ॥
तदोकोग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्य-
नुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ॥ १७ ॥ रश्म्य-
नुसारी ॥ १८ ॥ निशि नेति चेन्न सम्वन्धस्य यावदेहभावि-
त्वाददर्शयति च ॥ १९ ॥ अतश्चायनेऽपि हि दक्षिणे ॥ २० ॥
योगिनः प्रति च सूर्यते स्मार्ते चैते ॥ २१ ॥ वागेकविं-
शतिः ॥ आदितः ॥ ५१७ ॥ इति वैयासिक्यां शारीरकमी-
मांसायां चतुर्थस्याध्यायस्य द्वितीयः पादः ॥ ४ ॥ २ ॥

चतुर्थाध्याये तृतीयः पादः ॥ ४ ॥ ३ ॥

अचिरादिना तत्प्रथितेः ॥ १ ॥ वायुमब्दादविशेषाभ्याम्
॥ २ ॥ तडितोऽधिवरुणः सम्वन्धात् ॥ ३ ॥ आतिवाहिक-
स्तलिहात् ॥ ४ ॥ उभयव्यामोहात्तत्सिद्धेः ॥ ५ ॥ वैद्युतेनैव

ततस्तच्छ्रुतेः ॥ ६ ॥ कार्यं वादरिरस्य गत्युपपत्तेः ॥ ७ ॥
 विशेषितत्वाच्च ॥ ८ ॥ सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ॥ ९ ॥ कार्या-
 त्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ॥ १० ॥ स्मृतेश्च ॥ ११ ॥
 परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् ॥ १२ ॥ दर्शनाच्च ॥ १३ ॥ न च कार्यं
 प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ॥ १४ ॥ अप्रतीकालम्बनान्नयतीति वा-
 दरायण उभयथा दोषात्तत्क्रतुश्च ॥ १५ ॥ विशेषं च दर्शयति
 ॥ १६ ॥ अर्चिष्पोडश ॥ आदितः ॥ ५३३ ॥ इति वैयासिक्यां
 शारीरकमीमांसायां चतुर्थस्याध्यायस्य तृतीयः पादः ॥ ४ ॥ ३ ॥

चतुर्थाध्याये चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥ ४ ॥

सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥ १ ॥ मुक्तः प्रतिज्ञानात्
 ॥ २ ॥ आत्मा प्रकरणात् ॥ ३ ॥ अविभागेन दृष्टत्वात् ॥ ४ ॥
 ब्राह्मेण जैमिनिरूपन्यासादिभ्यः ॥ ५ ॥ चित्तितन्मात्रेण तदात्म-
 कत्वादित्यौडलोमिः ॥ ६ ॥ एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादवि-
 रोधं वादरायणः ॥ ७ ॥ संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ॥ ८ ॥
 अतएव चानन्याधिपतिः ॥ ९ ॥ अभावं वादरिराह ह्येवम्
 ॥ १० ॥ भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ ११ ॥ द्वादशाह-
 वदुभयविधं वादरायणोक्तः ॥ १२ ॥ तन्वभावे संध्यवदुप-
 पत्तेः ॥ १३ ॥ भावे जाग्रद्वत् ॥ १४ ॥ प्रदीपवदावेशस्तथा
 हि दर्शयति ॥ १५ ॥ स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं
 हि ॥ १६ ॥ जगद्वापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वाच्च ॥ १७ ॥
 प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डलस्योक्तेः ॥ १८ ॥
 विकारावर्ति च तथाहि स्थितिमाह ॥ १९ ॥ दर्शयतश्चैवं
 प्रत्यक्षानुमाने ॥ २० ॥ भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च ॥ २१ ॥

अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ २२ ॥ संपद्य द्वाविंश-
तिः ॥ आदितः ॥ ५५५ ॥ इति वैयासिक्यां शारीरकमी-
मांसायां चतुर्थाध्यायस्य चतुर्थः पादः ॥ ४ ॥ ४ ॥

॥ समाप्तश्चायं चतुर्थोऽध्यायः ॥ इति श्री ब्रह्मसूत्राणि ॥ ४० ॥

इति श्रीवेदान्तसमुच्चयः समाप्तः ।

स्खालित्यानिः—

(८) अष्टमपृष्ठे (१०) दशमस्तोत्रस्य ' निर्वाणदशक ' स्यान्न्यग्राम
' सिद्धान्तविन्दुः ॥ ' इति,

(७१) एकसप्ततितमपृष्ठे (३०) त्रिंशस्तोत्रस्य ' शतश्लोक्या '
अन्यग्राम ' वेदान्तकेसरी ॥ ' इति,

(२१६) षोडशोत्तरद्विशततमपृष्ठे श्रुतिसारसमुद्धरणस्तोत्रस्य (११५)
षड्दशोत्तरशततमश्लोकस्य पूर्वार्धम्—' यदपेक्ष्य भवेदभिधानमिदं पर-
मात्मपदस्य तुरीयमिति ॥ ' इति च पठनीयानि ॥

॥ ॐ ॥

मंगलम्. (१)

ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो ब्रह्मविद्यासंप्रदायकर्तृभ्यो वंश-
 ऋषिभ्यो महद्भ्यो नमो गुरुभ्यः । सर्वोपप्लवरहितः प्रज्ञान-
 यनः प्रत्यगर्थो ब्रह्मैवाहमस्मि ॥ १ ॥ नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं
 शक्तिं च तत्पुत्र पराशरं च । व्यासं शुक्रं गौडपदं महान्तं गो-
 विन्द योगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ॥ २ ॥ श्रीशंकराचार्यमयास्य
 पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम् । तं श्रोतुं वार्तिककार-
 मन्यानस्मद्गुरुन्संततमानतोऽस्मि ॥ ३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणा-
 नावालयं करुणालयम् । नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशं-
 करम् ॥ ४ ॥ शंकरं शंकराचार्यं केशवं वादरायणम् । सूत्र-
 भाष्यकृतौ वंदे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥ ५ ॥

॥ श्री आत्मचिंतनम् ॥ (२)

ॐ परमात्मने नमः ॥ अहं ब्रह्मास्मिन्ननुभवं वदति शि-
 ष्यः ॥ अहमेव परं ब्रह्म वासुदेवाख्यमव्ययम् ॥ इति स्या-
 निश्चयान्मुक्तो बद्ध एवान्यथा भवेत् ॥ १ ॥ अहमेव परं ब्रह्म
 न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ॥ इत्येवं समुपासीत ब्राह्मणो ब्रह्मणि
 स्थितः ॥ २ ॥ अहमेव परं ब्रह्म निश्चितं चित्तचिंतयताम् ॥ चिद्रू-
 पत्वादसंगत्वादवाध्यत्वात्प्रयत्नतः ॥ ३ ॥ सर्वोपाधिविनि-
 र्मुक्तं चैतन्यं च निरंतरम् ॥ तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा कथं वर्णा-
 श्रमी भवेत् ॥ ४ ॥ अहं ब्रह्मास्मि यो वेद स सर्वं भवति त्वि-
 दम् ॥ ५ ॥ तद्ब्रह्मा ईशते देवास्तस्यात्मैषां भवेद्धि सः ॥ ६ ॥ अ-

न्योसावहमन्योस्मीत्युपास्तेयोन्यदेवता ॥ न स वेद नरो
 ब्रह्म स देवानां यथा पशुः ॥६॥ अहं देवो न चान्योस्मि
 ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥ सच्चिदानंदरूपोहं निर्विकल्पस्वभा-
 ववान् ॥७॥ आत्मानं सततं ब्रह्म संभाव्य विहरन्ति ये ॥ न
 तेषां दुष्कृतं किंचिदुष्कृतोत्था न चापदः ॥८॥ आत्मानं सततं
 ब्रह्म संभाव्य विहरेत्सुखम् ॥ संसारे गतसारे यस्तस्य दुःखं
 न जायते ॥९॥ क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मार्चनम् ॥
 स महापातकं हन्यात्तमः सूर्योदयो यथा ॥१०॥ अज्ञाना-
 द्ब्रह्मणो जातमाकाशं बुद्बुदोपमम् ॥ आकाशाद्वायुरूपको वा-
 योस्तेजस्ततः पयः ॥ अंभसः पृथिवी जाता ततो ब्रीहियवा-
 दिकम् ॥११॥ पृथिव्यप्सु पयो बन्हौ बन्दिर्वायौ नभस्यसौ ॥
 नभोप्यव्याकृते तच्च शुद्धे शुद्धोऽस्म्यहं हरिः ॥ १२ ॥ अहं
 विष्णुरहं विष्णुरहं विष्णुरहं हरिः ॥ कर्तृभोक्त्रादिकं सर्वं तद-
 विद्योत्थमेव च ॥१३॥ अच्युतोऽहमनंतोहं गोविंदोऽहमहं हरिः ॥
 आनंदोऽहमशेषोऽहमजोऽहममृतोऽस्म्यहं ॥१४॥ नित्योहं निर्विक-
 ल्पोहं निराकारोऽहमव्ययः ॥ सच्चिदानंदसंदोहः पररूपोऽस्म्यहं
 सदा ॥१५॥ ब्रह्मैवाहं न संसारी मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥ अश-
 क्नुवन्भावयितुं वाक्यमेतत्सदाभ्यसेत् ॥१६॥ ध्यानयोगेनै-
 कमासाद्ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ पण्मासाभ्यासयोगेन सर्वं पापं
 व्यपोहति ॥१७॥ संवत्सरकृताभ्यासात्सिद्धयष्टकमवाप्नुयात् ॥
 यावज्जीवंसदाभ्यासाज्जीवन्मुक्तो न संशयः ॥ १८ ॥ नाहं
 देहो न च प्राणो नेंद्रियाणि तथैव च ॥ न मनोहं न बुद्धिश्च
 नैव चित्तमहं कृतिः ॥१९॥ नाहं पृथ्वी न सज्जिह्वं न च बहि-

स्तथानिलः ॥ न चाकाशो न शब्दश्च न च स्पर्शस्तथारसः
 ॥२०॥ नाहं गंधो न रूपं च न मायाहं न संसृतिः ॥ सदा स-
 क्षिस्वरूपत्वाच्छिव एवास्मि केवलम् ॥२१॥ अकतर्हिमभोक्ता-
 ह्यसंगः परमेश्वरः ॥ सदा मत्सन्निधानेन चेष्टते सर्वमिन्द्रियम्
 ॥२२॥ आदिमध्यांतमुक्तोहं न बदोहं कदाचन ॥ स्वभाव-
 निर्मलः शुद्धः स एवाहं न संशयः ॥२३॥ सर्वज्ञोहमनंतोहं
 सर्वगः सर्वशक्तिमान् ॥ आनंदः सत्यबोधोहमिति ब्रह्मानुचि-
 तनम् ॥२४॥ अयं प्रपंचो मिथ्यैव सत्यं ब्रह्माहमद्वयम् ॥ अत्र
 प्रमाणं वेदांता गुरवोनुभवस्तथा ॥२५॥ मय्येव सकलं जातं
 मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयम-
 स्म्यहम् ॥२६॥ ब्रह्मैवाहं न संसारी न चाहं ब्रह्मणः पृथक् ॥
 नाहं देहो न मे देहः केवलोहं सनातनः ॥२७॥ इति श्रीम-
 दात्मचिंतनं संपूर्णम् ॥

॥ श्री दक्षिणामूर्तिस्तोत्रम् ॥ (३)

ॐ परमात्मने नमः ॥ विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं
 निजांतर्गतं पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिबोद्भूतं यथा निद्रया ॥
 यः साक्षात्कुरुते प्रबोधपमये स्वात्मानमेवाद्वयं तस्मै श्रीगुरु-
 मूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥१॥ बीजस्यांतरिवांकुरो
 जगादिदं प्राग्निर्विकल्पं पुनर्मायाकल्पतदेशकालकलना वै-
 चित्र्यचित्रकृतम् ॥ मायावीव विजृम्भयत्यपि महायोगीवयः
 स्वेच्छया तस्मै श्री० ॥२॥ यस्यैव स्फुरणं सदात्मरूपसत्क-
 ल्पार्थक्यं भ.सते साक्षात्तत्त्वमसीति वेदवचसा यो बोधयत्या-
 ध्यातुं क्षमः सदा साक्षात्करणानुबन्धेन पुनरावृत्तिर्नर्वाणोनिधौ तस्मै

श्री० ॥ ३ ॥ नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीपप्रभाभास्वरं ज्ञानं
 यस्य तु चक्षुरादिकरणद्वारा बहिः स्पन्दते ॥ जानामीति तमेव
 भांतमनुभात्येतत्समस्तं जगत्तस्मै श्री० ॥४॥ देहं प्राणमपीन्द्रि-
 याण्यपि चलं बुद्धिं च शून्यं विदुः स्त्रीवालांधजडोपमास्त्व-
 हमिति भ्रांता भृशं वादिनः ॥ मायाशक्तिविलासकल्पित
 महाव्यामोहसंहारिणे तस्मै श्री० ॥५॥ राहुग्रस्तदिवाकरैर्दुस-
 दृशो मायासमाच्छादनात् सन्मात्रः करणोपसंहरणतो योभू-
 त्सुपुप्तः पुमान् ॥ प्रागस्वाप्समिति प्रबोधसमये यः प्रत्यभि-
 ज्ञायते तस्मै श्री० ॥ ६ ॥ बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा
 सर्वास्ववस्थास्वपि व्यावृत्तास्वनुवर्त्तमानमहमित्यंतः स्फुरंतं
 सदा ॥ स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो भद्रया मुद्रया तस्मै
 श्री० ॥७॥ विश्वं पश्यति कार्यकारणतया स्वस्वामिसंबन्धतः
 शिष्याचार्यतया तथैव पितृपुत्राद्यात्मना भेदतः ॥ स्वप्ने जाग्रति
 वा य एष पुरुषो माया परिभ्रामितस्तस्मै श्री० ॥८॥ भूत-
 भांस्यनलोनिलोत्तरमहर्नाथो हिमांशुः पुमानित्याभाति चरा-
 चरात्मकमिदं यस्यैव मूर्त्यष्टकं ॥ नान्यत् किंचन विद्यते वि-
 मृशतां यस्मात्परस्माद्विभोस्तस्मै श्री० ॥९॥ सर्वात्मत्वमिति
 स्फुटीकृतमिदं यस्मादमुष्मिन्स्तवे तेनास्य श्रवणात्तयार्यमन-
 नाद्ध्यानाच्च सकीर्तनात् ॥ सर्वात्मत्वमहाविभूतिसहितं स्या-
 दिश्वरस्त्वं स्वतः सिध्येत्तत्पुनरप्युपा परिणतं चैश्वर्यमव्याहतम्
 श्री० ॥१०॥ इति श्रीमच्छंकराचार्य विरचितं दक्षिणा-
 मूर्ति स्तोत्रम् ॥

જે ૩૨ પૃષ્ઠો છે!

જ્ઞાનામૃતપિપાસુઓ માટે ખાસ
વાંચી મનન કરવા સારૂ આવશ્યક
કર્મ, ઉપાસના અને જ્ઞાનસાધક

અમરશ્ય વાંચી વિચારો.

આદર્શ ગ્રંથો

જ્ઞાનચિંતામણિ.

(સચોટ ઉપદેશક કાવ્ય ગ્રંથ.)

વેદાન્તસમુચ્ચય.

(શ્રીમદ્ આદ્ય શંકરાચાર્યકૃત વેદાન્ત ગ્રંથસંગ્રહ.)

સમુચ્ચયત્રય.

જેમાં

બ્રહ્મકર્મસમુચ્ચય, સદાચારસમુચ્ચય અને સ્તોત્ર-
સમુચ્ચય નામના ગ્રંથોનો સમાવેશ છે.

આ પુસ્તકોને વિષે સુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાનોના ઉત્તમ
અભિપ્રાયો મળેલા છે.

કર્તા—

બ્રહ્મર્ષિ પંડિત શ્રીહરેરામ શર્મા.
સારંગપુર તળીઆની પોળ,—અમદાવાદ

अभिप्रायो.

—*—

श्री अमदावाद संस्कृत पाठशाळाना प्रधान अध्यापक व्याकरणा-
चार्य पंडित श्री प्रसिद्धनारायणमिश्र शास्त्रीजी लखे छे:-

श्री ब्रह्मर्षि पण्डित हरेराम शर्माजी !

आपका ज्ञानचिन्तामणि ग्रन्थको देखा, इसमें सुललित गव-
पद्योका उत्तम संग्रह एसा है कि जो भक्ति तथा ज्ञानद्वारा मोक्ष
विषयकी इच्छाको उत्पन्न करता है, आशा है कि अनेक भगव-
द्भक्त गण इस चिन्तामणिकेद्वारा ज्ञान लाभ करेंगे । इति.

भवत्संकलितं वेदान्तसमुच्चयनामधेयं ग्रन्थरत्नं वेदान्ताभ्या-
सिनां तत्त्वज्ञानेच्छूनां मुमुक्षूणाञ्चातीवोपकारकम् । एतस्मिन्नको-
ऽप्येतादृशो विषयो यो न ह्यादयति मनो विशेषेण तत्त्वज्ञानिनाम् ।
अत्र च श्रीमद्भगवद्गीताया ब्रह्मसूत्राणां च निवेशो विशेषेण जी-
रवमभिवर्द्धयति योजयति परेचेतोविदुषां तत्त्वज्ञानाङ्कुरमुत्पादयति
च स्तोत्रपाठरसिकानां भगवद्भक्तिमतां सताम् । शोभनाक्षररूपा-
णामेतादृशपुस्तकानां संग्रहे भवतां श्रमः सफलः स्यादित्याशास्ते-

सुप्रसिद्ध वेदान्तअभ्यासी श्रीयुत नर्मदाशंकरभाई जणावे छे-

ब्रह्मर्षि हरेरामशर्मणा संगृहितो—"वेदान्तसमुच्चय"—नामा
ग्रन्थो मदवलोकनार्थं संपादकेन प्रेषितोऽत्रेक्षितश्चमया ॥

वेदान्तशास्त्रस्य परमं रहस्यं प्रस्थानत्रय्यां निहितमिति वि-
श्चित्य तस्य दिव्यनिधेराविष्कारः श्रीमद्भगवत्पूज्यपादैर्मार्गगार्हि-
ग्रन्थैः कृतः । तत्र त्रययिभिश्च विद्यारम्यादिमहर्षिभिर्विवरणात्मकै-

નિવંધરત્નૈસ્તત્ત્વજિજ્ઞાસૂનાં હૃદયમણ્ડલાનિ મંડિતાનીતિ સુચિદિત-
મેતત્સંસ્કૃતવાઙ્મયરસિકાનામ ॥

યે પુણ્યશીલારેનાં પ્રકરણસુમનોમાલાં શ્રદ્ધયા સતતં કળે
વહન્તિ તેષાં તત્ત્વજ્ઞાનોદ્ભૂત આમોદઃ પરિસ્ફુર્તીતિ વિષયે ન
કાગપે શંકાનુભવશીલાનાં મહાત્મનાં મનઃસુ ॥

इमानि प्रकरणकुसुमानि इतस्ततः विक्षिप्तान्यवलोक्य, मह-
ताप्रयासेनावचित्य ब्रह्मर्षिहरेरामशर्मणा मालारूपेण संगृहीतानि
“वेदान्त समुच्चय”—नामके ग्रन्थे ॥ अध्यात्मशास्त्ररहस्यजिज्ञासु-
मिरेष समुच्चयः, अवश्यं संपादनीयः स्वाध्यायनियमेन अध्यसनी-
यश्चेति मे प्रतिभाति ॥

વિદ્વદ્વર બ્રહ્મર્ષિ પંડિત શ્રી હરેરામ શર્મા.

આપનો પત્ર તથા તે પહેલાં આપનો “શ્રી જ્ઞાન ચિંતામણિ” ગ્રંથ
પર્યા સમય મળ્યાં છે. મારે અખંડ પ્રવાસમાં ફરવાનું હોવાથી હું આપના
પુસ્તકને અધાપિ અવલોકી શક્યો નથી, અને જુન માસમાં અમદાવાદ
પાછો ફરું ત્યાં સુધી તેની નિવૃત્તિ મળવા સંભવ નથી. આપનો ગ્રંથ આ-
પાતતઃ મેં જોયો છે તે ઉપરથી સ્પષ્ટ જણાય છે કે ધર્મમય જીવન ગા-
ળવાને ઇચ્છનાર શ્રી વા પુરુષને તેમાંથી આત્મોદ્ધારનાં ઉત્તમ સાધનો મળી
આવવા સંભવ છે. હાથ એટલુંજ હું જણાવી શકું તેમ છે.

સુરત. તા. ૮-૮-૧૫

અમદાવાદ ટ્રેનિંગ કોલેજના માજી પ્રિન્સીપાલ રા. બા.
કમળાશંકરભાઈનો અભિપ્રાય.

બ્રહ્મર્ષિ પંડિત શ્રી હરેરામ મુજરામ શર્મા વિરચિત.
જ્ઞાન ચિંતામણિ.

આ પુસ્તકમાં ભક્તિ ધ્યાનોના સારો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે.
આરંભમાં બોધદાયક, નિવૃત્તિમાર્ગસૂચક અત્યુત્તમ હિત વાંચ્યો છે. પછી

કૃષ્ણરામ, નરસિંહ મહેતા, ધીરામકા, અખા, પ્રીતમદાસ વગેરેનાં કાવ્યો છે. નિવૃત્તપરાયણ વાચકવર્ગને એ કાવ્યો ધણાં આનન્દદાયક થયા વિના રહેશે નહિ. પ્રવૃત્તિના આધુનિક ક્ષેત્રમય જીવનમાં થોડો વખત આવાં ઉત્તમ કાવ્યો વાંચવાથી તેટલો સમય પણ મન મગ્નિનતાથી મુક્ત થઈ ઉંચી ભૂમિકામાં વિહરશે.

શ્રીમન્ બ્રહ્મર્ષિ હરેરામ શર્માએ પ્રસિદ્ધ કરેલો વેદાન્તસમુચ્ચય જોયો. શ્રીમચ્છંકરાચાર્યના લઘુગ્રન્થો-વિવેક ચૂડામણિ, ઉપદેશસાહસ્રી, આનન્દલહરી, શતશ્લોકી, ઇત્યાદિ, તેમજ ચર્પટપદ્મરિકા, સાઘન-પદ્મક, મોહસુદ્ધર, હસ્તામલક વગેરે સ્તોત્રો, શ્રીમદ્ભગવદ્ગીતા તથા ઉત્તરગીતા આ બધા વેદાન્તના મુખ્ય ગ્રન્થોનો એકત્ર સમુચ્ચય પ્રસિદ્ધ કરી મુમુક્ષુવર્ગનું અતિ કસ્યાણુ કર્યું છે. પુસ્તક નિર્ણયસાગરમાં ઉત્તમ રીતે છાપાયું છે. આશા છે કે વેદાન્ત વાંચકોમાં આનન્દ માનનાર તથા વેદાન્ત સ્તોત્રોનો પાઠ કરનાર વાચકવર્ગ આ પુસ્તકનો લાભ લઈ પરિશ્રમ સફળ કરશે. અરંભમાં શ્રીમચ્છંકરાચાર્યની છાત્રી છે તે પણ ભાવિક વાચકને ધણો પ્રિય થશે.

અમદાવાદ તા. ૧૦ મી ઑગસ્ટ ૧૯૧૪

અમદાવાદ ગવર્મેન્ટ હાઇસ્કૂલના માણ હેડ માસ્તર અને મુપ્રસિદ્ધ સાક્ષર શ્રીચુત કેશવલાલભાઈ ધ્રુવ જણાવે છે:—

પુનઃ પુનઃ આવર્તન અને મનનથી સ્વરૂપાનુસંધાન થવામાં વેદાન્ત સમુચ્ચય બહુ ઉપકારક છે એમાં અનેક મુપ્રસિદ્ધ પ્રકરણો સમાવ્યાં છે. ભગવદ્ગીતા અને બ્રહ્મસૂત્રના સંગ્રહથી પ્રસ્તુત પુસ્તક નિત્ય પાઠને માટે પણ ઉપયોગી છે.

બ્રહ્મર્ષિ પંડિત શ્રી હરેરામ શર્મા કૃત.

જ્ઞાન ચિંતામણિમાં કૃષ્ણરામ, પ્રીતમ, ધીરા, અખા, નરસિંહ, વગેરેનો સંગ્રહ છે, તે ઉપરાંત એમાં ત્રણેક ગદ્ય લેખ છે તે પણ વાંચક અને વિચારવા યોગ્ય છે. કૃષ્ણરામ મહારાજની કવિતા ધણી ખરી પહેલ પહેલીજ પ્રસિદ્ધ થાય છે; તે જગ્યામુને આનન્દ આપશે.

અમદાવાદ. તા. ૨૯-૫-૧૯૧૫.

૨૧. રા. લામશંકર નાનાલાઈ સોશીસીટર સાહેબ લખે છે:—

આપે “શ્રી જ્ઞાન ચિંતામણિ” ગ્રંથમાં પ્રાચીન અને અર્વાચીન કવિઓની કવિતાઓનો સંગ્રહ કર્યો છે તેમાં આપે એકજ ઉદ્દેશ રાખ્યો છે અને તે એકે આપે મેળવેલા જ્ઞાનનો બોધ સહેલાઈથી મહસ્થાશ્રમિઓને થાય અને તેમાં હું આપને યશ મળે એમ ઇચ્છું છું. એ આપના સંગ્રહનું અને મનનનું ફળ આપને તો મળીજ સુક્યું છે એ વાત આપે પ્રારંભમાં આપે જે હિત શિક્ષા માલિકાની રચના કરી છે તે પુરતી સાખીની આપે કે. આપનો પરિશ્રમ જોઈ હું ધણો પ્રસન્ન થયો છું અને મારી ખાતરી કે કે એનું મનન વરને ધણુંજ ઉપયોગી થઈ પડશે.

આળુરોડ. તા. ૧૮-૫-૧૫.

સુપ્રસિદ્ધ સાક્ષર શ્રીચુત શીખકવિ સંઘવી નગીનદાસ

પુરુષોત્તમદાસનો અભિપ્રાય:—

પૂજ્ય શ્રી બ્રહ્મર્ષિ પંડિત શ્રી હરેરામ શર્મા.

નમસ્કારપૂર્વક નિવેદન કરવાનું કે આપનો સંગ્રહેલો “શ્રી જ્ઞાન-ચિંતામણિ” ગ્રંથ મેં અવલોક્યો છે. તેમાંના વિષય ઉત્તમ મર્યાદા-સ્થાપક છે.

આ જમાનામાં હિન્દુસંતાનોને પોતાના સદાચાર અને સિદ્ધાચારનું સંરક્ષણ કરવાની જે અતિ આવશ્યકતા છે, તે જોતાં આપનો ગ્રંથ એક ખેતી સુકાતાં સુકાતાં વખતસર પડેલા વર્ષાદના જેવો છે. જન સમાજને વિનંતિ છે કે આ ગ્રંથનો લાભ લેઈ તેઓ પોતાના ધર્મ અને દેશની ખાતર હિન્દુનાં લક્ષણ જળવી રાખી પોતાનું પોત સુભાવશે નહિ, તોજ કિમતિ અને શ્રેયસ્ની પ્રાપ્તિ થશે.

અમદાવાદ. તા. ૧૯ મી મે સને ૧૯૧૫.

રા. રા. જોડાલાલ ચીમનલાલ સ્વામીનારાયણ, એમ. એ. લખે છે:-
(પ્રોફેસર ઓફ મેથેમેટીક્સ, ગુજરાત કૉલેજ, અમદાવાદ.)

અભાર્પિ પંડિત શ્રી હરેરામ સુજારામ શર્મા.

તરફથી પ્રસિદ્ધ થયેલો “શ્રી જ્ઞાન ચિંતામણિ” નામનો ગ્રંથ અવલોકનાર્ય મહ્યો છે. જણાવતાં આનન્દ થાય છે કે આ પુસ્તકમાં મહાત્માઓનાં ઉત્તમ પદોનો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે, જેના વાચનથી ધર્મ, જ્ઞાન, વૈરાગ્યની અભિવૃદ્ધિ થઈ મનુષ્ય ઇશ્વર પરત્વે પોતાનું શ્રેય સાધી શકે છે. નરસિંહમેહેતા, ધીરાભક્ત, અખો દયારામ વિગેરે સુપ્રસિદ્ધ કવિઓએ ગુંથેલાં બજનો પણ સારા પ્રમાણમાં આપ્યાં છે. વળી હિત શિક્ષાનાં એક એક વચનો એક લાખની કિંમતનાં છે. દાખલા તરીકે નીચેની કહેવત “માત્ર પુસ્તકો બહુવા જણવાથીજ પંડિત થવાતું નથી, પણ તદ્દનુસાર યથાર્થ વર્તન કરવાથી પંડિત થવાય છે.”

એકંદર પુસ્તક દરેક મુમુક્ષુએ સંગ્રહ કરવા યોગ્ય છે. સારા કામને ઉપર છપાવેલું છે અને ટાઇપ પણ મોટા હોવાથી વાંચકને સુલભતા પડે તેમ છે. અમે આવું ઉપયોગિ પુસ્તક પ્રસિદ્ધ કરવા માટે અભાર્પિને ધન્યવાદ આપીએ છીએ અને આશા રાખીએ છીએ કે ગુજરાતની કદરવાળા પ્રજા તેનો સારો આવકાર આપશે. એજ.

મોરબી, આવણ વહી ૯, સંવત ૧૯૭૧.

વે શા. સં. મહા મહોપાધ્યાય શીશ્ર કવીન્દ્ર
શાસ્ત્રીજી શંકરલાલનો અભિપ્રાય.

ઉત્તમમાં ઉત્તમ ઉપદેશક, નીતિદર્શક, ઇશ્વરભક્તિવર્ધક અને સન્માન્ય દર્શક પ્રાચીન તથા અર્વાચીન મહા કવિઓની કવિતાઓ લોકોની દૃષ્ટિ આગળ મેલવી એજ ઉપયોગી પુસ્તક છે, અમે તેને ઉપયોગ આપીએ છીએ. “જ્ઞાન વિ

તામણિ” છપાવી લોકોના કથાણું ઉદ્ધાર થવાનું સાધન સહેલું કરી
માધું છે.

“જ્ઞાનચિંતામણિ” એ જેવું નામ છે તેવાજ તેમાં શુષ્ક છે; તે ગ્રંથ
ગંધવાથી અગ્નિની પેઠી જરૂર જ્ઞાનમાં ભક્તિ થયા વગર રહે નહિ એમ
માનવું છે. ટુંકામાં જ્ઞાનચિંતામણિ તે ખરેખર જ્ઞાનચિંતામણિજ
છે. વિશેષ શું લખું ? ઈશ્વર તે સત્કૃત્યનું દર્શન આપને આપે.

તેમજ વેદાંતસમુચ્ચય પ્રસિદ્ધ કરીને પણ આપે અનિ ઉત્તમ લોક
માં જન્મી છે એવું માફ માનવું છે, કારણ કે શ્રી યંકરાચાર્ય રચેલાં
વેદાંતનાં બધાં પુસ્તકો સાથે ક્યાંથી મળી શકે. ઈશ્વર તે સત્કૃત્યનું દર્શન
આપને આપે. તથાસ્તુ.

જનમનગર.

“ભારતમાર્તંડ વિદ્યાવાચસ્પતિ” વે. શા. સં. શાસ્ત્રીજી હાથીભાઈ
લખે છે:—

‘શ્રી જ્ઞાનચિંતામણિ’માં ગુજરાતી પદો તથા કૃષ્ણરામ જેવા કવિ-
ઓની માર્મિક કવિતાઓની સાથે નરસિંહ મહેતાનાં અને કંઈ અભિનવ
જણાતાં પદો પણ સહબોધદાયક છે શિક્ષાઓ બધી સર્વને આ કલ્પિકાલના
આમોદમાંથી જાગૃતિ આપે તેવી છે.

‘વેદાંતસમુચ્ચય’માં શ્રીમદ્ભગવત્પૂજ્યપાદપ્રણીત સ્તોત્રોતો તથા
કરણ ગ્રંથોનો સારો સંગ્રહ કરવામાં આવ્યો છે, તે સાથે ઉપદેશસહસ્રી જેવા
બે બાસસૂત્ર જેવા ગ્રંથો મૂલ્ય માત્ર પણ મતનોપયોગી નાખવામાં
આવ્યા છે. એકંદરે આપનો આ પ્રયત્ન સ્તુત્ય છે.

ભાવનગર. તા. ૨૭ ૮-૧૫

પ્રોફેસર જે. જે. કૃષ્ણીઆ લખે છે:—

અંથ હજી બરાબર વાંચી ગયો નથી, પણ જેટલો ભાગ જોયો છે તે પરથી જણાય છે કે સારઆહક વાચક વર્ગને એમાંથી “ધર્મ” નો સાધનો તથા નીતિનાં સાધનો ન્યૂનાધિક અંશે પ્રાપ્ત થયા વિના રહે તેમ નથી.

આશા છે કે પ્રજાવર્ગ તરફથી એ “જ્ઞાનચિંતામણિ” અંથનો ચોખ્ખો સત્કાર થશે.

વડોદરા, તા. ૩૧ ઓગષ્ટ ૧૯૧૫.

દીવાન સાહેબ હરગોવિંદ દ્વારકાંદાસ કાંટાવાળા જણાવે છે:—

ધર્મજ્ઞાનસુઓને અહાર્પિ પંડિત શ્રી હરેરામ શર્મા કૃત જ્ઞાનચિંતામણિ ઉપયોગી થઈ પડશે. તેમાં કૃષ્ણરામ મહારાજની અપ્રસિદ્ધ કવિતા વાંચવા લાયક છે. એ સિવાય પ્રીતમ, ધીરો, અખો, નરસિંહ, કર્ણ વગેરેની થોડી થોડી પ્રસાદી આપી છે તે સારી છે. વળી ગદ્યમાં આપેલાં દ્વિતચિક્ષા ૧૦૮, મુમુક્ષુકાંઠાબરણ અને જ્ઞાનભૂમિકાના લેખ મનન કરવા યોગ્ય છે.

વડોદરા.

સુપ્રસિદ્ધ સાક્ષર શ્રીચુત હીરાલાલભાઈ ઓફ લખે છે:—

આપનું રચેલું “જ્ઞાનચિંતામણિ” હું જોઈ ગયો છું. તેથી મને અત્યંત સંતોષ પ્રાપ્ત થયો છે; વિશેષે કરીને આપના ગદ્ય લેખો વાંચીને મને ઘણો આનંદ થયો છે. આજકાલનાં નવીન સંસ્કારી સ્ત્રી પુરુષોને કદાચ તે બ્યાવહારિક અને હાલના દેશ કાળને અનુકૂળ નહીં લાગે તો તે સ્વાભાવિક છે, પણ સત્ય તે સત્યજ છે. સત્ય-વાસ્તવિક સત્ય-દેશકાલાતીત હોઈ સર્વ દેશકાળમાં અખંડ એક રસ રહે છે, અને સરથ પછુ સચોટ ભાષામાં આપના અનુભવની સાક્ષી પુરતાં કેટલાક તત્ત્વો એવી તો સત્ત્વરીતે સુગંધ છે કે તે વાંચનાથી અધિકારીને તો બાબત વિના બાબતે

પહે. આ ભાગદારા આપે જીજ્ઞાસુ અને મુમુક્ષુ અધિકારીઓ ઉપર
અત્યંત ઉપકાર કર્યો છે.

કાવ્ય વિભાગના સંબંધમાં ખાસ શ્રીકૃષ્ણરામ મહારાજનાં કાવ્યો
જોઈ ખેંચે છે. અત્યાર સુધીમાં એમનાં બહુજ યોડાં કાવ્યો પ્રસિદ્ધ થયાં
છે. આપના સંગ્રહમાં એમનાં ઘણાં અપ્રસિદ્ધ કાવ્યો મુદ્રિત કરીને આપે
સાહિત્ય ઉપર ઘણો ઉપકાર કર્યો છે.

વડોદરા, અમદાવાદી પોળ તા. ૧૮-૮-૧૫

શ્રીયુત લલિત આ પ્રમાણે લખે છે:—

મને તો એ પુસ્તક બહુજ કામે લાગ્યું છે. તેમાંથી બજનો લલકારું
ને અનેક રસપિપાસુઓને સંભળાવું છું. પણ મારા જેવા બજનીનેજ
જાણે એ પ્રિય થઈ પડે તેવું છે, ને તેટલા પૂરતું સાદર થાય તો તે
જોઈ જોઈ પરમાર્થ સેવા નથી. જૂનાં ને જૂની દ્રવ્યનાં બજન કીર્તનોના
પ્રવાહનાં સ્નાન પાનની મજા તો માણે તેજ જાણી શકે.

“જ્ઞાનચિંતામણિ”માં આત્મચુંગતની મુદ્રાવટ ઘણે સ્થળે જામે છે
તેજ વાત તેના રસગ્રાહકોને પૂરતી આકર્ષક છે.

મુંબાઈ. તા. ૧૮-૮-૧૫

આક્ષર શ્રીયુત તનુમુખરામભાઈ ત્રિપાઠી લખે છે:—

આપનો આ પ્રવાસ સ્તુત્ય અને બહુ લોકોપકારક છે. વર્તમાન કા-
લમાં બહુ ઘણાં ઇન્દ્રિયોના સ્વાભાવિક વિનિષાતને પોતે એવા વિષયોથી
મગ્નિત છવાય છે, ત્યારે આપનો ગ્રંથ તે મહાદોષને અંકુશમાં લાવવા
મહાવજ્ર થાય તેવો છે.

સારા વાચનની ઇચ્છા રાખનારાઓએ આ ગ્રંથ અવશ્ય સંગ્રહણીય છે.

મુંબઈ. તા ૧૯-૪-૧૫.

રા. રા. હીરાલાલ ડાહ્યાલાલ નાણાવટી, ખી. એ. એલ. એલ. ખી.

સોલીસીટર લખે છે:—

આપે મોકલાવેલો “જ્ઞાનચિંતામણિ” નામનો ગ્રંથ ઉપર ઉપરથી વાંચ્યો. એમાંનાં ઘણાં ખરાં પદો સનાતન ધર્મને અનુસરીને લખાયેલાં છે. વર્ણાશ્રમ ધર્મ પાળીને જ્ઞાન અને ભક્તિદ્વારા મોક્ષ કેવી રીતે પ્રાપ્ત થઈ શકે છે એ જાણવાની ઇચ્છા રાખનાર સજ્જનોને એ ગ્રંથ ઘણો ઉપયોગી થઈ પડશે સામાન્ય મનુષ્યોને ગદ્ય કરતાં પદ્ય વાંચવાનું પ્રિય લાગે છે તેથી નિયમથી “જ્ઞાનચિંતામણિ”નો લાભ સર્વ લઈ શકશે.

કૃષ્ણરામનાં ભજનો સો વર્ષ પહેલાં લખાયેલાં જણાય છે, અને તેથી તેમાં શુજરાતી ભાષાની શુદ્ધિપર હાલના જેવું ધ્યાન આપવામાં આવ્યું નથી એ સ્વાભાવિક છે.

સાન્તાક્રુઝ. તા. ૭-૮-૧૯૧૫

શ્રીચુત હીમતલાલલાલ અંજરીયા લખે છે:—

કૃષ્ણરામનાં અપ્રસિદ્ધ કાવ્યો તેમાં પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવ્યાં છે એ એક સારી સેવા સમજું છું. ઋષિરાજના નામનાં પણ સારી સંખ્યામાં છે અને તે પણ મેં અન્યત્ર જોયાં હોય એવું મને યાદ નથી. ખીનાં પણ ઘણાં અને શ્રદ્ધાસુતે સાદું વાંચન પૂરું પાડે તેવાં કાવ્યો એ સંગ્રહમાં દેખાય છે, અને તેથી તેનો સારો ઉપયોગ થશે એમ આશા રાખું છું.

હું તેનો ખસખસ ઉપયોગ કરીશ એટલું કહી શકું.”

મુપ્રસિદ્ધ વિદ્વાન રા. રા. કૃષ્ણલાલ મોહનલાલ ઝવેરી,
એમ. એ. એલ. એલ. ખી.

મોહન રીવ્યુના સંપ્રેક્ષરના અંકમાં પોતાનો અભિપ્રાય ઉમેર્યો.

આ (પુસ્તક) ઘણે ભાગે કવિતાઓનો સંગ્રહ છે. પુસ્તકમાં કેટલુંક
 મધ પણ છે, અને તે નરસિંહમેહેતા, દયારામ, અખો, ધીરો, પ્રીતમ,
 વપતરામ જેવા વિખ્યાત કવિઓ, અને એક કૃષ્ણરામ મહારાજ, જે
 એવા બીજાઓ જેટલા પ્રસિદ્ધ નથી, છતાં જેણે ઘણુંજ સાફ લખ્યું છે,
 તેવાઓના ગ્રંથોમાંથી ઉતારેલા છે. આ સંગ્રહનો ઉદ્દેશ ઉપદેશક અને
 ઉત્તેજક છે, અને તે એવી સારી રીતે કરવામાં આવ્યો છે કે વાંચનારને
 આસ્તિક હાથમાં લેવાથી લાભ થાય, અને થોડાક નવરાજના વખતનો સારો
 તીતે ઉપયોગ કરી શકાય.

શ્રીગીર્તાવારિધિ આસિકના અધિપતિ શ્રીચુત ગણપતરામભાઈ લખે છે:-

‘શ્રી જ્ઞાનચિંતામણિ’ ગ્રંથ કદ ડેમી, આઠ પેજ, ૩૫૨ પૃષ્ઠ, સારી
 વાંચ, જાડા કાગળ અને પાકું મજબુત પુસ્તક એવા આ ધર્મ લેખનો સત્કાર
 કરતાં અપૂર્ય આનંદ ઉપજે છે. સંગ્રહકે આ પુસ્તકમાં “હિતચિક્ષા રત્ન
 માલિકા”ના મથાળા નીચે અનેક ધર્મ નીતિ તત્ત્વનાં સિદ્ધાંતો ગદ્યમાં આપ્યાં
 છે અને ત્યાર બાદ * * * પદ્યમાં તેવાં જ તત્ત્વો આપવા સ્તુત્ય
 થઈ શકે છે; ઉપરાંત શ્રી કૃષ્ણરામ, પ્રીતમ, ધીરો, અખો, દયારામ,
 નરસિંહ આદિ ધર્મપ્રિય ભક્તોનાં પદોનો સંગ્રહ કર્યો છે.

અન્યો ગમે તેવા તો સંખ્યાબંધ પ્રકટ થાય અને હોંસથી વંચાય, પરંતુ
 એ સ્વકર્તવ્યનું ભાન કરી સન્માર્ગે સ્થાપનાર સદ્ગ્રંથો જો તે ન હોય તો
 તે મોરના પિંછા સમાન જ શોભાડપ છે. વાસ્તવ કંઈ કામના નહીંજ.
 આ ગ્રંથ બોધક અને નીતિધર્મસંકે હોઈ પ્રત્યેક ધર્મપ્રિય કુટુંબે સંગ્રહવા
 યોગ્ય છે. અને આવો સારો ઉત્તમ ધર્મગ્રંથ પ્રસિદ્ધ કરવામાં જનસમુદાય
 ઉપર પડિત શ્રી હરેરામે એક સારો ઉપકાર કર્યો છે.

आज संचालकेनां जीव पुस्तके.

स्तोत्रसमुच्चयः	०-६-०
श्रीज्ञानविंतामणिः	२-८-०
नवमस्तोत्रसमुच्चयः	०-८-०
नवचारसमुच्चयः	१-८-०



ॐ

॥

$$\begin{array}{r}
 22 \\
 30 \\
 \hline
 22 \\
 22 \\
 \hline
 44
 \end{array}$$

$$\begin{array}{r}
 120 \\
 120 \\
 \hline
 240 \\
 240 \\
 \hline
 480
 \end{array}$$

